



सागर

श्री तारतम वाणी

सागर

टीका व भावार्थ

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)

© २००८, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण — २०१८

अनुक्रमणिका

अनुभूमिका 10

1 भोम तले की क्यों कहूं 13
(सागर पेहेला नूर का)

2 हक बैठे रूहों मिलाए के 138
(सागर दूसरा रूहों की शोभा)

3 लेहेरी सुख सागर की 176
(ढाल दूसरा इसी सागर)

4 अब कहूं सागर तीसरा 195
(सागर तीसरा एक दिली रूहन की)

5 चौदे तबक की दुनी में 226
(श्री राजजी का सिनगार पेहेला –
मंगलाचरन)

6 बरनन करुं बड़ी रूह की 342

(श्री ठकुरानी जी को सिनगार पेहेलो
– मंगलाचरन)

7 इन बिध साथजी जागिए 455

(चौसठ थंभ चौक खिलवत का बेवरा)

8 अर्स तुमारा मेरा दिल है 484

(श्री राजजी को सिनगार दूसरो –
मंगलाचरन)

9 बरनन करुं बड़ी रूह की 581

(श्री ठकुरानीजी का सिनगार दूसरा
– मंगलाचरन)

10 फेर फेर सरूप जो निरखिए 703

(श्री राजजी का सिनगार तीसरा)

- | | | |
|----|---|-----|
| 11 | सुन्दर साथ बैठा अचरज सों
(श्री सुन्दर साथ को सिनगार) | 772 |
| 12 | पांचमा सागर पूरन
(सागर पांचमा इस्क का) | 819 |
| 13 | सागर छठा है अति बड़ा
(सागर छठा खुदाई इलम का) | 862 |
| 14 | अब कहूं दरिया सातमा
(सागर सातमा निसबत का) | 909 |
| 15 | और सागर जो मेहेर का
(सागर आठमा मेहेर का) | 941 |

प्रस्तावना

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी के हृदय में ज्ञान के अनन्त सागर हैं। उनकी एक बूँद श्री महामति जी के धाम-हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गयी। इसलिये कहा गया है कि "नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन" अर्थात् यह तारतम वाणी मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस तारतम वाणी की थोड़ी सी भी अमृतमयी बूँदों का रसास्वादन जीव के लिये परब्रह्म के साक्षात्कार एवं अखण्ड मुक्ति का द्वार खोल देता है। अतः वैश्विक

स्तर पर इस ब्रह्मवाणी का प्रसार करना हमारा कर्तव्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी की टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेक सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण, एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था , किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि सन्त कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी अपने योगबल से भैंसे से वेद मन्त्रों का उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मेरे से वाणी की टीका की सेवा क्यों नहीं करवा सकते?

इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राज जी एवं सद्गुरु महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। ब्रह्मवाणी के गुह्य रहस्यों के ज्ञाता श्री अनिल श्रीवास्तव जी का इस टीका में विशेष सहयोग रहा है।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धासुमन समर्पित करते हुए मैं यह आशा करता हूँ कि यह टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधारकर मुझे भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य-धन्य कर सकूँ।

आप सबकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

जिला सहारनपुर (उ.प्र.)

श्री कुलजम सरूप

निजनाम श्री जी साहिब जी, अनादि अछरातीत।

सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत॥

सागर

श्री किताब आठों सागर मूल मिलावे के लिखे हैं

अक्षरातीत का हृदय दिव्यताओं का सागर है। सागर शब्द का प्रयोग यहाँ "अनन्त" के भाव में किया गया है। जिस प्रकार मानवीय बुद्धि के लिये मात्रा की दृष्टि से सागर का जल अनन्त (अथाह) होता है, उसी प्रकार श्री राज जी के दिल के सागरों को सीमाबद्ध करना असम्भव है।

सागर की गहराई मापने का प्रयास करने वाला नमक का टुकड़ा जैसे ही सागर में गोता लगाता है, वैसे ही

थोड़ी देर में अपने अस्तित्व को उस अनन्त सागर में विलीन कर लेता है। वस्तुतः उसका प्रकटन भी तो उसी सागर से हुआ है, जिसकी वह माप करना चाहता था।

अक्षरातीत श्री राज जी के हृदय में प्रेम, सौन्दर्य, ज्ञान, तेज, एकत्व आदि के अनन्त सागर लहरा रहे हैं, जिनका प्रकट रूप परमधाम के पच्चीस पक्ष, श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, और महालक्ष्मी आदि हैं।

सागर अपनी लहरों के साथ कैसे लीला करता है, इसका अनुभव सागर में डुबकी लगा कर नहीं, बल्कि सागर के किनारे बैठकर ही लिया जा सकता है?

अनहोनी घटना के रूप में परमधाम की आत्माओं का इस नश्वर जगत में पदार्पण हुआ, जिसके कारण स्वयं अक्षरातीत भी अपने आवेश स्वरूप से इस संसार में महामति जी के धाम हृदय में प्रगट हुए तथा सागर ग्रन्थ

के रूप में उन्होंने अमृत की ऐसी धारा बहायी, जिसका पान करने वाली आत्माओं ने सागरों के उन गुह्य भेदों को भी जान लिया, जिनको वे परमधाम में भी नहीं जान सकी थीं।

सागर ग्रन्थ का अवतरण वि.सं. १७४४ में पद्मावती पुरी धाम (पन्ना) में हुआ है। यह ग्रन्थ अक्षरातीत के दिल एवं स्वरूप के आठों सागरों पर विशेष रूप से प्रकाश डालता है।

सागर पहला नूर का

इस प्रकरण में नूर की विशेषताओं को प्रकट किया गया है।

भोम तले की क्यों कहूं, विस्तार बड़ो अतंत।

नेक नेक निसान दिए हादियों, मैं करूं सोई सिफत॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि मैं रंगमहल की प्रथम भूमिका में स्थित पहली गोल हवेली का कैसे वर्णन करूँ, जिसका विस्तार बहुत अधिक (अनन्त) है? उसके बारे में मुहम्मद साहिब तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने थोड़ा वर्णन किया है। अब मैं उस मूल मिलावे की शोभा के सम्बन्ध में कह रही हूँ।

भावार्थ— मुहम्मद साहिब ने कुरआन में मात्र संकेतों के द्वारा ही मूल मिलावे का वर्णन किया है, जबकि सद्गुरु

धनी श्री देवचन्द्र जी चर्चा के द्वारा मूल मिलावे का स्पष्ट रूप से वर्णन करते थे तथा वहाँ का ध्यान भी कराते थे। यह प्रसंग बीतक में इस प्रकार वर्णित है—

भाव काढ़ दिखावहीं, सब चरचा को रूप।

बरनन करें श्री राज को, सुन्दर रूप अनूप॥

बीतक ११/१९

इन दोनों स्वरूपों (बशरी तथा मलकी) को हादी कहने का कारण यह है कि इनके द्वारा ब्रह्मसृष्टियों को हिदायत (सिखापन, निर्देशन) दी गयी है। हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी के द्वारा ही इसका स्पष्ट विवेचन हुआ है।

इस चौपाई के दूसरे चरन में "अनन्त" शब्द का प्रयोग हुआ है, जो अपने में गहन रहस्य छिपाये हुए है। परमधाम में वहदत की भूमिका है, जिसके कारण वहाँ के एक-एक कण में सम्पूर्ण परमधाम की शोभा समायी हुई

है। वहाँ की किसी भी वस्तु को गणित की माप में नहीं बाँधा जा सकता। इस सम्बन्ध में इसी प्रकरण की चौपाई ५६, ५७ में कह दिया गया है कि ब्रह्मसृष्टियों के दिल में वहाँ की शोभा को स्पष्ट करने के लिये ही असीम को सीमाबद्ध कर दिया गया है।

चौसठ थंभ चबूतरा, दरवाजे तखत बरनन।

रूह मोमिन होए सो देखियो, करके दिल रोसन॥२॥

मूल मिलावा में कमर भर ऊँचा चबूतरा है, जिसके किनारे पर चौसठ थम्भों (स्तम्भों) की शोभा आयी है। चबूतरे के मध्य में सिंहासन है तथा मन्दिरों में दरवाजे सुशोभित हैं। जो भी ब्रह्मसृष्टि हो, वह तारतम वाणी से अपने दिल में ज्ञान का उजाला करे, और प्रेम भरकर ध्यान (चितवनि) द्वारा वहाँ की शोभा का दीदार करे।

भावार्थ- रंगमहल की प्रथम भूमिका (मन्जिल) में चार चौरस हवेलियों को पार करने के पश्चात् पाँचवी हवेली गोलाकार आती है, जिसे मूल मिलावा कहते हैं। इस हवेली में ६० मन्दिरों की एक हार तथा ६४-६४ थम्भों की तीन हारें आयी हैं। इस हवेली में अति सुन्दर दरवाजे शोभायमान हैं। चबूतरे के मध्य में तख्त (सिंहासन) है, जिस पर युगल स्वरूप विराजमान हैं।

मेयराज हुआ महंमद पर, पोहोंच्या हक हजूर।

सो साहेदी दई महंमदें, सो मोमिन करें मजकूर॥३॥

मुहम्मद साहिब को परब्रह्म (अल्लाह तआला) का दर्शन हुआ और वे मूल मिलावा में धनी के सम्मुख पहुँचे। उन्होंने मूल मिलावा की साक्षी दी है, जिसके विषय में ब्रह्मसृष्टियाँ चर्चा करती हैं।

भावार्थ- कुरआन के पार: २७ में "मेयराज" का वर्णन है, जिसमें लिखा है कि मुहम्मद साहिब की आत्म-दृष्टि हृद तथा बेहृद को पार कर परमधाम पहुँचती है और परब्रह्म का साक्षात्कार करती है। इस घटनाक्रम से मूल मिलावा की साक्षी मिलती है। इस रहस्य को मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही यथार्थ रूप से जानती हैं।

सो रूहें अर्स दरगाह की, कही महंमद बारे हजार।

दे साहेदी गिरो महंमदी, जाको वतन नूर के पार॥४॥

परमधाम से इस खेल में आने वाली ब्रह्मसृष्टियों की संख्या मुहम्मद साहिब ने बारह हजार कही है। श्यामा जी की अंगस्वरूपा ब्रह्मसृष्टियाँ जिनका घर अक्षर धाम से भी परे परमधाम में है, वे भी उस मूल मिलावे की साक्षी दे रही हैं।

भावार्थ- कुरआन के पारा ३० सूरत अमेत सालून की व्याख्या में तथा "तफसीर-ए-हुसैनी" के पृष्ठ ७ में ब्रह्मसृष्टियों की बारह हजार संख्या के विषय में संकेत है। इसी प्रकार पुराण संहिता ३१/७६ में तथा माहेश्वर तन्त्र ९/१४, १३/३७ में भी १२००० की संख्या बतायी गयी है।

हुकम से अब केहेत हों, सुनियो मोमिन दिल दे।

हक सहूरें विचारियो, हकें सोभा दई तुमें ए॥५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! आप दिल देकर (सच्चे मन से) मेरी बात सुनिये, अब मैं धाम धनी के हुक्म से कह रहा हूँ। श्री राज जी का चिन्तन करते हुए मेरे वचनों पर विचार करना। धाम धनी ने मात्र आपको ही इस प्रकार की शोभा दी है।

हकें अर्स किया दिल मोमिन, सो मता आया हक दिल सैं।

तुमें ऐसी बड़ाई हकें लिखी, हाए हाए मोमिन गल ना गए इन में॥६॥

प्रियतम अक्षरातीत ब्रह्मसृष्टियों के धाम हृदय में विराजमान हैं। धाम धनी के हृदय में ज्ञान का जो अनन्त सागर लहरा रहा है, उससे ही ब्रह्मसृष्टियों के अन्दर ब्रह्मज्ञान का प्रवाह आ रहा है। हे सुन्दरसाथ जी! आप इस बात का विचार कीजिए कि धर्मग्रन्थों में आपकी इतनी अधिक महिमा लिखी है, फिर भी कितने खेद की बात है कि आप अभी भी धनी के प्रेम में डूब नहीं पा रहे हैं।

भावार्थ— तैत्तरीयोपनिषद् में कहा गया है कि "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" तथा "ब्रह्मविदो ब्रह्मेव भवति" अर्थात् जो परब्रह्म सत्य है, प्रकृष्ट ज्ञान स्वरूप है, और अनन्त सामर्थ्य वाला है, उसे जानने वाला (साक्षात्कार करने

वाला) उसके जैसा ही हो जाता है। इसका भाव यह है कि अक्षरातीत को अपने हृदय धाम में बसा लेने पर, यद्यपि साक्षात् अक्षरातीत तो हृदय में नहीं आ सकते, किन्तु उसके हृदय में अक्षरातीत की ज्ञानधारा अखण्ड रूप से प्रवाहित होने लगती है। वह संसार में ब्रह्म स्वरूप कहा जाने लगता है।

नूर सिफत द्वार सनमुख, और नूर द्वार पीछल।

एक दाएं बाएं एक, हुआ बेवरा चारों मिल॥७॥

नूरमयी मूल मिलावे की शोभा इस प्रकार की है कि उसके चबूतरे की चारों दिशाओं में चार मेहराबी द्वार हैं। सामने की ओर पूर्व दिशा में एक द्वार है तथा पीछे की ओर पश्चिम दिशा में दूसरा द्वार है। उत्तर दिशा में बायीं ओर तीसरा द्वार है, तो दक्षिण दिशा में दायीं ओर चौथा

द्वार है। चारों द्वारों का यह इस प्रकार का विवरण है।

भावार्थ- चबूतरे की चारों दिशाओं से ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। इन सीढ़ियों के दायें-बायें चबूतरे पर जो दो थम्भ हैं, उनके मेहराब को ही यहाँ द्वार कहा है। यहीं से चबूतरे में प्रवेश कर सकते हैं, बाकी जगह में थम्भों के मध्य कठेड़ा शोभायमान है।

सोभित द्वार सनमुख का, नूर थंभ पाच के दोए।

थंभ नीलवी दो इनों लगते, सोभा लेत अति सोए॥८॥

सामने की ओर पूर्व दिशा में जो मेहराबी द्वार है, उसमें पाच के दो नूरी थम्भ शोभा ले रहे हैं, जिनका रंग हरा है। इनके दायें-बायें दोनों ओर नीलवी के दो थम्भ हैं, जिनकी बहुत अधिक शोभा है।

इन सामी द्वार पीछल, थंभ दोए नीलवी के।

दो थंभ जो इनों लगते, नूर पाच के थंभ ए॥९॥

पूर्व दिशा में पाच के जो दो थम्भ (मेहराबी द्वार के) आये हैं, उनके ठीक सामने पश्चिम दिशा में भी मेहराबी द्वार है, जिसमें नीलवी के दो थम्भ आये हैं। इनके दायें-बायें पाच के दो नूरी थम्भ शोभा ले रहे हैं।

नूर द्वार थंभ दो मानिक, तिन पासे दो पुखराज।

ए द्वार तरफ दाहिनी, रह्या नूर इत बिराज॥१०॥

मूल मिलावा में दक्षिण दिशा में दायीं ओर जो नूरमयी मेहराबी द्वार आया है, उसके दोनों थम्भ माणिक के लाल रंग के हैं। इनके अगल-बगल पुखराज के पीले रंग के दो थम्भ आये हैं। श्री राज जी के नूर की यहाँ अलौकिक शोभा है।

भावार्थ- अक्षरातीत का नूर इस संसार के सूर्य, चन्द्रमा, और तारों का जड़ प्रकाश नहीं है, बल्कि धाम धनी के विज्ञान (मारिफत) स्वरूप हृदय का प्रकट रूप (हकीकत) है। इसे श्रीमुखवाणी में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है-

जो गुन हिरदे अन्दर, सो मुख देखे जाने जाए।

ऊपर सागरता पूरन, तार्थें दिल की सब देखाए॥

सिनगार २०/३६

नूर ही शाश्वत् प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द, और जीवन है। वह अक्षरातीत के हृदय का उल्लास है। प्रफुल्लता और दया उसी में निहित है। प्रियतम के नेत्रों का आकर्षण तथा मुख की कान्ति भी वही है। धाम धनी के मुखारविन्द की छटा, आभा, स्वच्छता, चमक, और उजलापन भी नूर ही है।

तरफ बांई द्वार पुखराजी, दो मानिक थंभ तिन पास।

चार थंभ नूर सरभर, ए अदभुत नूर खूबी खास॥११॥

हवेली की उत्तर दिशा में बायीं ओर मेहराबी द्वार में पुखराज के पीले रंग के दो थम्भ हैं। उनके अगल-बगल माणिक के दो थम्भ हैं। इन चारों थम्भों की यह नूरमयी शोभा समान है और विशेष रूप से अलौकिक है।

नूर चारों पौरी बराबर, जो करत हैं झलकार।

ए जुबां खूबी तो कहे, जो पाइए काहूँ सुमार॥१२॥

इन नूरमयी थम्भों पर बने हुई चारों मेहराबी द्वार समान रूप से झलझला (जगमगा) रहे हैं। यदि इनकी शोभा सीमित होती, तब तो कुछ वर्णन भी किया जा सकता। उनकी अनन्त शोभा का वर्णन करना इस संसार के शब्दों से सम्भव नहीं है।

थंभ बारे बारे चारों खाँचों, कहुं तिनका बेवरा कर।

बारे नंग चार धात के, रंग जुदे जोत बराबर॥१३॥

इस प्रकार (उपरोक्त चारों दिशाओं के ४-४ थम्भों के अतिरिक्त) चारों भागों (खाँचों) में १२-१२ थम्भ बचते हैं, जिनका विवरण मैं देती हूँ। वैसे एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे तक कुल १६ थम्भ हैं, जिनमें से १२ थम्भ नगों के हैं तथा ४ थम्भ धातुओं के हैं। यद्यपि इन सभी थम्भों के रंग अलग-अलग हैं, परन्तु उनकी नूरमयी ज्योति वहदत के कारण एक समान है।

भावार्थ- दिशाओं के ४-४ थम्भों के अतिरिक्त चारों खाँचों में जो १२-१२ थम्भ हैं, वे इस प्रकार हैं- १. हीरा, २. लसनिया (लहसुनिया), ३. गोमादिक (गोमेद), ४. मोती, ५. पन्ना, ६. प्रवाल (मूँगा), ७. पिरोजा, ८. कर्पूरिया, ९. पाच, १०. नीलम (नीलवी),

११. माणिक, १२. पुखराज। कुल मिलाकर प्रत्येक खाँचे में जो १६-१६ थम्भ हैं, उनमें से चार थम्भ धातुओं (हेम अर्थात् सोना, चाँदी, लोहा और कञ्चन) के हैं।

स्वर्ण को जब साढ़े सोलह बार अग्नि में तपाया जाता है, तो वह लालिमा से भरपूर हो जाता है। इसे ही कञ्चन कहते हैं। इस प्रकार स्वर्ण तथा कञ्चन में अन्तर है।

नेक देखाए रंग अर्स के, कई खूबी रंग अलेखे।

रूह सहूर करे हक इलमें, हक देखाएं देखे॥१४॥

यहाँ पर तो मैंने परमधाम के नगों की एक हल्की सी झलक दिखायी है। परमधाम में अनन्त प्रकार के रंग हैं और उनकी बहुत सी विशेषतायें भी हैं। उनका अनुभव तब होता है, जब आत्मा या तो ब्रह्मवाणी के चिन्तन में

गहराई तक डूब जाये या धाम धनी अपनी मेहर से उसकी आत्म-दृष्टि को खोलकर प्रत्यक्ष रूप से दीदार करा दें।

भावार्थ- इस नश्वर जगत में भी इस प्रकार की मान्यता है कि श्वेत प्रकाश में अनन्त प्रकार के रंग छिपे होते हैं, किन्तु केवल सात प्रकार के ही रंगों की तरंगों का अनुभव हो पाता है। यही कारण है कि सात प्रकार के ही रंगों (हरा, पीला, नीला, लाल, आसमानी, नारंगी, बैंगनी) की कल्पना की जाती है। जब मायावी जगत के प्रकाश में कई रंग हो सकते हैं, तो परमधाम के नूरमयी प्रकाश में कई रंग क्यों नहीं हो सकते ? धाम धनी की कृपा से जब आत्म-दृष्टि खुलती है, तो परमधाम के रंगों का साक्षात्कार होता है।

असल पांच नाम रंग के, नीला पीला लाल सेत स्याम।
 एक एक रंग में कई रंग, सो क्यों कहे जाएं बिना नाम॥१५॥
 मूल रूप से पाँच रंग होते हैं— १. नीला २. पीला ३. लाल ४. श्वेत और ५. काला। इस एक-एक रंग से अनेक प्रकार के रंग प्रकट हो जाते हैं, जिन्हें अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया जाता है।

भावार्थ— रंगों के मिश्रण से अनेक प्रकार के नये रंगों की उत्पत्ति होती है, जैसे लाल और पीला मिलाने से नारंगी, नीला और पीला मिलाने से हरा, लाल तथा नीला मिलाने से बैंगनी, इत्यादि। परमधाम में तो स्वतः ही एक-एक रंग से अनन्त रंगों का प्रकटीकरण होता है, क्योंकि वहाँ का प्रत्येक कण वहदत का स्वरूप है।

देखो चौसठ थंभ चबूतरा, रंग नंग अनेक अर्स।

नाम लिए न जाए रंगों के, रंग एक पे और सरस॥१६॥

हे साथ जी! चौंसठ थम्भों से सुशोभित उस गोल चबूतरे की शोभा को देखिए, जिसमें परमधाम के अनेक रंगों के नग झलझला रहे हैं। वहाँ तो इतने (अनन्त) रंग हैं कि उनके नामों का वर्णन ही नहीं हो सकता। इसके साथ ही एक और विशेषता यह है कि हर रंग दूसरे से अधिक अच्छा लगता है।

भावार्थ- परमधाम में रंगों की संख्या को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। एक रंग को दूसरे से अच्छा कहने का भाव यह नहीं समझना चाहिए कि वहाँ के रंगों की सुन्दरता में कमी या अधिकता है। वस्तुतः यह बात आलंकारिक रूप में कही गयी है कि प्रत्येक रंग दूसरे से अधिक सुन्दर है अर्थात् सभी की सुन्दरता समान है।

वहदत में कम या अधिक सुन्दर होने का प्रश्न ही नहीं उठता। सौन्दर्य का वर्णन प्रायः तुलनात्मक दृष्टि से ही किया जाता है।

मैं तो नाम लेत जवेरों, जानों बोहोत नाम लिए जाएं।

नंग नाम धात कहे बिना, रंग नाम आवे ना जुबांए॥१७॥

जब मैं जवाहरात का नाम लेती हूँ, तो ऐसा लगता है कि बहुत से जवेरों के नामों का वर्णन होना चाहिए। सामान्यतया नगों और धातुओं के नाम का वर्णन हुए बिना उनके रंगों को अपनी वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

भावार्थ— इस मायावी जगत में प्रत्येक धातु और नंग का एक निश्चित रंग है, जैसे पुखराज (पुष्पराग) का रंग पीला और माणिक्य का रंग लाल है। इस आधार पर

धातु का नाम लेने पर रंग का बोध हो जाता है, किन्तु परमधाम की प्रत्येक धातु या नंग धनी का ही स्वरूप है। वह सच्चिदानन्दमयी है। उसके एक-एक रंग से असंख्यों रंगों का प्रकटन होता है, ऐसी स्थिति में रंगों के आधार पर धातु या जवाहरातों का निर्णय करना सम्भव नहीं है, किन्तु लीला रूप में समझ में आने के लिये ही इन सीमित रंगों के नामों का प्रयोग किया गया है।

एकै रस के सब रंग, करें जुदे जुदे झलकार।

रंग नंग धात तो कहिए, जो आवे कहूं सुमार॥१८॥

परमधाम के सभी रंगों में एकरसता है। वे आपस में अलग-अलग रूपों में झलकार कर रहे हैं। धाम के रंगों, नगों, और धातुओं की संख्या अनन्त है। इनका वर्णन तो तभी सम्भव है, जब इनकी सीमा निर्धारित हो।

भावार्थ- एक ही नूर तत्व अपने में वहदत, निस्बत, खिलवत, सौन्दर्य, और इश्क के रस को समाये हुए है। इस प्रकार परमधाम के नूरमयी नगों और धातुओं के रंगों में सौन्दर्य की एकरूपता है। सौन्दर्य की कहीं भी कमी या अधिकता नहीं है। इसे ही एकरस शब्द से सम्बोधित किया गया है।

पर हिरदे आवनें रूहों के, मैं कई बिध करत बयान।

ना तो क्यों कहूं रंग नंग धात की, ए तो खिलवत बका सुभान॥१९॥

किन्तु ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में वहाँ की शोभा बस जाये, इसलिये मैं अनेक प्रकार से कह रही हूँ, अन्यथा परमधाम के रंगों, नगों, और धातुओं की शोभा का वर्णन करना कदापि सम्भव नहीं है। भला यह किसका सामर्थ्य है कि अक्षरातीत की अखण्ड प्रेममयी लीला के स्थान

का वर्णन कर सके?

भावार्थ- परमधाम के कण-कण में मात्र अक्षरातीत ही सभी रूपों में लीला कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में खुलासा ग्रन्थ का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है-

न अर्स जिमिएं दूसरा, कोई और धरावे नाउँ।

ए लिख्या वेद कतेब में, कोई नाहीं खुदा बिन काहूँ॥

और खेलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।

एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इसदाए॥

खुलासा १६/८३,८४

इससे यह स्पष्ट होता है कि जब परमधाम की सम्पूर्ण सामग्री ही सच्चिदानन्दमयी है, तो वहाँ के नगों, धातुओं, और रंगों की शोभा का यथार्थ वर्णन सम्भव नहीं।

अर्स धात ना रंग नंग रेसम, जित नया न पुराना होए।

जित पैदा कछू नया नहीं, तित क्यों नाम धरे जाएं सोए॥२०॥

परमधाम में प्रत्येक वस्तु श्री राज जी का ही स्वरूप है। वहाँ अलग-अलग लौकिक धातुओं, नगों, रंगों, और रेशमी वस्त्रों की उपस्थिति नहीं है। वहाँ न तो कोई वस्तु नये रूप में उत्पन्न होती है और न पुरानी ही होती है। जिस अनादि परमधाम में कोई नयी चीज पैदा न हो और न किसी नये रूप में दिखायी पड़े, वहाँ पर किसी का नामकरण कैसे किया जा सकता है?

भावार्थ- परमधाम में श्री राज जी का नूर ही असंख्य पदार्थों (नंग, धातु, रेशम आदि) के रूप में दृष्टिगोचर होता है। पूर्णातिपूर्ण धाम में उत्पत्ति और विनाश की प्रक्रिया नहीं होती, इसलिये किसी के भी नामकरण का प्रश्न ही नहीं है।

यहाँ यह संशय होता है कि खुलासा, परिक्रमा, तथा श्री जवाहर दास जी की वृत्त आदि के आधार पर यह बात कही जाती है कि परमधाम में जब हम किसी वृक्ष के फल की इच्छा करते हैं तो पल भर में ही वह हमारे हाथों में आ जाता है, किन्तु उस डाल पर भी जैसा का तैसा ही फल दिखायी देता है। तो क्या हाथ में आने के बाद डाल पर दिखायी देने वाला फल नया नहीं है?

मेवे चाहिए सो लीजिए, फल फूल मूल पात।

तित रह्या तैसा ही बन्या, ए बका बागों की बात॥

खुलासा ५/४६

कालमाया के ब्रह्माण्ड में भी द्रव्य की अविनाशिता का सिद्धान्त माना जाता है, जिसके अनुसार द्रव्य मूलतः नष्ट नहीं होता, बल्कि ऊर्जा ($E=mc^2$) में रूपान्तरित हो जाता है। जैसे कि लकड़ी को जलाने पर वह राख में

बदल तो जाती है, किन्तु लकड़ी का कुछ अंश ऊर्जा (उष्मा+प्रकाश) में परिवर्तित हो जाता है। इस स्थिति में सामान्य रूप से यही कहा जा सकता है कि लकड़ी नष्ट हो गयी। वास्तविकता यह है कि उसका वर्तमान स्वरूप अवश्य नष्ट हो गया, किन्तु मूल स्वरूप नष्ट नहीं हुआ। द्रव्य से निकलने वाली ऊर्जा उचित परिस्थितियों में पुनः द्रव्य का रूप धारण कर लेती है।

कालमाया का यह ब्रह्माण्ड अव्याकृत के स्वप्न का परिणाम है। अव्याकृत से लेकर सत्स्वरूप तक एक ही नूरमयी तत्व क्रीड़ा कर रहा है। वहाँ इच्छा मात्र से कोई भी वस्तु पल भर में दृष्टिगोचर हो जाती है और अनन्त काल तक बनी रहती है, किन्तु कालमाया का यह ब्रह्माण्ड स्वप्न का है, जिसके कारण यहाँ की प्रत्येक वस्तु का रूप नश्वर है।

इसके विपरीत परमधाम में अक्षरातीत का नूरमयी स्वरूप ही सर्वत्र लीला कर रहा है। वहाँ के कण-कण में ब्रह्मरूपता है। इसलिये लीला रूप में यदि किसी वस्तु की इच्छा हो, तो वह दिखायी भी देती है, उसका रसास्वादन भी किया जाता है, किन्तु उसके मूल या वर्तमान स्वरूप में किसी भी प्रकार की विकृति नहीं होती, क्योंकि परमधाम या परब्रह्म स्वयं में पूर्ण (अनन्त) हैं। उनकी शोभा, शक्ति, लीला, और आनन्द आदि में नाम मात्र के लिये भी न्यूनता नहीं आ सकती। इसलिये तो धर्मग्रन्थों (बृहदारण्यकोपनिषद्) में कहा गया है—

पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदुच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाऽवशिष्यते॥

अर्थात् सच्चिदानन्द परब्रह्म पूर्ण (अनन्त) आनन्द के स्वरूप हैं। उनके प्रेम, आनन्द, और तेज से यह सम्पूर्ण

परमधाम भी वैसा ही है। उस अनन्त परमधाम में यदि अनन्त जोड़ा जाये या निकाला जाये, तो अनन्त ही बचता है।

हेम जवेर या जो कछू, सो सब जिमी पैदास।

इत नाम पैदास के क्यों कहिए, जित पैदा न नास॥२१॥

इस नश्वर जगत में सोना आदि धातुएँ तथा अन्य जवाहरात भी पृथ्वी के अन्दर से निकाले जाते हैं। जिस अनादि परमधाम में न तो कोई नई वस्तु पैदा हो सकती है और न नष्ट हो सकती है, वहाँ की वस्तुओं (सोना, चाँदी इत्यादि) का नाम यहाँ की नश्वर वस्तुओं के आधार पर कैसे रखा जा सकता है?

भावार्थ— अनादि परमधाम इश्क, आनन्द, और वहदत (एकदिली) की भूमिका है। ऐसी अवस्था में वहाँ नाम की

कोई भी आवश्यकता नहीं होती। हमारी मानवीय बुद्धि में वहाँ की शब्दातीत लीला समझ में आ सके, इसलिये ही युगल स्वरूप सहित सभी लीला रूपी पदार्थों के सम्बोधन में नाम का प्रयोग किया गया है।

थंभ और चीज न आवे सब्द में, कर मोमिन देखो सहूर।

अर्स बानी देख विचारिए, तब हिरदे होए जहूर॥२२॥

हे साथ जी! यदि आप गहन चिन्तन करके देखें तो यह स्पष्ट होगा कि परमधाम के नूरमयी थम्भों और अन्य वस्तुओं की शोभा का वर्णन शब्दों में नहीं आ सकता। यदि आप इस ब्रह्मवाणी का चिन्तन-मनन करें, तो आपके हृदय में वहाँ की शोभा की एक झलक आ जायेगी।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जिस

शोभा को शब्दातीत कहा गया है, उसे अगली ही पंक्ति में अपने हृदय में बसाने की बात क्यों कही गयी है?

वस्तुतः परमधाम की शोभा शब्दातीत ही है। यहाँ की उपमा देकर भी निजधाम की वास्तविक शोभा का वर्णन सम्भव नहीं है। यह ब्रह्मवाणी धाम धनी के आवेश से अवतरित है और यहाँ के भावों के आधार पर गागर में सागर को भरा गया है, किन्तु यदि हम उसका चिन्तन-मनन और चितवनि (ध्यान) करते हैं, तो हमारे हृदय धाम में वहाँ की शब्दातीत शोभा अवश्य ही बस जाती है।

नाम निसान इत झूठ है, तो भी तिन पर होत साबूत।

जोत झूठी देख नासूत की, अधिक है मलकूत॥२३॥

यद्यपि इस जगत् के सभी पदार्थ और नाम झूठे हैं, फिर भी इनकी उपमा से वहाँ की कुछ पहचान हो जाती है।

मृत्युलोक में सूर्य, चन्द्रमा, तथा तारों में जो ज्योति दिखायी पड़ती है, वैकुण्ठ लोक में उससे अधिक ज्योति है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि इस पृथ्वी लोक में जब सूर्य, चन्द्रमा, और नक्षत्रों की ज्योति दिखायी पड़ती है, तो वैकुण्ठ की ज्योति कहाँ है? क्या इस तारामण्डल के परे वैकुण्ठ है? इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि सूर्य, चन्द्रमा, तथा तारागण स्थूल पदार्थ हैं और इनकी ज्योति भी स्थूल होती है, जो आँखों से दृष्टिगोचर होती है। वैकुण्ठ लोक सूक्ष्म लोक है, जिसे इन भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता। जिस प्रकार शरीर में मन, चित, बुद्धि, अहंकार, तथा जीव का अस्तित्व है, किन्तु उन्हें आँखों से देखना सम्भव नहीं, बल्कि ध्यान-समाधि की अवस्था में ही

देखा जा सकता है, उसी प्रकार वैकुण्ठ लोक का अस्तित्व भी तारामण्डल से परे खोजना उचित नहीं। बल्कि सूक्ष्मता में ही खोजा जा सकता है।

नासा (National Aeronautics and Space Administration) की रिपोर्ट के अनुसार कालमाया के इस ब्रह्माण्ड में लगभग १२५ अरब निहारिकायें (आकाशगंगाएँ) हैं, जिनमें असंख्य तारे हैं। इनके परे वैकुण्ठ की कल्पना उचित नहीं। सामान्य अवस्था में जो जीव शरीर में रहने पर या बाहर निकलते समय आँखों से दिखायी नहीं देता, वही समाधि की अवस्था में १६ सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान अवस्था में दिखाई देता है। इसी प्रकार मन, चित्त, बुद्धि आदि भी चन्द्रमा, सूर्य, तथा विद्युत की चमक के समान प्रकाश रूप में दिखायी पड़ते हैं।

इस प्रकार वैकुण्ठ प्रकृति मण्डल का वह सूक्ष्म लोक है, जहाँ सूक्ष्म प्रकाश है और मात्र सूक्ष्म शरीरधारी जीव ही वहाँ रहते हैं। पृथ्वी लोक के स्थूल दृश्यों से वहाँ की तुलना नहीं की जा सकती।

सो मलकूत पैदा फना पल में, कई करत खावंद जबरूत।

सो रोसनी निमूना देख के, पीछे देखो अर्स लाहूत॥२४॥

अक्षर धाम के स्वामी अक्षर ब्रह्म पल भर में ही करोड़ों वैकुण्ठ उत्पन्न करते हैं और लय कर देते हैं। हे सुन्दरसाथ जी! आप पृथ्वी लोक तथा वैकुण्ठ लोक की ज्योति को देखकर (जानकर) परमधाम की अखण्ड नूरमयी ज्योति को देखिए (समझिए)।

इन बिध सहूर जो कीजिए, कछू तब आवे रूह लज्जत।

और भांत निमूना ना बनें, ए तो अर्स अजीम खिलवत॥२५॥

पृथ्वी, वैकुण्ठ, तथा परमधाम की ज्योति की यदि आप समीक्षा (सम्यक् ईक्षण अर्थात् देखना) करते हैं, तब आपकी आत्मा को परमधाम की नूरमयी शोभा का थोड़ा सा स्वाद (अनुभव) मिल सकता है। कालमाया-योगमाया से भी परे परमधाम के मूल मिलावा की शोभा को समझने के लिये समीक्षात्मक दृष्टि के अतिरिक्त अन्य कोई भी साधन नहीं है।

भावार्थ- पृथ्वी लोक में सूर्य के विशाल तेज से सभी परिचित हैं। ऐसे 10^{29} अर्थात् एक लाख करोड़ अरब सूर्य हमारी आकाशगंगा में हैं और इस कालमाया में लगभग १२५ अरब आकाशगंगायें हैं, जबकि यह ब्रह्माण्ड के ज्ञात रूप थोड़ा सा ही अंश है। अभी अज्ञात रूप में

कितनी आकाशगंगायें हैं, इसका ज्ञान किसी भी मानव को नहीं है। योगमाया के तेज के सामने कालमाया के सूर्य कुछ भी अस्तित्व नहीं रखते। नित्य वृन्दावन की शोभा का वर्णन देखिए—

एक जरा तिन जिमी का, ताके तेज आगे सूर कोट।

सो सूरज दृष्टे न आवहीं, इन जिमी जरे की ओट॥

हेम जवेर के बन कहूं, तो ए सब झूठी वस्त।

सोभा जो अविनास की, कही न जाए मुख हस्त॥

बरनन करूं एक पात की, सो भी इन जुबां कही न जाए।

कोट ससी जो सूर कहूं, तो एक पात तले ढंपाए॥

कलस हिन्दुस्तानी २०/१८-२०

जिस रास मण्डल की ऐसी शोभा है, वह सत्स्वरूप की पहली बहिश्त के सामने फीकी ही है।

हृद सद्द दुनी में रहया, पोहोंच्या नहीं नूर रास।
 तो क्यों पोहोंचे असल नूर को, जिनकी ए पैदास॥
 नूर रास भी बरन्यो ना गयो, तो भिस्त बरनन क्यों होए।
 बोहोत बड़ी तफावत, रास भिस्त इन दोए॥

सनंध ३९/३०,३२

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि रास मण्डल या सत्स्वरूप में जो नूरमयी तेज है, उसका मूल वह अक्षर धाम है, जहाँ अक्षर ब्रह्म विराजमान हैं—

रास भिस्त या जो कछू, ए सब पैदा असल नूर।
 तिन असल नूर की क्यों कहूं, जो द्वार आगूं हजूर॥
 ए जो नूर मकान आगूं अर्स के, नूर बका असल।
 ए रूहें असलूं कानों सुनियो, असल तनों के दिल॥

सनंध ३९/३६,३७

स्वयं अक्षर ब्रह्म भी अक्षरातीत के नूर कहे जाते हैं।
ऐसी स्थिति में उस शोभा का वर्णन कैसे सम्भव है, जो
मूल मिलावे में दृष्टिगोचर हो रही है? रास और सत्स्वरूप
की बहिश्त का तेज तो नूर सागर की लहर मात्र है—

रास भिस्त लेहेरें कही, कही नूर मकान की विध।

आगे तो नूर तजल्ला, सो ए देऊं नेक सुध॥

जहां पर जले जबरईल, इतथें आगे न सके चल।

दरगाह अर्स अजीम की, हक हादी रूहें असल॥

नूरजमाल अंग का नूर जो, बड़ी रूह रूहों सिरदार।

बड़ी रूह के अंग का नूर जो, रूहें बुजरक बारे हजार॥

पेहेले कह्या नूर मकान जो, सो नूर माहें वाहेदत।

हक हादी रूहें खिलवत, ए वाहेदत सब निसबत॥

सनंध ३९/४५, ४६, ४८, ५३

इस प्रकार परमधाम की वहदत के नूर की शोभा का वर्णन कदापि सम्भव नहीं है।

आगूं नूर-मकान की कंकरी, देखत ना कोट सूर।

तिन जिमी नंग रोसनी, सो कैसो होसी नूर॥२६॥

अक्षरधाम की एक छोटी सी कंकरी के सामने इस कालमाया के करोड़ों सूर्यों का तेज छिप जाता है (निस्तेज हो जाता है)। ऐसी स्थिति में यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस अक्षरधाम के नगों के नूर की ज्योति (रोशनी) कैसी होगी?

ए नूर मकान कहया रसूलें, आगूं जाए ना सके क्यों ए कर।

तिन लाहूत में क्यों पोहोंचहीं, जित जले जबराईल पर॥२७॥

मुहम्मद साहिब ने इस अक्षरधाम का वर्णन किया है।

जिबरील फरिश्ता भी इसे उलंघकर परमधाम में नहीं जा सका। आगे बढ़ने पर उसके पर जलने लगे।

भावार्थ- अक्षरधाम की सीमा में आने वाले नूर, नीर, रस, और सर्वरस सागर भी परमधाम के अन्दर ही माने जायेंगे। वस्तुतः अक्षरधाम भी परमधाम के अन्दर ही है। सखियों सहित श्री राज जी नूर, नीर, रस, और सर्वरस सागर में भी लीला करने जाते हैं। अक्षर ब्रह्म का निवास होने से इसे अक्षरधाम की संज्ञा अवश्य प्राप्त है, किन्तु लीला रूप में अक्षरधाम सत्स्वरूप माना जायेगा, जिसे उलंघकर जिबरील परमधाम में नहीं जा सका।

कुरआन के पारः १७ तथा पारः २७ में सूरः ५३ नज्म आयत ३-१७ तक में जिबरील के द्वारा सत्स्वरूप तक जाने का वर्णन किया गया है। सर्वरस सागर से ही इश्क और वहदत की भूमिका शुरू हो जाती है, जिसमें सत के

जोश का प्रवेश सम्भव नहीं है। वहाँ पर मात्र इश्क (अनन्य प्रेम) के द्वारा ही जाया जा सकता है। यही कारण है कि जिबरील के पर जलने की बात कही गयी है। यह कथन मात्र आलंकारिक है। जिबरील कोई पक्षी नहीं, बल्कि अक्षर ब्रह्म के जोश की शक्ति (फरिश्ता) है।

ए देखो तुम रोसनी, हक अर्स इन हाल।

जित पर जले जबराईल, कोई फरिस्ता न इन मिसाल॥२८॥

हे साथ जी! आप श्री राज जी के उस परमधाम की अनन्त नूरमयी ज्योति के बारे में विचार कीजिए, जिसके तेज से जिबरील के भी पर जलने लगते हैं, जबकि शक्ति में जिबरील के समान कोई भी नहीं है।

भावार्थ- खुलासा १२/४५ में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि "जबराईल जोश धनी का" अर्थात्

जिबरील धनी का जोश है। यहाँ जिबरील का तात्पर्य श्री राज जी के सत् अंग अक्षर ब्रह्म के जोश (शक्ति) से है, इश्क के जोश से नहीं। यदि इश्क का जोश ही जिबरील होता, तो उसे परमधाम में जाने से कोई भी नहीं रोक सकता था। सत् अंग का जोश होने से ही उसे सर्वाधिक शक्तिशाली कहा गया है।

मेयराज हुआ महंमद पर, नेक तिन किया रोसन।

अब मुतलक जाहेर तो हुआ, जो अर्स में मोमिनों तन॥२९॥

मुहम्मद साहिब को श्री राज जी का दर्शन हुआ और उन्होंने परमधाम का थोड़ा सा ज्ञान संसार में दिया। परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन हैं, इसलिये इनके कारण ही ब्रह्मवाणी के रूप में परमधाम का सारा ज्ञान अवतरित हुआ।

भावार्थ- दूज (द्वितीया) का चन्द्रमा जितना उजाला करता है, उतना ही उजाला मुहम्मद साहिब के दिये हुए ज्ञान से संसार में हो सका। आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबबुज्रमाँ श्री प्राणनाथ जी का ज्ञान उस दोपहर के सूरज के समान है, जिसके प्रकाश में परमधाम की कोई भी वस्तु (लीला, शोभा, इश्क, मारिफत, वहदत आदि) छिपी नहीं रह सकती।

दिल अर्स भी तो कहा, हकें जान ए निसबत।

इन गिरो पर मेयराज तो हुआ, जो दिन ऊग्या हक मारफत॥३०॥

इन ब्रह्मसृष्टियों से अपना मूल सम्बन्ध होने के कारण ही धाम धनी ने इनके दिल (हृदय) को अपना अर्स (परमधाम) कहा है। अब अज्ञानता की रात्रि समाप्त हो चुकी है तथा अक्षरातीत की पूर्ण पहचान (मारिफत) का

ज्ञान तारतम वाणी के रूप में अवतरित हो चुका है। ऐसा लग रहा है कि अब दिन का उजाला फैल गया है। ऐसी स्थिति में इन ब्रह्मसृष्टियों के लिये प्रियतम अक्षरातीत के दीदार का दरवाजा भी खुल गया है।

भावार्थ— अज्ञानता के अन्धकार में आज तक किसी को भी परमधाम का साक्षात्कार न हो सका था। परमधाम की इस ब्रह्मवाणी के अवतरित होते ही ब्रह्मसृष्टियों सहित सभी के लिये परमधाम के साक्षात्कार का मार्ग प्राप्त हो गया है। इसलिये तो कहा गया है कि "हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार।"

ए जो अंदर अर्स अजीम के, खिलवत मासूक या आसिक।

नूर तजल्ला क्यों कहूं, बका वाहेदत हक॥३१॥

परमधाम के मूल मिलावे में एक-दूसरे के आशिक या

मासूक के रूप में श्री राजश्यामा जी और सखियाँ विराजमान हैं। भला श्री राज जी की शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है? उनकी अखण्ड वहदत (एकदिली) तो परमधाम के कण-कण में दृष्टिगोचर हो रही है।

भावार्थ- परमधाम में सभी एक-दूसरे के आशिक हैं।

मासूक तुम्हारी अंगना, तुम अंगना के मासूक।

सिनगार २/४५

का कथन यही बात स्पष्ट करता है। हकीकत के रूप में श्री राज जी का ही स्वरूप सर्वत्र लीला कर रहा है, इसलिये सभी की शोभा समान है, और सबके दिल में एकरूपता है, अर्थात् एक (श्री राज जी) के मन में जो बात आयेगी, वही श्यामा जी, सखियों, खूब-खुशालियों, तथा पशु-पक्षियों के अन्दर भी आयेगी।

इस कथन में यह संशय हो सकता है कि यदि सखियों

के दिल की बातें पशु-पक्षियों में भी आ जाती हैं , तो उन्होंने खेल क्यों नहीं माँगा और मूल मिलावे में क्यों नहीं बैठे?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि परमधाम की लीला को यहाँ के भावों के अनुसार ही दर्शाया गया है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु आत्म-स्वरूप है। यह बात इसी प्रकरण की ४०, ४१ चौपाई में भी दर्शायी गयी है। जब अक्षरातीत के अतिरिक्त वहाँ अन्य कुछ है ही नहीं, तो इस संसार की तरह पशु-पक्षियों को आत्माओं से अलग समझने की भूल क्यों?

इन भांत निमूना लीजिए, करियो हक सहूर मोमिन।

तुम ताले आया लदुन्नी, तुम देखो अर्स रोसन॥३२॥

हे साथ जी! आप इस प्रकार समीक्षात्मक दृष्टि से धनी

की नूरमयी शोभा का चिन्तन करते रहना। सौभाग्यवश, तुम्हें ब्रह्मवाणी का अमृतरस प्राप्त हुआ है। इसके द्वारा तुम अपने हृदय धाम में अखण्ड परमधाम को देखो।

ए तुम ताले तो आइया, जो तुम असल खिलवत।

निसदिन सहूर एही चाहिए, हक बैठे तुमें खेलावत॥३३॥

तुम्हारे भाग्य में यह ब्रह्मवाणी भी इसलिये है, क्योंकि मूल मिलावे में तुम्हारे मूल तन विराजमान हैं। अब तुम्हें दिन-रात मात्र इसी बात का चिन्तन करना चाहिए कि धाम धनी तुम्हें अपने चरणों में बिठाकर माया का यह झूठा खेल दिखा रहे हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह प्रश्न होता है कि ब्रह्मवाणी का रसास्वादन तो ईश्वरी सृष्टि और जीव सृष्टि भी कर रही हैं, पुनः यह क्यों कहा गया है कि यह वाणी मात्र

ब्रह्मसृष्टियों के कारण ही अवतरित हुई है?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि अवश्य ही इस वाणी से ईश्वरी और जीव सृष्टि भी लाभ उठा रही हैं, किन्तु इसका अवतरण मात्र ब्रह्मसृष्टियों को जाग्रत करने के लिये ही हुआ है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी के ये कथन द्रष्टव्य हैं—

किन एक बूंद न पाइया, रसना भी वचन।

ब्रह्माण्ड धनियों देखिया, जो कहावें त्रैगुन॥

प्रकास हिन्दुस्तानी ३१/१०२

न केहेवाय माया मांहे आ वाणी, पण साथ माटे कहे वाणी।

रास १/४४

ल्याए पिऊ वतन थे, बल माया जानी।

प्रकास हिन्दुस्तानी ३१/१३८

यदि ब्रह्मसृष्टि इस संसार में नहीं आती , तो अक्षरातीत के चरण कमल भी नहीं आते और ब्रह्मवाणी का अवतरण भी नहीं होता—

कोई वेद पांचों मुख पढ़ो, कई त्रैगुन जात पढ़त।

पर ए चरन न आवें ब्रह्मसृष्टि बिना, जाकी ब्रह्म सों निसबत॥

सिनगार ७/३३

अब गिन देखो थंभ चौसठ, बीच चारों हिस्सों चार द्वार।

नाम रंग नंग तो कहिए, जो कित खाली देखूं झलकार॥३४॥

हे साथ जी! अब चबूतरे की किनार पर आये हुए ६४ थम्भों को गिनकर देखिए, जिसके चारों दिशा में चार मेहराबी द्वारों (३-३ सीढ़ियों) के आने के कारण थम्भों की हार के चार हिस्से (खाँचे) हो गये हैं। नगों के नाम तथा उनके रंगों का वर्णन तो तब किया जा सकता है,

जब उनकी नूरमयी झलकार से थोड़ी भी जगह बाकी हो।

भावार्थ- प्रत्येक नग से असंख्य प्रकार की किरणें निकलकर चारों ओर जगमगा रही हैं। सभी आपस में एक-दूसरे से मिलकर एकरूप भी हो रही हैं। ऐसी स्थिति में यह निर्णय करना सम्भव नहीं है कि किस थम्भ से किस रंग की किरण निकल रही है।

एक जोत सागर सब हो रह्या, और ऊपर तले सब जोत।

कई सूर उड़ें आगूं कंकरी, तिन भोम की जोत उदोत॥३५॥

इस मूल मिलावा में ऊपर-नीचे चारों ओर ज्योति ही ज्योति दिखायी पड़ रही है। ऐसा लग रहा है कि यहाँ ज्योति का सागर ही लहरा रहा है। जहाँ की एक छोटी सी कँकड़ी (कण) के सामने अनेकों सूर्य निस्तेज हो (छिप) जाते हैं, वहाँ की ज्योति के प्रकाश का वर्णन मैं

कैसे करूँ?

चंद्रवा दुलीचा तकिए, सब जोतैं का अंबार।

जित देखो तित जोत में, नूर क्यों कहूं लेहरें अपार॥३६॥

चाहे चबूतरे की फर्श पर बिछी हुई पशमी गिलम (दुलीचा) हो, या ऊपर चन्द्रवा, या सिंहासन और थम्भों के बीच आए हुए तकियों की शोभा हो, सभी नूरमयी ज्योति के भण्डार के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जहाँ भी देखिए, वहाँ ज्योति की अनन्त लहरें ही दिखायी पड़ रही हैं। ऐसी नूरमयी शोभा का वर्णन भला कैसे किया जा सकता है?

दो दो नंग थंभों के बीच में, बिना नूर न पाइए ठौर।

दिवाल बंधाई नूर की, क्यों कहूं रंग नंग और॥३७॥

मूल मिलावा के चबूतरे के किनारे पर जो ६४ थम्भ आये हैं, उनमें मेहराबों की शोभा है। प्रत्येक मेहराब दो-दो नगों के रंग की है। आधी मेहराब दायीं ओर के थम्भ के नग के रंग की है, तो आधी मेहराब बायीं ओर के थम्भ के रंग की है। इस प्रकार दो थम्भों के बीच में दो नगों के रंगों की किरणें दीवार के रूप में जगमगा रही हैं। एक भी स्थान नूर से खाली नहीं है। ऐसी स्थिति में मैं नगों के रंगों की शोभा का वर्णन कैसे करूँ?

बीच खाली जित जाणा, तित लरत थंभों का नूर।

उत जंग होत नंगन की, तित अधिक नूर जहूर॥३८॥

जो भी खाली स्थान है, उसमें थम्भों से निकलने वाला नूर आपस में टकराने के कारण लड़ता हुआ सा प्रतीत होता है। नगों से निकलने वाली किरणें जब आपस में

टकराती हैं, तो एक आनन्ददायक युद्ध का दृश्य प्रस्तुत हो जाता है और नूरमयी प्रकाश की आभा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

नूर नूर सब एक हो गई, एक दूजी को खेंचत।

दूनी जोत बीच खाली मिनें, रंग क्यों गिने जाएं इत॥३९॥

मूल मिलावा की इस गोल हवेली में चारों ओर नूर ही नूर दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रत्येक नूरमयी तरंग दूसरी तरंग को अपनी ओर आकर्षित करती है, जिससे खाली स्थान में दोगुनी ज्योति उत्पन्न हो जाती है। यहाँ ऐसी अलौकिक शोभा है, जिसमें रंगों की गिनती करना सम्भव ही नहीं है।

भावार्थ— जिस प्रकार समुद्र की लहरें उमड़ा करती हैं, उसी प्रकार नूरमयी ज्योति के सागर से असंख्य रंगों

वाली किरणों का समूह तरंगों के रूप में एक-दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करता है, जिससे अलौकिक शोभा वाले प्रकाश का प्रकटन होता है।

जिमी जात भी रूह की, रूह जात आसमान।

जल तेज वाए सब रूह को, रूह जात अर्स सुभान॥४०॥

परमधाम में सभी ब्रह्मसृष्टियाँ श्री राज जी की अँगरूपा हैं, इसलिए वे उनकी ही स्वरूपा हैं। वहाँ की धरती भी आत्म-स्वरूप है। यहाँ तक कि आकाश भी आत्म-स्वरूप होकर अपने प्राणवल्लभ को रिझाता है। परमधाम में लीला रूप में दिखायी देने वाला जल, वायु, और अग्नि भी आत्मा के ही स्वरूप में धनी को रिझाते हैं।

पसु पंखी या दरखत, रूह जिनस हैं सब।

हक अर्स वाहेदत में, दूजा मिले ना कछुए कब॥४१॥

उस स्वलीला अद्वैत परमधाम में चाहे कोई पशु हो, पक्षी हो, या वृक्ष ही क्यों न हो, सभी आत्म-स्वरूप हैं। परमधाम में श्री राज जी की वहदत में उनके (धनी के) अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व हो ही नहीं सकता।

भावार्थ- श्री राज जी का दिल मारिफत (विज्ञान) का स्वरूप है, जिसका हकीकत (सत्य) के रूप में प्रकटीकरण परमधाम के पच्चीस पक्षों, श्यामा जी, सखियों, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूब-खुशालियों, पशु-पक्षियों, और वृक्षों के रूप में है। सभी श्री राज जी के ही स्वरूप हैं। हकीकत में ये अलग-अलग रूपों में लीला कर रहे हैं, किन्तु मारिफत की दृष्टि से इन्हें श्री राज जी

का ही स्वरूप समझना चाहिए। हकीकत की दृष्टि से भी सभी पशु-पक्षी, वृक्ष, धरती, आकाश, चाँद-सितारे आत्म-स्वरूप होकर ही अपने प्राणप्रियतम को रिझाते हैं।

दूजा तो कछू है नहीं, दूजी है हुकम कुदरत।

सो पैदा फना देखन की, फना मिले न माहें वाहेदत॥४२॥

परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त और कोई दूसरा है ही नहीं। यदि कोई दूसरा है, तो मात्र उनके हुकम की शक्ति अर्थात् उनका सत् अंग अक्षर ब्रह्म। वे अक्षर ब्रह्म अपनी इच्छा मात्र से योगमाया के द्वारा उत्पन्न और लय होने वाले असंख्य ब्रह्माण्डों को बनाते हैं। इस मायावी खेल को देखने के लिये ही ब्रह्मसृष्टियाँ यहाँ आई हुयी हैं। उस अखण्ड वहदत से इस नाशवान ब्रह्माण्ड की तुलना

नहीं हो सकती।

भावार्थ- चिद्धन स्वरूप श्री राज जी के दो अंग हैं— सत् अंग अक्षर ब्रह्म तथा आनन्द अंग श्यामा जी। इस प्रकार उनके हुक्म अर्थात् दिल की इच्छा शक्ति दो रूपों में कार्य करती है। पहले रूप में सत् अंग के द्वारा वह असंख्य ब्रह्माण्डों का सृजन-लय करती है, तो दूसरे रूप में आनन्द स्वरूप श्यामा जी के द्वारा सखियों के साथ प्रेम और आनन्द की लीला करती हैं। इसे श्रीमुखवाणी में इस प्रकार कहा गया है—

मेरे सब अंगों हक हुक्म, बिना हुक्म जरा नाहें।

सोई हुक्म हक में, हक बसें अर्स में ताहें॥

सिनगार २/११

हक हुक्म तो है सबमें, बिना हुक्म कोई नाहें।

पर यामें हुक्म नजर लिए, और रूह का बड़ा मता या माहें॥

सिनगार २७/१७

हकें किया हुकम वतन में, सो उपजत अंग असल।

जैसा देखत सुपन में, ए जो बरतत इत नकल॥

खिलवत ५/३७

जो कछुए चीज अर्स में, सो सब वाहेदत माहें।

जरा एक बिना वाहेदत, सो तो कछुए नाहें॥४३॥

परमधाम में लीला रूप में प्रत्येक वस्तु एकदिली (वहदत) के अन्दर है, अर्थात् सबकी शोभा, इच्छा, आनन्द समान है। रंच मात्र भी भेद नहीं है। वहाँ का एक कण भी वहदत के बिना नहीं है। सच तो यह है कि परमधाम में वहदत के बिना अन्य किसी का भी अस्तित्व नहीं है।

भावार्थ— श्री राज जी की वहदत की लीला सर्वत्र है,

अन्तर केवल इतना है कि लीला रूप में उनकी वहदत के दो भेद हो जाते हैं। अक्षर ब्रह्म के साथ सत् की वहदत, तथा श्यामा जी, सखियों, तथा महालक्ष्मी के साथ आनन्द और प्रेम की वहदत।

ए खिलवत हक नूर की, नूर आला नूर मकान।

बिछौना सब नूर का, सब नूरै का सामान॥४४॥

यह सम्पूर्ण मूल मिलावा श्री राज जी के नूर से ही सुशोभित है। यह सर्वोपरि नूर का धाम है। चबूतरे पर बिछी हुई सुन्दर गिलम भी नूर की है तथा शोभा रूपी सम्पूर्ण सामग्री भी नूरमयी है।

भावार्थ— "आला" शब्द का अर्थ सर्वोपरि होता है। मूल मिलावे को सर्वश्रेष्ठ नूर का स्थान कहने का कारण यह है कि वर्तमान समय में श्री राज जी लीला रूप में मूल

मिलावे में ही सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके ही नूर से सम्पूर्ण परमधाम की शोभा है।

उनके सत् अंग अक्षर ब्रह्म से ही योगमाया का नूर है, किन्तु उसमें वहदत की एकरसता नहीं है। अव्याकृत के नूर की अपेक्षा सबलिक के नूर में प्रेम, आनन्द, और तेज की अधिकता है। इसी प्रकार केवल ब्रह्म में सबलिक से, तथा सत्स्वरूप में केवल ब्रह्म से भी अधिक प्रेम, तेज, और आनन्द है। सम्पूर्ण परमधाम में वहदत का रस है, जो योगमाया में नहीं है। सनन्ध ग्रन्थ प्रकरण ३९ में इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। यही कारण है कि मूल मिलावे के नूर को "नूर आला" कहा गया है।

नूर चंद्रवा क्यों कहूं, नूरै की झालर।

तले तरफें सब नूर की, देखो नूरै की नजर॥४५॥

नूरमयी चन्द्रवा (चन्दोवा) की अलौकिक शोभा का वर्णन कैसे किया जाये? उसमें लटकती हुई झालर भी नूरमयी है। चन्द्रवा के नीचे चबूतरे की सारी शोभा नूर से ही परिपूर्ण है। हे साथ जी! अपनी नूरमयी दृष्टि से इस शोभा को देखिए।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का आशय यह है कि मूल मिलावा की इस शोभा को लौकिक भावों से नहीं देखना चाहिये। ऐसी भी कल्पना नहीं करनी चाहिये कि वहाँ भौतिक प्रकाश से बनी हुई शोभा होगी। अक्षरातीत श्री राज जी का नख से शिख तक का जो स्वरूप है, उसी के तदोगद (हुबहू) मूल मिलावा या परमधाम के कण-कण का स्वरूप है। इसे ही नूर की दृष्टि से देखना कहते हैं। यह दृष्टि बिना प्रेम के नहीं प्राप्त हो सकती।

रूहें मिलावा नूर में, बीच कठेड़ा नूर भर।

थंभ तकिए सब नूर के, कछू और ना नूर बिगर॥४६॥

चारों मेहराबी द्वारों को छोड़कर थम्भों के बीच में कठेड़े की शोभा आयी है। कठेड़े से तकिये लगे हैं। सिंहासन से लेकर कठेड़े तक सखियाँ सट-सट कर बैठी हैं। यह सारी शोभा नूरमयी है। थम्भ और तकिये सभी नूर के हैं। वहाँ नूर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

तखत सोभित बीच नूर का, नूर में जुगल किसोर।

बैठे हक बड़ी रूह नूर में, नूर सोभा अति जोर॥४७॥

चबूतरे के बीच में नूरमयी सिंहासन शोभायमान है। उस पर नूरमयी शोभा धारण किये हुए युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी विराजमान हैं। यह नूरमयी शोभा बहुत अधिक मोहक है।

भावार्थ- श्री लालदास जी की वृत्त के इस कथन के आधार पर यह मानना उचित नहीं है कि सिंहासन चबूतरे के बीच में नहीं बल्कि पश्चिम दिशा में पाच और नीलवी के थम्भों से लगते हुए है-

इन दुलीचे पर सोभित, कंचन रंग सिंहासन।

पाच नीलवी के लगते, झलकत नूर रोसन॥

बड़ी वृत्त १५/८३

जिस प्रकार अपने हाथ की दो अँगुलियों को दूर स्थित दो थम्भों की सीध में करके देखते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों अँगुलियाँ दोनों थम्भों से सटी हुई हैं, जबकि व्यवहार में ऐसा नहीं होता। अँगुलियों और थम्भों के बीच बहुत दूरी होती है।

इसी प्रकार श्री लालदास जी के कथन का आशय यह है कि यद्यपि सिंहासन तो पश्चिमी गिलम के बीचों-बीच

है, किन्तु जब पूर्व दिशा से सिंहासन के किनारे के पायों को देखते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिम दिशा में इसके दोनों पाये पाच और नीलवी के थम्भों से सटे हुए हैं। चौपाई में "लगते" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ होता है प्रतीत होना।

परमधाम शब्दातीत है। वहाँ प्रत्येक इन्द्रिय में पाँचों गुण निहित हैं, इसलिये मन में कभी भी ऐसा संशय नहीं रखना चाहिए कि यदि सिंहासन बीच में होगा तो पीछे की सखियाँ श्री राज जी की ओर कैसे देख सकेंगी?

ब्रह्मवाणी का कथन अन्तिम सत्य है। श्री लालदास जी का भी कथन सत्य है, किन्तु उपरोक्त चौपाई के अर्थ में उचित अवधारणा की आवश्यकता है। श्रीमुखवाणी में कई स्थानों पर चबूतरे के बीच में ही सिंहासन की स्थिति बतायी गयी है।

एह जोत जो जोत में, बैठियां ज्यों सब मिल।
क्यों कहूं सोभा इन जुबां, बीच सुन्दर जोत जुगल॥

सागर २/४

गिरदवाए तखत के, कई बैठियां तले चरन।
जानों जिन होवें जुदियां, पकड़ रहें हम सरन॥

सागर २/१०

जैसे सरूप रुहन के, चरनों लगे गिरदवाए।
त्यों पुतलियां मोतिन की, कदमों रही लपटाए॥

सिनगार १८/६१

नूर सरूप रूप नूर के, नूर वस्तर भूखन।
सोभा सुन्दरता नूर की, सब नूरै नूर रोसन॥४८॥
परमधाम में युगल स्वरूप और सखियों आदि के रूप

तथा स्वरूप दोनों ही नूरमयी हैं। उनके वस्त्र एवं आभूषण भी नूरमयी हैं। उनकी सुन्दरता तथा शोभा भी नूरमयी है। सर्वत्र नूर ही नूर लीला कर रहा है।

भावार्थ- इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में किसी के बाह्य शरीर को "रूप" कहते हैं, किन्तु उसके अन्दर छिपा हुआ वह तत्व जिससे पूरा शरीर चेतन रहता है "स्वरूप" कहलाता है। इस संसार में स्वरूप के बिना रूप निष्क्रिय और निर्जीव है, किन्तु परमधाम में एक ही परब्रह्म का स्वरूप, नूर रूप में अन्दर-बाहर एकरस हो रहा है। यजुर्वेद ४०/५ में इसे इस रूप में व्यक्त किया गया है- "तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः" अर्थात् वह ब्रह्म ही अन्दर-बाहर सर्वत्र एकरस हो रहा है।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।

अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥

मुण्डक उपनिषद् २/११

अर्थात् यह अजर-अमर ब्रह्म ही आगे, पीछे, दायें, बायें, ऊपर, नीचे, सर्वत्र विराजमान है। यह ही सर्वोत्कृष्ट है।

गुण अंग इंद्रि नूर की, नूरै बान वचन।

पिंड प्रकृत सब नूर की, नूरै केहेन सुनन॥४९॥

प्रकृति के सत्त्व, रज, और तम के विपरीत वहाँ द्रव्य के गुण के रूप में मात्र नूर है, अर्थात् नूर ही गुण है और नूर ही द्रव्य है। अन्तःकरण और इन्द्रियाँ भी नूरमयी हैं। वाणी तथा शब्द भी नूर के हैं। वहाँ के शरीर तथा प्रकृति भी नूरमयी हैं। कहना-सुनना भी नूरमयी है।

भावार्थ- जब परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं, तो उनके स्वरूप से भिन्न अन्य किसी पदार्थ के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। इस भौतिक जगत् में जिस प्रकार त्रिगुणात्मिक प्रकृति से कारण शरीर (अन्तःकरण), सूक्ष्म शरीर (१० इन्द्रिय तथा ५ सूक्ष्म भूत तथा ४ अन्तःकरण), और स्थूल शरीर की रचना होती है, वैसी स्थिति परमधाम में नहीं है। वहाँ सर्वत्र एकमात्र नूर की लीला है।

रूहें बड़ी रूह नूर में, नूर हक के सदा खुसाल।

हक नूर निसदिन बरसत, नूर अरस-परस नूरजमाल॥५०॥

श्यामा जी एवं सखियों का स्वरूप नूरमयी है। वे नूरमयी स्वरूप वाले श्री राज जी को हमेशा ही अपने प्रेम से रिझाती हैं। इनके ऊपर भी श्री राज जी के इश्कमयी नूर

की वर्षा होती है। इस प्रकार श्री राज जी और नूर के सभी स्वरूप अरस-परस (ओत-प्रोत) हैं।

भावार्थ- श्री राज जी का ही स्वरूप सभी रूपों में लीला कर रहा है। परमधाम के पच्चीस पक्षों में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, सब धाम धनी का नूर ही है।

नाम ठाम सब नूर के, कहूं जरा ना नूर बिन।

मोहोल मन्दिर सब नूर के, माहें बाहेर नूर पूरन॥५१॥

परमधाम के सभी स्थान और नाम नूरमयी हैं। एक कण भी नूर के बिना नहीं है। यहाँ तक कि सभी महल और मन्दिर भी नूरमयी शोभा से ओत-प्रोत हैं। वहाँ के सभी पदार्थों में अन्दर-बाहर एक ही नूर पूर्ण हो रहा है।

भावार्थ- तारतम ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण, संसार के मनीषीजन इस नश्वर जगत् को ही ब्रह्मरूप

मानकर "सर्वम् खल्विदं ब्रह्म" का उद्धोष करने लगे।
वस्तुतः उपनिषदों का यह कथन मात्र परमधाम के लिये
ही घटित होता है।

अर्स भोम सब नूर की, नूरै के थंभ दिवाल।

द्वार बार कमाड़ी नूर के, नूर गोख जाली पड़साल॥५२॥

परमधाम की सम्पूर्ण भूमिका ही नूरमयी है। वहाँ के
थम्भ और दीवारें भी नूरमयी और चेतन हैं। निजधाम के
दरवाजे (द्वार) और पल्ले भी नूर के हैं। जालीदार दीवारें,
छज्जे, तथा पड़सालें (देहलानें) भी नूरमयी हैं।

भावार्थ— यद्यपि "द्वार" और "बार" एकार्थवाची शब्द
हैं, किन्तु इनमें सूक्ष्म अन्तर होता है। बार शब्द केवल
छोटे दरवाजों के लिये प्रयुक्त होता है।

मेहेराव झरोखे नूर के, जरे जरा सब नूर।

अर्स माहें बाहेर सब नूर में, नूर नजीक नूर दूर॥५३॥

परमधाम का एक-एक कण नूरमयी है। वहाँ की मेहराबें तथा खिड़कियाँ (झरोखे) सभी नूर के हैं। उस स्वलीला अद्वैत परमधाम में दूर हो या निकट, लीला रूपी सभी पदार्थों में एकमात्र नूर ही अन्दर-बाहर क्रीड़ा कर रहा है।

नूर नाम रोसन का, दुनी जानत यों कर।

सो तो रोसनी जिद अंधेर की, दुनी क्या जाने लदुन्नी बिगर॥५४॥

संसार के लोग ऐसा समझते हैं कि रोशनी (प्रकाश) ही नूर है, जबकि वास्तविकता कुछ और है। भला तारतम ज्ञान के बिना वे नूर के स्वरूप के बारे में क्या जान सकते हैं? वे तो इस मायावी ब्रह्माण्ड की रोशनी को ही

नूर समझने की भूल कर बैठते हैं।

भावार्थ- इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में प्रत्येक प्रकाशमयी वस्तु, चाहे वह सूर्य, नक्षत्र, विद्युत आदि ही क्यों न हो, अग्नि तत्व का स्वरूप है, जो जड़ है। अग्नि तत्व वायु तत्व से प्रकट हुआ है और वायु तत्व जड़ आकाश से प्रकट हुआ है। आकाश का स्वरूप निराकार है, तथा अहंकार, महत्तत्त्व, एवं मोह सागर (अन्धकार) का भी स्वरूप निराकार है। इस प्रकार निराकार वायु एवं निराकार आकाश से प्रकट होने वाले सूर्य आदि नक्षत्रों की ज्योति (रोशनी) को नूर समझ लेना शीशे को हीरा समझने जैसी बात है। ब्लैक होल के अन्दर न जाने कितने सूर्य लय हो जाया करते हैं?

यद्यपि इसी प्रकरण की चौपाई २८ में "रोसनी" शब्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु वह परमधाम के लिये है।

परमधाम का प्रकाश अक्षरातीत का ही स्वरूप है, जो सत्, चित, आनन्दमयी, स्वलीला अद्वैत, और अनन्त है, जबकि इस संसार का प्रकाश असत्, जड़, दाहकारक, मायामयी, और वायु तत्व में लीन हो जाने वाला है।

तले भोम चबूतरा, बैठा हक मिलावा इत।

हक हादी ऊपर बैठ के, गिरो को खेलावत॥५५॥

रंगमहल की प्रथम भूमिका में पाँचवी गोल हवेली है, जिसके चबूतरे पर सुन्दरसाथ के बीच में युगल स्वरूप सिंहासन पर विराजमान हैं, और वहीं बैठे-बैठे माया का खेल दिखा रहे हैं।

अर्स मता अपार है, दिल में न आवे बिना सुमार।

ताथें ल्याऊं बीच हिसाब के, ज्यों रूहें करें विचार॥५६॥

परमधाम की लीला, शोभा, तथा विस्तार-सम्बन्धी ज्ञान अनन्त है। जब तक वह सीमाबद्ध न हो, तब तक वह ज्ञान हृदय में नहीं आ पाता, इसलिये मैंने परमधाम के इस ज्ञान को बहुत ही सीमित कर दिया है, ताकि सुन्दरसाथ उसका चिन्तन कर सकें।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी में परमधाम का वर्णन वैसे ही है, जैसे हिमालय पर्वत को सरसों के एक दाने के रूप में दर्शाना। इतना वर्णन भी परब्रह्म के आवेश के कारण सम्भव हो सका, अन्यथा संसार के मनीषीजन तो नेति-नेति कहकर मौन हो गये। "अद्वैत सब्द जो बोलिये, तो सिर पड़े उतर" का कथन इसी सम्बन्ध में है। परमधाम का वर्णन कितना कठिन है, यह सिनगार ग्रन्थ के इस

कथन से स्पष्ट हो जाता है—

ए निरने करना अर्स का, तिनमें भी हक जात।

इत नूर अकल भी क्या करे, जित लदुन्नी गोते खात॥

सिनगार २२/१२४

अर्स नाहीं सुमार में, सो हक ल्याए माहें दिल मोमिन।

बेसुमार ल्याए सुमार में, माहें आवने दिल रूहन॥५७॥

यद्यपि परमधाम हर दृष्टि (शोभा, लीला, एवं विस्तार आदि) से अनन्त है, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों के दिल में इसका ज्ञान अवतरित करने के लिये धाम धनी ने शब्दों को सीमा में बाँध दिया है। इस प्रकार प्रियतम अक्षरातीत की कृपा (मेहर) से ही यह शब्दातीत ज्ञान सुन्दरसाथ के धाम हृदय में प्रकाशित हो सका है।

इत फिरते साठ मन्दिर, तिन बीच गलियां चार।

चारों तरफों देखिए, जानों जोतै का अंबार॥५८॥

मूल मिलावा में गोलाई में ६० मन्दिरों की एक हार विद्यमान है, जिसकी चारों दिशा में चार-चार दरवाजे (गलियाँ) शोभायमान हैं। इस हवेली में कभी भी देखा जाये तो चारों ओर ज्योति ही ज्योति का भण्डार नजर आता है।

चौकठ ताके घोड़ले, और दिवालों चित्रामन।

सोभा क्यों कहूं जोत में, भरयो नूर रोसन॥५९॥

दरवाजों की सुन्दर चौकठों, तथा उनसे लगे हुए आलों (घोड़लों), ताकों, एवं दीवारों पर बने हुए चित्रों की शोभा का वर्णन करना सम्भव नहीं है। चारों ओर नूरमयी ज्योति जगमगा रही है।

भावार्थ- छत को सहारा देने के लिये दीवार से घोड़े की आकृति में जो वस्तु जोड़ी जाती है, उसे घोड़ला कहते हैं। इसी प्रकार दीवार के अन्दर छोटी-छोटी वस्तुओं को रखने के लिये एक खाली स्थान बना होता है, जिसे ताका (ताखा) कहते हैं।

दिवालों चित्रामन, कई जोत उठें तरंग।

साम सामी ले उठत, करत माहों माहें जंग॥६०॥

दीवारों पर बहुत ही सुन्दर चित्र बने हुए हैं, जिनसे अनेक प्रकार की ज्योति की तरंगें निकलती हैं। जब आमने-सामने की दीवारों से निकलने वाली नूरमयी तरंगें आपस में टकराती हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे युद्ध कर रही हों।

बिरिख बेली कई जवेर की, सकल वनस्पति।

नकस कटाव केते कहूं, बनी पसु पंखी जात जेती॥६१॥

दीवारों पर जवाहरातों से बने हुए अनेक प्रकार के वृक्षों तथा उनसे लिपटी हुई लताओं की शोभा है। जितनी भी प्रकार की वनस्पतियाँ या पशु-पक्षियों की जातियाँ हो सकती हैं, उन सबकी शोभा दीवारों पर आयी हुई है। दीवारों पर दिखने वाले बेल-बूटेदार चित्रों की अनन्त सुन्दरता का वर्णन मैं कैसे करूँ।

देख देख के देखिए, सोभा अति सुन्दर।

जैसी देखियत दिवालों, तिनसे अधिक अन्दर॥६२॥

हे साथ जी! अनन्त सौन्दर्य से भरी हुई इस शोभा को आप बारम्बार देखिए। जो शोभा आप दीवारों पर देख रहे हैं, उससे अधिक शोभा मन्दिरों के अन्दर है।

भावार्थ- यद्यपि परमधाम में वहदत होने के कारण प्रत्येक वस्तु की सुन्दरता समान है, किन्तु उपमा की दृष्टि से नयी वस्तु के वर्णन में उसे पूर्व की वस्तु की अपेक्षा अधिक सुन्दर कह दिया जाता है। इस चौपाई में "अन्दर" शब्द का प्रयोग मन्दिर के अन्दर रखी हुई वस्तुओं के लिये किया गया है, जो आगे की चौपाइयों (६४, ६५, ६६) में वर्णित है।

अधिक चित्रामन अन्दर, क्या क्या देखों इत।

जिनको देखों निरख के, जानों एही अधिक सोभित॥६३॥

मन्दिरों के अन्दर इतने अधिक (अनन्त) चित्र हैं कि यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि किस-किसको देखें? किसी को भी गौर से (ध्यान से, गहराई से) देखने पर यही प्रतीत होता है कि यही सबसे अधिक सुन्दर है।

अन्दर कई वस्तां धरी, कई सेज्या चौकी सन्दूक।

जित सोभा जो लेत है, तित देखिए तिन सलूक॥६४॥

मन्दिरों के अन्दर अनेक प्रकार की वस्तुएँ रखी हुई हैं। शयन करने के लिये अनेक शय्यायें (सेज्या) हैं। बैठने के लिये चौकियाँ हैं तथा वस्तुएँ रखने के लिये सन्दूक हैं। जहाँ पर जिस वस्तु की शोभा उचित होती है, वहाँ पर वही वस्तु दिखायी देती है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब परमधाम पूर्ण है तो वहाँ पर मायावी जगत् की तरह सन्दूकों, डिब्बों, तथा शायिकाओं आदि की क्या आवश्यकता है?

इसके विषय में यही बात कही जा सकती है कि "अर्स बका बरनन किया, ले मसाला इत का", अर्थात् यहाँ की उपमा देकर उस शब्दातीत परमधाम को वर्णित करने का

प्रयास किया गया है, जिससे ब्रह्मसृष्टियाँ उसे अपने धाम हृदय में बसा सकें। इसी प्रकरण की चौपाई ५७ में यह बात स्पष्ट रूप से कह भी दी गयी है कि "बेसुमार ल्याए सुमार में, माहें आवने दिल रुहन।" यही कारण है कि परमधाम में सर्वत्र ब्रह्मरूपता तथा अनन्तता होते हुए भी लौकिक जगत की तरह वर्णन किया गया है। परिक्रमा ग्रन्थ में अष्ट प्रहर की लीला के प्रसंग में यह बात दृष्टिगोचर हो जाती है।

कई सीसे प्याले डब्बे, कई अन्दर गिरद देखत।

कई तबके छोटी बड़ियां, कई सीकियां लटकत॥६५॥

मन्दिरों के अन्दर चारों ओर देखने पर अनेक प्रकार की बोतलें, प्याले, और डिब्बे दिखायी पड़ते हैं। छोटी-बड़ी बहुत सी थालियाँ (तश्तरियाँ) भी रखी हैं, तो बहुत से

छींके भी लटक रहे हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में उन वस्तुओं का वर्णन किया गया है, जिनमें कुछ रखा जाता है। यहाँ "सीसे" का तात्पर्य दर्पण से नहीं है, बल्कि शीशे की छोटी-बड़ी बोतलों से है।

घड़े या उसके समान आकार वाले बर्तनों को कुछ रस्सियों के सहारे लटका कर रखा जाता है। इनमें आवश्यक वस्तुएँ रखी जाती हैं और इन्हें छीका कहते हैं।

अन्दर की वस्तां क्योँ कहूँ, और क्योँ कहूँ चित्रामन।

जो मन्दिरों अन्दर देखिए, तो दिल होवे रोसन॥६६॥

मन्दिरों के अन्दर रखी हुई वस्तुओं की संख्या और सजावट के विषय में मैं क्या कहूँ? इसी प्रकार चित्रों की

सुन्दरता का वर्णन कैसे हो सकता है? यदि मन्दिरों के अन्दर की वह शोभा दिख जाये, तो हृदय में आनन्द का प्रवाह उमड़ता है।

भावार्थ- इस चौपाई में वर्णित "दिल होवे रोसन" का तात्पर्य है – हृदय में उस प्रेम और आनन्द का प्रकटीकरण हो जाना, जिससे हृदय माया के अन्धकारमय कष्ट से पृथक हो जाये।

बार-साखें द्वार ने, सोभें साठों मन्दिरों के।

सोभें गिरदवाए बराबर, एक एक पें अधिक सोभा ले॥६७॥

यद्यपि मूल मिलावा की इस हवेली के साठों (६०) मन्दिर चौरस हैं, किन्तु गोल घरे में आये हुए हैं। इनमें प्रत्येक मन्दिर में दरवाजे के पल्ले तथा चौकठ बहुत अधिक सुशोभित हो रहे हैं। सभी की शोभा एक-दूसरे से

अधिक है।

बारीक इन कमाड़ियों, अनेक चित्रामन।

रंग नंग या तखतें, ए सब जवेर चेतन॥६८॥

दरवाजों के पल्लों पर बहुत से सूक्ष्म चित्र बने हुए हैं। इन पल्लों (किवाड़ों) के चित्रों में जो रंग और नंग प्रयुक्त हुए हैं या जो पट्टियाँ लगी हुई हैं, सभी जवाहरातों की हैं और चेतन हैं।

ना चितारे चेतरी, ना घड़ी ना किन समारी।

ए अर्स जिमी थंभ मोहोलातें, या दिवालें या द्वारी॥६९॥

परमधाम की इस नूरमयी धरती, थम्भों, महलों, दीवारों, या दरवाजों पर न तो किसी चित्रकार ने चित्रकारी की है, न बनाया है, और न ही सजाया है।

भावार्थ- जिस प्रकार अक्षरातीत स्वयंभू और अनादि हैं, उसी प्रकार परमधाम की लीला रूपी प्रत्येक वस्तु भी स्वयंभू, ब्रह्मरूप, और अनादि है, क्योंकि सब कुछ उन्हीं के मारिफत स्वरूप हृदय का हकीकत (यथार्थ) में प्रकट रूप है। धाम के चित्रों को देखकर ऐसा कभी भी नहीं सोचना चाहिए कि किसी चित्रकार ने इन्हें बनाकर रंगों से सजाया है।

किनार दिवालें द्वार ने, लाल दोरी दोए दोए।

मन्दिर मन्दिर की हद लग, सोभा लेत अति सोए॥७०॥

मन्दिरों की दीवारों तथा दरवाजों की किनार पर लाल रंग की दो-दो डोरियाँ (रेखायें, पट्टियाँ) आयी हैं। ये प्रत्येक मन्दिर की किनार पर हैं तथा बहुत अधिक शोभा ले रही हैं।

भावार्थ- ६० मन्दिरों की बाहरी दीवार पर लाल रंग की दो दोरी आयी हैं। इसके ऊपर साथ-साथ लगकर काँगरी चली गयी है। एक मन्दिर की दीवार की शोभा इस प्रकार है- हाँस के कोनों के साथ लगकर ऊपर के किनारे से दो दोरी लाल रंग की सौ हाथ अक्शी थम्भों के साथ होती हुई नीचे उतरी है। फिर ये जमीन के साथ लगकर दीवार पर ३३ हाथ की लम्बी चली गयी है। इसके पश्चात् चौखट के साथ अक्शी थम्भ के ऊपर होकर ३३ हाथ की ऊँची गयी है। फिर ३३ हाथ की छोटी मेहराब से होकर पुनः अक्शी थम्भ से ३३ हाथ नीचे उतरकर जमीन के साथ लगकर ३३ हाथ गयी है। इसके बाद हाँस के कोने के साथ लगकर पुनः ऊपर गयी है, फिर दूसरे मन्दिर के कोनों के साथ लगकर नीचे उतरी है। इस दोरी के साथ-साथ काँगरी की चित्रकारी

की भी शोभा आती गयी है।

दोरी लगती कांगरी, सब ठौरों गिरदवाए।

चित्रामन तिनके बीच में, जो देखों सो अधिक सोभाए॥७१॥

सभी जगह दोरी के साथ-साथ काँगरी की भी शोभा आयी है। इनके बीच में सुन्दर-सुन्दर चित्र बने हैं। जिस भी चित्र को देखिये, वह दूसरे से अधिक सुन्दर लगता है।

साठों तरफों मन्दिर, नई नई जुदी जुगत।

ए साठों फेर के देखिए, सोभा और पे और अतंत॥७२॥

मूल मिलावा के ये ६० मन्दिर अलग-अलग प्रकार की नई-नई शोभा से युक्त हैं। यदि आप इन सभी मन्दिरों को बार-बार देखें, तो इनमें से प्रत्येक की शोभा दूसरे से

अनन्त गुना अधिक दिखती है।

भावार्थ- परमधाम की प्रत्येक वस्तु अनन्त में है, चाहे वह गणना की दृष्टि हो या शोभा-शक्ति की। प्रत्येक वस्तु परब्रह्म का स्वरूप होने से शोभा में अनन्त गुना दिखती है, जबकि वास्तविकता यह होती है कि सभी की शोभा समान होती है, नाम मात्र के लिये भी कम या अधिक नहीं। ऐसा केवल उपमा की दृष्टि से कहा गया है।

क्यों कहूं जुगत अंदर की, क्यों कहूं जुगत बाहेर।

जित देखों तित लग रहों, जानों नजरों आवे जाहेर॥७३॥

चाहे मन्दिरों के अन्दर की शोभा की बात हो या बाहरी शोभा की, उसका यथार्थ वर्णन करना बहुत कठिन है। मैं जहाँ भी शोभा को देखती हूँ, उसी में डूब जाती हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं उसे साक्षात् देख रही हूँ।

उपली भोम चढ़न को, सीढ़ियां अति सोभित।

नई नई तरह नए रंगों, सामी जोतें जोत उठत॥७४॥

ऊपर की भूमिकाओं में जाने के लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, जो बहुत अधिक शोभा ले रही हैं। ये सीढ़ियाँ हमेशा ही नयी रहती हैं और अनेक प्रकार के नये-नये रंगों में दृष्टिगोचर होती हैं। इन सीढ़ियों से नूरमयी ज्योति निकलकर सामने की ओर जगमगाती रहती है।

भावार्थ- यद्यपि रसोई की हवेली के वर्णन में यह अवश्य कहा जाता है कि "स्याम स्वेत के बीच में, सुन्दर सीढ़ियां सोभित", किन्तु इस प्रकरण की चौपाई ७४, ७५, ७६ तथा ७७ से यही सिद्ध होता है कि मूल मिलावा के इन सभी ६० मन्दिरों में ऊपर की भूमिकाओं में जाने के लिये सीढ़ियाँ शोभायमान हैं। इतना ही नहीं, प्रथम भूमिका में ६०००-६००० मन्दिरों की दोनों हारों

सहित जितने भी मन्दिर आये हैं, सभी में ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ हैं, क्योंकि परमधाम में कहीं भी नाम मात्र की भी न्यूनता नहीं हो सकती।

सीढ़ियां अति झलकत, जब सखियां उतर चढ़त।

प्रतिबिंब सखियों सोभित, पड़घा मीठे स्वर उठत॥७५॥

जिस समय सखियाँ सीढ़ियों से चढ़ती-उतरती हैं, उस समय सीढ़ियाँ अपने नूरी प्रकाश में झलकार करने लगती हैं। दर्पण के समान स्वच्छ सीढ़ियों के अन्दर सखियों का झलकता हुआ प्रतिबिम्ब सुशोभित होता है और उनके पैरों से बहुत ही मधुर ध्वनि निकलती है।

स्वर भूखन के बाजत, मीठे अति रसाल।

इनकी सोभा क्यों कहूं, जाको खावंद नूरजमाल॥७६॥

सीढ़ियों पर चलते समय ब्रह्मसृष्टियों के आभूषणों से बहुत ही आनन्द देने वाली मधुर ध्वनि निकला करती है। इन ब्रह्मात्माओं की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ, जिनके प्रियतम अक्षरातीत हैं?

सीढ़ियां अति सोभित, माहें मंदिरों सबन।

कहूं कहूं देहेलान में, जो जित सो तित रोसन॥७७॥

सभी मन्दिरों में सीढ़ियों की बहुत अधिक शोभा है। कहीं-कहीं दहलानों में भी सीढ़ियों की शोभा आयी है। इस प्रकार सीढ़ियाँ भले ही कहीं भी क्यों न हों, उनकी शोभा सर्वत्र छायी है।

दो दो थंभ आगूं द्वारने, तिन आगूं दूसरी हार।

ए थंभ अति बिराजत, सोभा नाहीं सुमार॥७८॥

चारों मुख्य द्वारों के आगे दो-दो थम्भों की शोभा है। उनके आगे थम्भों की दूसरी हार विद्यमान है। ये थम्भ बहुत अधिक सुन्दर हैं और इनकी शोभा की कोई सीमा नहीं है।

चार हांस तले थंभ के, आठ ऊपर तिन।

सोले बीच आठ तिन पर, और चार ऊपर इन॥७९॥

प्रत्येक थम्भ का निचला हिस्सा ४ हाँस (पहल) का है। उसके ऊपर का हिस्सा ८ पहल का है। फिर १६ पहल का आया है। इसके बाद का हिस्सा पुनः ८ पहल का है और अन्तिम भाग ४ पहल का है।

इन बिध हांस थंभन की, माहें नकस कई कटाव।

जुदी जुदी जुगतों चित्रामन, माहें जुदे जुदे कई भाव॥८०॥

इस प्रकार थम्भों में हाँसों की शोभा आयी है। इसके साथ ही इन थम्भों में अलग-अलग बनावट के बहुत से बेल-बूटेदार चित्र अंकित किये गये हैं। इन चित्रों में अलग-अलग प्रकार के अनेकों भाव छिपे हुए हैं।

भावार्थ- नक्श करने का तात्पर्य होता है – अंकित करना या चित्रित करना। जिस प्रकार इस संसार में प्रेम, विरह, दया, करुणा, संयोगजनित दुःख आदि के भावों को चित्रों के द्वारा प्रदर्शित करने की परम्परा रही है, उसी प्रकार परमधाम के प्रेम (इश्क), एकत्व (वहदत), मूल सम्बन्ध (निस्बत), तथा कृपा (मेहर) आदि के भावों को दर्शाने वाले चित्र थम्भों आदि पर बने हुए हैं।

एक एक रंग का जवेर, उसी जवेर में नकस।

जुदे जुदे कई कटाव, एक दूजे पे सरस॥८१॥

किसी एक रंग के जवाहरात का यदि कोई थम्भ है, तो उसमें अलग-अलग प्रकार के बहुत से बेल-बूटे चित्रित हैं। सभी बेल-बूटे एक-दूसरे से अधिक सुन्दर दिखायी दे रहे हैं।

इनके बीच चबूतरा, इत कठेड़ा गिरदवाए।

ए खूबी इन चबूतरे, इन जुबां कही ना जाए॥८२॥

इन ६४ थम्भों के बीच में गोल चबूतरे की शोभा आयी है, अर्थात् चबूतरे के ऊपर किनार पर चारों तरफ ६४ थम्भ विद्यमान हैं, जिनके मध्य चारों ओर चबूतरे की किनार पर कठेड़े की शोभा है। चबूतरे की शोभा ऐसी सुन्दर है, जो यहाँ के शब्दों से नहीं कही जा सकती।

तो भी नेक कहूं मैं इन की, जो आए चढ़त है चित्त।

ए जो बैठक खावंद की, सो नेक कहूं सिफत॥८३॥

फिर भी मेरे हृदय (चित्त) में चबूतरे की जो थोड़ी सी शोभा बस पा रही है, उसे मैं कहती हूँ। जिस चबूतरे पर अक्षरातीत अपनी प्रियात्माओं के साथ विराजमान हैं, उसकी थोड़ी सी शोभा का मैं वर्णन कर रही हूँ।

भावार्थ- चित्त, मन, बुद्धि, तथा अहंकार- ये चारों अन्तःकरण हैं, जो हृदय के ही घटक (अंग) माने जाते हैं। इस प्रकार चित्त या मन में किसी बात के आने का अभिप्राय है हृदय में आना। चबूतरे की महिमा (सिफत) कहने का तात्पर्य है- वहाँ की शोभा का वर्णन करना।

भोम उज्जल कई नकस, कहा कहूं जिमी इन नूर।

जानों कोटक उदे भए, अर्स के सीतल सूर॥८४॥

यह भूमिका बहुत ही उज्ज्वल (स्वच्छ) है, जिस पर अनेक प्रकार के चित्र अंकित हैं। यहाँ के नूर का वर्णन मैं कैसे करूँ? मूल मिलावा की तेजोमयी शोभा को देखकर तो यही कहना पड़ता है कि यहाँ पर करोड़ों सूर्य उगे हुए हैं, जिनमें तेज तो है, किन्तु वह चेतन है, शीतल है, और आनन्दमयी है। उसमें संसार के जड़ सूर्य जैसी दाहकता नहीं है।

फिरते थंभ जो चौसठ, चारों तरफों द्वार।

दो दो सीढ़ी आगूं द्वारने, सोभित हैं अति सार॥८५॥

चबूतरे की किनार पर ६४ थम्भ आये हैं और उसकी चारों दिशाओं में चार द्वार (मेहराबी) आये हैं। प्रत्येक द्वार के आगे दो-दो सीढ़ियाँ आयी हैं, जिनकी बहुत अधिक शोभा है।

भावार्थ- यद्यपि कमर-भर ऊँचे चबूतरे पर चढ़ने के लिये हमेशा ही तीन सीढ़ियों का वर्णन आता है, किन्तु यहाँ पर चबूतरे की सतह (फर्श) को ही एक सीढ़ी का रूप मान लिया गया है। यही कारण है कि यहाँ पर मात्र दो ही सीढ़ियों का वर्णन किया गया है।

कई थंभ हैं मानिक के, कई पाच कई पुखराज।

नूर रोसन एक दूसरे, मिल जोतें जोत बिराज।।८६।।

मूल मिलावा में माणिक के कई थम्भ आये हैं। इसी प्रकार पाच तथा पुखराज के भी कई थम्भ हैं। सभी नूरमयी आभा से प्रकाशमान हैं और एक थम्भे की ज्योति दूसरे की ज्योति से मिलकर अलौकिक शोभा को उत्पन्न कर रही है।

भावार्थ- नग और धातुओं के कुल १६ प्रकार के (रंग

के) थम्भ हैं, जो चार खाँचों में चार बार आये हैं। इस प्रकार प्रत्येक थम्भ एक हार में चार बार आया है और तीन हारों में प्रत्येक नग या धातु के थम्भ (माणिक, पाच, और पुखराज आदि) १२ की संख्या में आये हैं।

कई लसनियां नीलवी, एक थंभ एक रंग।

यों फिरते थंभ नंगन के, जुदे जुदे सब नंग॥८७॥

लसनिया और नीलवी आदि के भी कई (१२-१२) थम्भ आये हैं। एक थम्भ का एक ही मुख्य रंग है। इस प्रकार चबूतरे की किनार पर चारों ओर नंगों के थम्भ आये हैं। सभी नग अलग अलग स्थानों पर आये हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का भाव यह है कि एक ही प्रकार के चार थम्भ एक ही जगह नहीं हैं, बल्कि चार खाँचों में अलग-अलग स्थानों पर आये हैं।

सोले थंभों कठेड़ा, यों थंभ कठेड़ा किनार।

कठेड़ा थंभों लगता, सोले सोले तरफ चार॥८८॥

चबूतरे की किनार पर चारों खाँचों (भागों) में १६-१६ थम्भ हैं। प्रत्येक खाँचे में १६ थम्भों के मध्य कठेड़े की शोभा आयी है। इस प्रकार चारों खाँचों में सोलह-सोलह थम्भों के मध्य कठेड़े की शोभा है।

भावार्थ- चारों दिशाओं में ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। उनके सामने कठेड़ा नहीं आया है, बल्कि बाकी जगह में १६-१६ थम्भों के मध्य कठेड़ा आया है। इस प्रकार थम्भ व कठेड़े के चार भाग बन जाते हैं।

थंभ थंभ को देखत, ज्यों सूर के सामी सूर।

बढ़त है बीच रोसनी, क्यों कहूं नूर को नूर॥८९॥

एक थम्भे के सामने दूसरा थम्भ इस प्रकार स्थित है,

जैसे एक सूर्य के सामने दूसरा सूर्य। इन थम्भों से निकलने वाली नूरमयी ज्योति जब आपस में मिलती है, तो वहाँ पर बहुत अधिक ज्योति दृष्टिगोचर होती है, जिसका वर्णन करना असम्भव है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "नूर को नूर" का आशय यह है कि थम्भों का स्वरूप नूरमयी है। उनसे निकलने वाला नूर एक जगह मिलकर अलौकिक शोभा को धारण करता है, जिसे "नूर का नूर" कहा गया है।

यों थंभ थंभ जोत में, देखो सबन का जहूर।

ऊपर तले सब जोत में, जम्या नूर भरपूर॥९०॥

इस प्रकार प्रत्येक थम्भ नूरमयी ज्योति में डूबा हुआ है। हे साथ जी! इन सभी थम्भों की नूरी शोभा को देखिए।

ऊपर, नीचे, चारों ओर ज्योति ही ज्योति दिखायी पड़ रही है। सर्वत्र नूर ही परिपूर्ण होकर जगमगा रहा है।

ऊपर चंद्रवा थंभों लगता, तले जेता चबूतर।

जड़ाव ज्यों अति झलकत, एता ही इन पर॥९१॥

चबूतरे का जो माप है, उसी माप का चन्द्रवा ऊपर छत पर थम्भों से लगता हुआ आया है। अनेक प्रकार के नगों से जड़ा हुआ, यह चन्द्रवा बहुत अधिक झलकार कर रहा है।

कई रंगों के जवेर, करत जोत अपार।

कई बेल फूल पात नकस, ए सिफत न आवे सुमार॥९२॥

चन्द्रवा के अन्दर अनेक रंगों के जवाहरात जड़े हुए हैं, जिनकी अपार ज्योति फैल रही है। अनेक प्रकार की

लताओं, फूलों, और पत्तियों के चित्र चन्द्रवा के अन्दर बने हुए हैं, जिनकी शोभा को शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता (सीमित नहीं किया जा सकता)।

बिछौना बिछाइया, करत दुलीचा जोत।

फल फूल पात नकस, कई उठत तरंग उद्धोत॥९३॥

नीचे चबूतरे पर अति सुन्दर गिलम (दुलीचा, बिछौना) बिछी हुई है, जिससे नूरमयी ज्योति निकल रही है। इस दुलीचे पर अनेक प्रकार के फलों, फूलों, और पत्तियों के चित्र बने हुए हैं, जिनसे नूरमयी प्रकाश की तरंगें उठती रहती हैं।

चारों तरफों दुलीचा, फिरता बिछाया भर कर।

चबूतरे लग कठेड़ा, सोभा अति सुन्दर॥९४॥

चारों तरफ सम्पूर्ण चबूतरे पर कठेड़े तक गिलम बिछी हुई है। इस प्रकार इसकी बहुत सुन्दर शोभा हो रही है।

क्यों कहूं रंग दुलीचे, फिरती दोरी चार।

स्याम सेत हरी जरद, ए फिरती जोत किनार॥९५॥

दुलीचे के रंग की सुन्दरता का वर्णन कैसे करूँ? उसकी किनार पर काले, श्वेत, हरे, और पीले रंग की चार दोरियाँ आयी हुई हैं, जो ज्योति के समान चमक रही हैं।

कई विध के कटाव, कई बिरिख बेल नकस।

पात फूल बीच फिरते, और पे और सरस॥९६॥

इस गिलम पर अनेक प्रकार के बेल-बूटे अंकित हैं। अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं के चित्र बने हैं, जिनके बीच उनकी पत्तियों और फूलों के बने हुए चित्र

एक-दूसरे की अपेक्षा अधिक सुन्दर आये हैं।

लग कठेड़े तकिए, क्यों कहूं तकियों रंग।

बारे हजार दाब बैठियां, एक दूजे के संग॥९७॥

कठेड़े से लगकर तकिये आए हुए हैं, जिनके रंगों की सुन्दरता का वर्णन कैसे करूँ? बारह हजार सखियाँ तकियों के सहारे एकसाथ बैठी हुई हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब केवल कठेड़े से लगकर ही तकिये आये हैं और तकियों के सहारे ही सखियाँ बैठी हैं, तो यह कैसे सम्भव है कि सम्पूर्ण बारह हजार सखियाँ तकियों के सहारे बैठ सकें, क्योंकि सखियाँ तो कठेड़े से लगकर सिंहासन तक चारों ओर बैठी हुई हैं। इस सम्बन्ध में सागर २ / ११ का कथन है-

ज्यों मिल बैठियां बीच में, यों ही बैठियां गिरदवाए।

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि परमधाम में वहदत की लीला है, जिसके अनुसार यदि कुछ सखियाँ तकियों के सहारे बैठी हैं, तो सभी को यही अनुभव होगा कि हम भी तकियों के सहारे ही बैठी हैं। वहाँ किसी भी क्षेत्र में कोई भी किसी से कम नहीं है। इसी भाव को दर्शाने के लिये १२००० सखियों को तकियों के सहारे बैठा हुआ कहा गया है, जबकि इस संसार के लौकिक व्यवहार (गणित) के अनुसार ऐसा होना सम्भव नहीं है, क्योंकि वे आपस में इस प्रकार सट-सटकर कर बैठी हैं कि उनके बीच में अंगुली भी नहीं जा सकती।

ए मेला बैठा एक होए के, रूहें एक दूजी को लाग।

आवे न निकसे इतथें, बीच हाथ न अंगुरी माग।।

सागर २/९

ऐसा कहना भी उचित नहीं है कि सखियों की एक हार के आगे तकिये रखे जा सकते हैं, जिनके सहारे अगली हार वाली सखियाँ बैठ सकती हैं। इस प्रकार का वर्णन श्रीमुखवाणी में कहीं भी नहीं है।

बैठक दोऊ सिंघासन, चार पाए एक तखत।

पीछल तकिए दोऊ जुदे, रख्या ऊपर दुलीचे इत॥९८॥

दुलीचे के बीच में एक सिंहासन रखा हुआ है, जिसके चारों कोनों में चार पाए हैं। इस सिंहासन पर युगल स्वरूप विराजमान हैं। सिंहासन के पिछले भाग में दो अलग-अलग तकिये रखे हुए हैं।

भावार्थ- तख्त और सिंहासन समानार्थक हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि तख्त शब्द फारसी भाषा का है

और सिंहासन शब्द संस्कृत या हिन्दी का। इस चौपाई में ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि चार पायों के तख्त के ऊपर छः पायों वाला सिंहासन रखा हुआ है। वस्तुतः तख्त ही सिंहासन है, जिसके चार कोनों के चार पायों का वर्णन किया गया है। बीच के दो पायों का वर्णन चौपाई नं० १०३ में इस प्रकार किया गया है—

दोऊ छेड़ों में थंभ दोए, बीच तीसरा सरभर।

मोती रतन मानिक, हीरे हेम पाने पुखराज।

गोमादिक पाच पिरोजा परवाल, रहे कई रंग नंग धात बिराज॥९९॥

इस सिंहासन के अन्दर हीरे, मोती, मानिक, स्वर्ण, पन्ना, पुखराज, गोमेद, पाच, पिरोजा, और प्रवाल आदि के रत्न जड़े हुए हैं। अनेक रंगों की धातुएँ और नग भी इसमें सुशोभित हो रहे हैं।

भावार्थ- सिंहासन के इस प्रकार के वर्णन को किसी लौकिक सिंहासन का वर्णन नहीं समझना चाहिए, जिसमें हीरे-मोती आदि रत्नों का जड़ाव रहता है। वस्तुतः वहाँ का प्रत्येक पदार्थ ब्रह्मरूप है। मात्र लीला रूप में समझने के लिये ही ऐसा वर्णन किया जाता है।

नंग नाम केते कहूं, कहूं केती अर्स धात।

बरनन तखत अर्स का, कहे जुबां सुपन नंग जात॥१००॥

परमधाम के अनन्त नगों और धातुओं के कितने नामों का मैं वर्णन करूँ? मूल मिलावा में विराजमान श्री राज जी के सिंहासन में जड़े हुए नगों और धातुओं की शोभा का वर्णन इस संसार के नगों और धातुओं से उपमा देकर किया है, ताकि उसे हृदय में धारण किया जा सके।

भावार्थ- परमधाम में सर्वत्र ही अनन्तता होने के कारण

धातुओं और नगों की संख्या असीमित है। यहाँ के नगों और धातुओं से उपमा देकर इसलिये वर्णन किया जाता है कि वह मन-बुद्धि के द्वारा ग्राह्य हो सके।

चार थंभ चार खूंट के, छत्री सोभा अति जोर।

जो कदी नैनों देखिए, तो झूठे तन बंध देवे तोर।।१०१।।

सिंहासन के चारों कोनों में चार थम्भ आये हैं और युगल स्वरूप के बैठने की जगह के ऊपर दो छत्रियाँ आयी हैं, जिनकी शोभा बहुत अधिक है। यदि आत्म-चक्षुओं से वह शोभा दिख जाये, तो इस झूठे शरीर का बन्धन टूट जायेगा।

भावार्थ- यह तो पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि छत्री एक नहीं, बल्कि दो की संख्या में हैं।

शरीर के बन्धन टूटने का तात्पर्य शरीर छूटना नहीं,

बल्कि शरीर के मोह-अहम् से रहित हो जाना है। इसी को किरंतन ९ / ४ में इस प्रकार दर्शाया गया है—

लगी वाली कछु और न देखे, पिंड ब्रह्मांड वाको है री नहीं।
वो खेलत प्रेमें पार पिया सों, देखन को तन सागर मांहीं॥

पीछल तकिए दोऊ तरफों, बीच चढ़ती कांगरी चार।

फूल पात बेल कटाव कई, जुबां कहा कहे नकस अपार॥१०२॥

युगल स्वरूप के पीछे की ओर दो तकिये हैं तथा दो तकिये दायें-बायें दोनों ओर हैं। एक तकिया बीच में है। इस प्रकार कुल पाँच तकियों की शोभा आयी है। इनके बीच में चारों कोनों के चारों डाण्डों पर चढ़ती हुई काँगरी की शोभा है। काँगरी के अन्दर फूलों, पत्तियों, तथा लताओं के बहुत ही सुन्दर-सुन्दर चित्र बने हैं, जिनकी अनन्त शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं किया जा

सकता।

दोऊ छेड़ों में थंभ दोए, बीच तीसरा सरभर।

तिन गुल पर गुल कटाव, नूर रोसन सोभा सुन्दर॥१०३॥

सामने की ओर सिंहासन के दोनों किनारों पर दो थम्भ आए हैं। इनके बीच में तीसरा थम्भ भी है, जो इन्हीं के बराबर है। इसी प्रकार पीछे की ओर भी तीन थम्भ आये हैं। इस प्रकार सिंहासन में कुल छः थम्भ (डाण्डे) आये हैं। इन गोलाकार थम्भों पर गुलाब आदि गोलाकार फूलों की बहुत सुन्दर चित्रकारी है, जिनकी नूरमयी शोभा जगमगा रही है।

भावार्थ— "गुल" शब्द का भाव गोलाकृति या गुलाब से लिया जाता है। थम्भे गोल हैं और उन पर सुन्दर-सुन्दर गोल फूलों के चित्र बने हुए हैं। इसे ही "गुल पर गुल

कटाव" कहा गया है।

जो बरनन करूं पूरे पात को, तो चल जाए काहू उमर।

तो पात न होवे बरनन, ए अर्स तखत यों कर॥१०४॥

परमधाम के इस सिंहासन की शोभा ही ऐसी है कि यदि मैं उस पर बने हुए केवल एक पत्ते की शोभा का वर्णन करने लगूँ तो सम्भवतः सारी उम्र बीत जायेगी, किन्तु एक पत्ते की शोभा का पूर्ण वर्णन नहीं हो पायेगा।

भावार्थ- पुराण संहिता ३२/१०, ११ में भी इस प्रकार का कथन है-

तदुद्यानलतापत्रमेकं वर्णयितुं मुने।

न कल्पेनापि कल्पोहं किमुताखिलधाम तत्॥

अर्थात् जब उस परमधाम के उद्यानों के किसी लता की एक पत्ती का वर्णन करने में मैं एक कल्प में भी समर्थ

नहीं हूँ, तो उस सम्पूर्ण धाम का वर्णन कैसे कर सकता हूँ?

परमधाम में वहदत होने के कारण एक पत्ते की शोभा भी श्री राज जी के बराबर कही जा सकती है। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि कोई भी उसकी शोभा का पूर्ण वर्णन कर सके?

एक पात कई बेल कांगरी, बेल फूल पात कटाव।

तिन बेलों पात कई बेलें, ऐसे बारीक अति जड़ाव॥१०५॥

एक पत्ते के अन्दर कई प्रकार की लताओं की काँगरी आयी हुई है। उन बेलों (लताओं) में अनेक प्रकार के फूलों और पत्तियों के चित्र अंकित हैं। उन बेलों की पत्तियों में भी कई प्रकार की बेलें (लताएँ) बनी हुई हैं। इस प्रकार एक ही पत्ती के अन्दर बहुत ही सूक्ष्म

चित्रकारी बनी हुई है।

एक नंग बारीक इत देखिए, ताकी जोत न माए आसमान।

अपार जरे अर्स की, ना आवे माहें जुबान॥१०६॥

यदि परमधाम के एक छोटे से नग को देखा जाये, तो उसकी ज्योति इतनी अधिक है कि वह आकाश में नहीं समाती अर्थात् सम्पूर्ण आकाश में फैलने के बाद भी वह शेष रहती है। ऐसी स्थिति में अनन्त परमधाम की अनन्त नूरमयी ज्योति का वर्णन इस जिह्वा से कैसे सम्भव है?

दोऊ तरफों सिंघासन के, बगलों तकिए दोए।

बारीक तिन कटाव कई, ए बरनन कैसे होए॥१०७॥

सिंहासन के दायें-बायें दोनों ओर दो तकिये रखे हुए हैं।

उन तकियों में बहुत से सूक्ष्म बेल -बूटे बने हुए हैं।
उनकी असीम शोभा का वर्णन कैसे किया जाये?

ऊपर छत्रियां क्यों कहूं, कई रंग नंग जोत किनार।

कई दोरी बेली कांगरी, सोभा फिरती तरफ चार॥१०८॥

ऊपर की दोनों छत्रियों की शोभा का वर्णन कैसे किया जाए? छत्रियों की किनार पर अनेक प्रकार के रंगों वाले नंगों की ज्योति जगमगा रही है। छत्रियों के चारों ओर काँगरी की शोभा आयी है, जिनमें अनेक प्रकार की दोरियाँ तथा बेलियाँ (लतायें) बनी हुई हैं।

चार थंभ जो पाइयों पर, तिन में बेली अनेक।

रंग नंग बारीक अलेखे, तिनको क्यों कर होए विवेक॥१०९॥

सिंहासन के चारों कोनों के चारों पायों पर जो चार थम्भ

आये हैं, उनमें अनेक प्रकार के बेलों की शोभा आयी है। उसमें अनन्त रंगों के अनन्त सूक्ष्म नग जड़े हुए हैं। उनको शब्दों में बाँधना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

चार खूने के चार नकस, कई कांगरी कटाव फूल।

बीच पांखड़ी फिरती फूल ज्यों, ए अर्स तखत इन सूल॥११०॥

परमधाम के इस सिंहासन की शोभा इस प्रकार की है कि उसके चारों कोनों के चारों थम्भों पर चार प्रकार की नक्शकारी (चित्रों का संयोजन) है। इसमें अनेक प्रकार की काँगरी, बेल-बूटों तथा फूलों की बनावट है। बीच में फूलों की पँखुड़ियों की शोभा घेरकर आयी है।

भावार्थ— उभरे हुए या कढ़ाईदार चित्रों को कटाव कहते हैं। नक्शकारी (चित्रांकन) कढ़ाईदार भी हो सकती है,

या सतह पर रंगों के रूप में भी हो सकती है, तथा खुदी हुई भी हो सकती है।

फूल कटाव कई बीच में, कई विध के नकस।

इन के बीच में मानिक, गिरदवाए नीलवी सरस॥१११॥

इन थम्भों के बीच में अनेक प्रकार के फूल, बेल-बूटे, तथा बहुत से चित्र अंकित हैं। इनके मध्य में माणिक तथा शेष चारों ओर नीलवी के सुन्दर नग जड़े हुए हैं।

दोऊ सरूपों ऊपर, दो फूल ज्यों बिराजत।

देखी और अनेक चित्रामन, पर अचरज एह जुगत॥११२॥

सिंहासन के ऊपर जहाँ युगल स्वरूप विराजमान हैं, उनके ऊपर दो छोटी-छोटी छत्रियाँ लटक रही हैं। इनमें माणिक के लाल रंग के दो फूल लटक रहे हैं। श्री

महामति जी की आत्मा कहती है कि यद्यपि मैंने बहुत से चित्र देखे हैं, किन्तु इन फूलों की शोभा सबसे अधिक आश्चर्य में डालने वाली है।

भावार्थ- सिंहासन के ऊपरी हिस्से में दो छत्रियाँ आयी हैं, जिनमें दो कलशों की शोभा है, ये बड़ी छत्रियाँ हैं। इन्हें ही गुम्मत भी कहा गया है। युगल स्वरूप के सिर के ऊपर दो छोटी-छोटी छत्रियाँ लटक रही हैं, उनमें ही लाल कमल के समान माणिक के दो फूलों की अति सुन्दर बनावट है।

दोए कलस दोए छत्रियों, छे कलस गिरदवाए।

ए आठ कलस हैं हेम के, सुन्दर अति सोभाए॥११३॥

दोनों बड़ी छत्रियों में दो कलश आये हैं तथा छः कलश छः थम्भों के ऊपर घेरकर आये हैं। ये आठों कलश शुद्ध

स्वर्ण के हैं तथा बहुत ही सुन्दर शोभा को धारण किये हुए हैं।

जोर करे जोत जवेर, ऊपर हक तखत।

ए नूर जिमी आसमान में, रोसन बढ़यो अतंत॥११४॥

श्री राज जी के सिंहासन में जड़े हुए जवाहरातों की ज्योति जगमगा रही है। यह नूरमयी ज्योति जमीन से लेकर आकाश तक अनन्त प्रकाश फैला रही है।

सो ए धरया इत तखत, जानों नजर ना छोड़ूं खिन।

पल न चाहे बीच आवने, ऐसी सोभा तखत बीच इन॥११५॥

पशमी गिलम के बीच यह सुन्दर सिंहासन रखा हुआ है। इस सिंहासन की ऐसी अनुपम शोभा है कि मेरी यही इच्छा करती है कि मैं इसे एक पल के लिये भी अपनी

नजरों से ओझल न होने दूँ। जब मैं इसे देखूँ, तो एक क्षण के लिये भी मेरी पलकें झपकने न पायें।

एक गादी दोए चाकले, पीछल वाही जिनस।

चौखूने कटाव कई पसमी, जो देखों सोई सरस॥११६॥

सिंहासन पर एक गादी है तथा दो चाकले (आसन) हैं। ये मखमल (पश्म) के हैं तथा चौकोर हैं। इन पर अति सुन्दर बहुत से बेल-बूटे बने हुए हैं। सिंहासन का आगे का भाग जितना सुन्दर दिखायी देता है, पीछे का भी वैसे ही सुन्दर है। यहाँ तक कि सिंहासन के जिस भाग पर नजर पहुँचती है, वही भाग नूरी सुन्दरता से ओत-प्रोत हो रहा है।

भावार्थ- गादी और चाकले में थोड़ा सा अन्तर है। यद्यपि ये दोनों ही मखमली हैं और समान शोभा वाले हैं,

किन्तु गादी पूरे सिंहासन में बिछी है, और कुछ मोटी है, जबकि दोनों चाकलों को गादी के ऊपर अलग –अलग बिछाया गया है अर्थात् श्री राज जी के लिये अलग चाकला और श्यामा जी के लिये अलग चाकला। चाकलों की मोटाई काफी कम है।

किनार बाएं बीच जवेर के, और रोसन बेसुमार।

ए तखत नूरजमाल का, अर्स सब चीजों अपार॥११७॥

श्री राज जी के इस सिंहासन के दायें-बायें या बीच में जड़े हुए जवाहरात अनन्त प्रकाश को प्रकट कर रहे हैं। वस्तुतः परमधाम की सभी वस्तुएँ अपार नूरमयी ज्योति से परिपूर्ण हैं।

इन सिंघासन ऊपर, बैठे जुगल किसोर।

वस्तर भूखन सिनगार, सुन्दर जोत अति जोर॥११८॥

इस सिंहासन के ऊपर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी विराजमान हैं। उनके वस्त्र, आभूषण, तथा सम्पूर्ण श्रृंगार बहुत अधिक सुन्दर ज्योति से ओत-प्रोत है।

एक जोत जुगल की, और बीच बैठे सिंघासन।

बल बल जाऊं मुखारबिंद की, और बलि बलि जाऊं चरन॥११९॥

सिंहासन पर श्री राजश्यामा जी विराजमान हैं। उनके स्वरूप से निकलती हुई ज्योति आपस में एकाकार हो गयी है। मैं इन दोनों के मुखारविन्द तथा चरणों की शोभा पर बारम्बार स्वयं को न्योछावर करती हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण का भाव यह है कि दोनों स्वरूपों की नूरमयी ज्योति ऐसी दिखाई पड़ रही

है, जैसे एक ही स्वरूप विराजमान है। दूसरे शब्दों में ऐसे भी कह सकते हैं कि दोनों में एक ही स्वरूप है। "अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नजर" (सागर ६/३१) का कथन इस तथ्य को स्पष्ट करता है।

कहा कहूं जोत रूहन की, और समूह भूखन वस्तर।

ए कही जोत पूरन सिंध की, जो अब्बल नूर सागर॥१२०॥

ब्रह्मसृष्टियों के स्वरूप तथा उनके वस्त्रों एवं आभूषणों से निकलने वाली ज्योति के विषय में मैं क्या कहूँ? वस्तुतः सखियों में दिखने वाली यह ज्योति तो उस पूर्णातिपूर्ण सागर की है, जिसे पहला सागर "नूर का सागर" कहा गया है।

भावार्थ— श्रृंगार ग्रन्थ २०/३६ में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

जो गुन हिरदे अंदर, सो मुख देखे जाने जाए।

ऊपर सागरता पूरन, तार्थें दिल की सब देखाए॥

अक्षरातीत के हृदय में जो कुछ भी प्रेम (इश्क), आनन्द, ज्ञान (इल्म), मूल सम्बन्ध (निस्बत) आदि है, वह ही मुखारविन्द पर नूर सागर के रूप में प्रकट है। श्री राज जी के हृदय का प्रेम ही उनके मुखारविन्द पर शोभा, सौन्दर्य, कान्ति, आकर्षण आदि के रूप में प्रकट होता है।

अक्षरातीत का हृदय परम सत्य (मारिफत) का सागर है। उसका प्रकट सत्य रूप (हकीकत) सर्वप्रथम उनके मुखारविन्द पर नूर के रूप में दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि नूर सागर को इस चौपाई में प्रथम (अव्वल) सागर कहा गया है। इस नूर सागर में अन्य सागर छिपे होते हैं।

श्री राज जी के नूर के स्वरूप में अनन्त नूर का जो पानी झिलमिलाता है, वह नीर सागर है। उनके नूर के स्वरूप में जो अनन्त उज्ज्वलता है, वह क्षीर सागर है।

अक्षरातीत के नूर के स्वरूप में जो प्रेम रस की शीतल दृष्टि है, उसमें अपार आनन्द की शीतलता का जो सागर है, वह दधि सागर है।

श्री राज जी के वहदत स्वरूप में जो अनन्त नूर का प्रकाश है, वह घृत सागर है।

प्रियतम अक्षरातीत के नूर के स्वरूप में नख से शिख तक सभी अंगों में अमृत से भी करोड़ों गुना अधिक जो मिठास है, वह मधु (इल्म) सागर है।

श्री राज जी के हृदय में अपनी आत्माओं को अनन्त प्रकार से लाड-प्यार करने का जो अपार सागर है, वह रस सागर है।

प्राणवल्लभ श्री राज जी के दिल और नूरमयी नेत्रों में अनन्त मेहर और लाड-प्यार का जो समुद्र है, वह मेहर का (सर्वरस) सागर है।

ए सागर भर पूरन, तेज जोत को गंज।

कई इन सागर लेहेरें उठें, पूरन नूर को पुंज॥१२१॥

यह नूर का सागर स्वयं में पूर्ण है। तेज और ज्योति का अनन्त भण्डार है। इस पूर्णातिपूर्ण नूर के सागर से अनन्त लहरों के समान प्रेम और आनन्द की असंख्य लीलाओं का प्रकटन होता रहता है।

भावार्थ- जिस प्रकार अथाह समुद्र से असंख्य लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार नूर के स्वरूप श्री राज जी से ही प्रेम और आनन्द की लीलायें प्रकट होती हैं। लीला रूप में उनसे ही श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म,

महालक्ष्मी, खूब-खुशालियाँ, और परमधाम के २५ पक्ष हैं। यही कारण है कि सभी का स्वरूप नूरमयी है। इस प्रकार परमधाम की सम्पूर्ण शोभा, लीला, और आनन्द के केन्द्र में श्री राज जी का नूरमयी स्वरूप है, जो उनके दिल का ही प्रकट रूप है। यही कारण है कि चौपाई १२० तथा १२१ में नूर सागर के लिये "पूरन" शब्द का प्रयोग किया गया है।

महामत कहे सिंध दूसरा, सोभा सरूप रुहन।

ए सुखकारी अति सुन्दर, ए बका वतन बीच तन॥१२२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि नूर के सागर के बाद दूसरा सागर ब्रह्मसृष्टियों की शोभा का है। अखण्ड परमधाम में सखियों के जो मूल तन हैं, उनकी शोभा का यह सागर

बहुत ही सुन्दर है और आनन्द देने वाला है।

प्रकरण ॥१॥ चौपाई ॥१२२॥

सागर दूसरा रूहों की शोभा

जिस प्रकार मोती आदि में पानी होता है, उसी प्रकार श्री राज जी के नूर के स्वरूप में अनन्त नूर का जो पानी झिलमिलाता है, उसे नीर सागर कहते हैं। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि श्री राज जी की वहदत स्वरूपा सखियों के मुख में जो नूर का पानी है, वह ही रूहों की शोभा है और उसे ही (रूहों की शोभा का सागर) कहा गया है।

जिस प्रकार श्री राज जी के दिल में और बाह्य नूरमयी स्वरूप में आठों सागर समाये हैं, उसी प्रकार परात्म के दिल में भी आठों सागर हैं।

इस मायावी जगत में आयी हुई आत्मा किस प्रकार अपने प्राणवल्लभ को प्राप्त करती है, उस मार्ग को आठ भागों में बाँटा गया है, जिसे आठ सागर कहते हैं। ये

आठों सागर आत्म-जाग्रति के आठ सोपान (सीढ़ियाँ) हैं, जिनका वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है—

परात्म के निज स्वरूप में जहाँ वह पूर्ण जाग्रति की अवस्था में विराजमान है, वह निसबत का सागर है। परात्म की जाग्रत अवस्था में रोम-रोम में जो अथाह इश्क भरा है, वह सर्वरस सागर है और राज जी का स्वरूप है। इसमें मेहर का अनन्त जल भरा हुआ है।

अर्श दिल में जो स्वप्नावस्था है, वह नीर सागर है।

द्रष्टव्य— परात्म की नजर श्री राज जी के हुक्म से इस संसार में आयी है, जो आत्मा कहलाती है। इस प्रकार वह परात्म का प्रतिबिम्ब स्वरूप कही जाती है। "सिफत ऐसी कही मोमिनो की, जाके अक्स का दिल अर्स" (सिनगार २१/८१) का यह कथन इसी सन्दर्भ में गया है।

परात्म का दिल मारिफत का स्वरूप है तथा उसकी नजर हकीकत का स्वरूप है। यह तो स्पष्ट है कि जो कुछ भी परात्म के दिल में होगा, वह प्रतिबिम्ब रूप से आत्मा के दिल में भी होगा, क्योंकि सिनगार ११/९ में कहा गया है कि "अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछू नाहें।" इस प्रकार यह निश्चित है कि दोनों का दिल स्वप्न से जुड़ा हुआ है, अन्तर केवल इतना ही है कि परात्म का दिल स्वप्न को देख रहा है तथा जाग्रत होने से पूर्व आत्मा का दिल स्वप्न में डूबा होता है।

परात्म के दिल में तो वहदत के सम्बन्ध से आठों सागर अखण्ड रूप से विराजमान हैं ही, किन्तु यहाँ प्रसंग इस बात का है कि आत्मा युगल स्वरूप के ध्यान (चितवनि) द्वारा किस प्रकार अपने दिल को अर्श कहलाने की कसौटी पर खरा सिद्ध करती है और अक्षरातीत (सर्वरस

सागर) को प्राप्त करती है। आत्मा के लिये स्वप्न से परे होने का यही अन्तिम सोपान है।

आत्मा स्वयं को नीर सागर में पाती है, अर्थात् जब वह धनी से मिलने की चाहना (प्रार्थना) करती है तो धाम धनी उसे अपनी मेहर से कौल (कथनी रूप ज्ञान) रूपी शोभा देते हैं। उस कौल से जब वह फैल (करनी) अर्थात् धनी के ध्यान में लगने लगती है, तो वह श्री राज जी से अपना दिल जोड़कर क्षीर सागर को प्राप्त होती है।

फैल से हाल (रहनी) में आना दधि सागर में आना है, अर्थात् अपने गुण, अंग, इन्द्रियों को जीतकर युगल स्वरूप की शोभा को बसाने के लिये विरह में डूब जाना।

विरह के द्वारा श्री राज जी का बाह्य नूरमयी स्वरूप आत्मा के धाम दिल में अवतरित हो जाता है, इसे नूर सागर में पहुँचना कहते हैं। श्री राज जी के बाह्य नूरमयी

स्वरूप को दिल में बसाने के पश्चात् आत्मा धनी के गंजानगंज इश्क के बातिनी (गुह्य) स्वरूप को प्राप्त करती है। इसे नूर सागर से घृत सागर में प्रवेश करना कहते हैं।

इश्क से धनी का बेशक इल्म प्राप्त होता है। इसे मधु सागर की प्राप्ति कहते हैं।

इल्म रूपी इश्क के सागर से आत्मा अपने मूल स्वरूप का दीदार करती है, जिसे निस्बत का सागर (रस सागर) कहते हैं।

अब अपनी मूल परात्म का श्रृंगार लेकर आत्मा अपने प्राण प्रियतम को पा लेती है, जिसे सर्वरस सागर (मेहर का सागर) कहते हैं।

इस प्रकार आत्मा नीर सागर से चलकर सभी सागरों से होते हुए मूल मिलावा में विराजमान मूल स्वरूप श्री राज

जी को प्राप्त कर लेती है।

हक बैठे रूहों मिलाए के, खेल देखावन काज।

बड़ी भई रदबदल, रूहें बड़ी रूह सों राज॥१॥

मूल मिलावे में श्री राज जी अपनी अँगनाओं को माया का खेल दिखाने के लिये साथ में लेकर बैठे हैं। श्री राज जी का श्यामा जी और सखियों के साथ इश्क के सम्बन्ध में बहुत अधिक वार्तालाप हुआ।

देखन खेल जुदागीय का, दिल में लिया रूहन।

हक आप बैठे तखत पर, खेल रूहों को देखावन॥२॥

सखियों ने अपने मन में यह बात ले ली कि हमें माया का वह खेल देखना ही है, जिसमें वियोग (जुदायगी) की लीला होती है। उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिये स्वयं श्री

राज जी मूल मिलावे में सिंहासन पर विराजमान हो गये।

देहेसत सबों जुदागीय की, पर खेल देखन की चाह।

देखें पातसाही हक की, देखें इस्क बड़ा किन का॥३॥

सभी सखियों के मन में श्री राज जी से तथा आपस में एक-दूसरे से अलग हो जाने का डर तो था, किन्तु माया का खेल देखने की प्रबल इच्छा भी थी। वे धाम धनी की प्रभुता (बादशाही) को देखना चाहती थी। वे यह भी जानना चाहती थीं कि किसका इश्क बड़ा है – हमारा, श्यामा जी का, या श्री राज जी का?

एह जोत जो जोत में, बैठियां ज्यों सब मिल।

क्यों कहूं सोभा इन जुबां, बीच सुन्दर जोत जुगल॥४॥

सभी सखियाँ मूल मिलावा में इस प्रकार मिलकर बैठी

हुई हैं, जैसे ज्योति में ज्योति स्थित हो। सुन्दरसाथ के बीच में विराजमान नूरमयी ज्योति वाले युगल स्वरूप की छवि इतनी अनुपम है कि उसका वर्णन करना इस जिह्वा से सम्भव नहीं है।

भावार्थ- मूल मिलावा ज्योतिर्मय है और सखियों का स्वरूप भी ज्योतिर्मय है, इसलिये मूल मिलावा में बैठी हुई सखियों को "ज्योति में ज्योति" कहकर वर्णित किया गया है।

सुन्दर साथ भराए के, बैठियां सरूप एक होए।

यों सबे हिल मिल रहीं, सरूप कहे न जावें दोए॥५॥

सभी सुन्दरसाथ (सखियाँ) सम्पूर्ण चबूतरे पर एक स्वरूप होकर बैठे हैं। सभी आपस में इस प्रकार सट-सट कर बैठी हैं कि कोई यह कह ही नहीं सकता कि दो

स्वरूप (व्यक्ति) बैठे हैं।

भावार्थ- कुछ विद्वानों के कथनानुसार मूल मिलावे के चबूतरे के चार भाग हैं। सिंहासन से चारों दरवाजों के सामने रास्ते हैं, जो खाली हैं, और सखियाँ भी तीन हारों में बैठी हुई हैं। यदि सखियों को गले में बाँहें डालकर भी बैठाया जाये, तो भी इस कथन के अनुसार १२ स्वरूप बन जायेंगे, जो श्रीमुखवाणी को स्वीकार नहीं है। इस प्रकरण की चौपाई ५, ६, ९ और १३ में यह स्पष्ट उल्लेख है कि सभी सखियाँ एक स्वरूप होकर बैठी हैं। यह तभी सम्भव है, जब चार रास्तों और तीन हारों का बन्धन न हो।

एक सरूप होए बैठियां, माहें वस्तरों कई रंग।

क्यों ए बरनन होवहीं, रंग रंग में कई तरंग॥६॥

सभी सखियाँ एक स्वरूप होकर बैठी हैं। उनके वस्त्रों के अनेक रंग हैं तथा एक-एक रंग से प्रकाश की अनेक रंगों की किरणें निकलती हैं। भला इनकी शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है?

भावार्थ- जिस प्रकार इस संसार में प्रकाश के श्वेत रंग से सात प्रकार की किरणें निकलती हैं, उसी प्रकार परमधाम के एक-एक रंग से अनन्त प्रकार की किरणें निकलती हैं।

देखो अंतर आंखें खोल के, तो आवे नजरों विवेक।

बरनन ना होवे एक को, गलगल सों लगी अनेक॥७॥

हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से देखें तो आपकी ज्ञान दृष्टि में यह विवेक जाग्रत हो जायेगा कि सभी सखियाँ आपस में इस प्रकार गले लिपट कर बैठी

हैं कि उनमें से किसी एक की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता।

भावार्थ- आत्म-दृष्टि से देखा जाता है, जबकि ज्ञान-दृष्टि से जाना जाता है। पढ़कर बुद्धि द्वारा जो ज्ञान-दृष्टि प्राप्त होती है, उससे परम विवेक प्राप्त नहीं होता। उसे प्राप्त करने के लिये तो आत्म-दृष्टि से अनुभव किया हुआ ज्ञान चाहिए। इस चौपाई से यह स्पष्ट होता है कि यदि सखियों के बीच थोड़ी भी दूरी होती, तो किसी एक की शोभा का वर्णन हो जाना सम्भव था।

एक सागर कह्यो तेज जोत को, दूजो सोभा सुन्दर।
 कई तरंग उठें इन रंगों के, खोल देखो आँख अंदर॥८॥
 तेज-ज्योति के सागर नूर सागर का पहले वर्णन हो चुका है। यह दूसरा सागर सखियों के सौन्दर्य की शोभा

का सागर है। हे साथ जी! यदि आप अपने आत्मिक चक्षुओं से देखें तो ऐसा लगेगा, जैसे उस ज्योति के भण्डार से निकलने वाले रंगों की तरंगें उठ रही हैं।

ए मेला बैठा एक होए के, रूहें एक दूजी को लाग।

आवे ना निकसे इतथें, बीच हाथ न अंगुरी माग॥९॥

सखियों का यह समूह एक स्वरूप होकर बैठा है। सभी आपस में एक-दूसरे से इस प्रकार सट-सट कर बैठी हैं कि कोई भी उनके बीच में न तो आ सकता है और न उनके बीच से निकल सकता है। यहाँ तक कि अँगुली भी घुसाने की जगह नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई से ये प्रश्न उपस्थित होते हैं-

१. यदि बाहर से कोई भी मूल मिलावे में नहीं जा सकता, तो मेअराज के समय अक्षर ब्रह्म की आत्मा ने

श्री राज जी से ९०००० ह्रस्व बातें कैसे की, जबकि उन दोनों के बीच "दो गोसे कमान" की दूरी थी? धनुष के दोनों कोनों के बीच की दूरी को "गोसा" कहते हैं।

२. भिन्न-भिन्न परमहंसों ने तीन हारों एवं चार खाली रास्तों का वर्णन क्यों किया है?

३. क्या यह सम्भव नहीं है कि तीन हारों और चार रास्तों के बीच तो खाली जगह है, किन्तु सखियाँ जहाँ बारह भागों में बैठी हैं, वहाँ पर अंगुली भी घुसाने की जगह नहीं है?

४. यह भी हो सकता है कि जिस प्रकार आँखों का तारा होने, दिल का टुकड़ा होने, चरणों में बैठने, तन-मन में आग लग जाने, तथा दिल के फट जाने आदि की सभी बातें अलंकारमयी भाषा में कही जाती हैं, उसी प्रकार सखियों के बीच अँगुली न घुस पाने की बात भी

आलंकारिक भाषा में कही गयी हो। इसका मूल भाव यह है कि वहदत में सभी सखियों का स्वरूप समान है , इसलिये सबको "एक स्वरूप" कहकर वर्णित किया गया है। वे धाम धनी का इश्क तथा बादशाही को देखने बैठी हैं। उनकी इस इच्छा में अन्य किसी वस्तु का प्रवेश नहीं है, जिसके कारण अँगुली भी न आ पाने की बात कही गयी है। ऐसा वहदत के कारण ही है, जिसमें सभी की एक ही इच्छा होती है।

धाम धनी की कृपा से इन प्रश्नों के समाधान में मेरे द्वारा अपनी अल्प बुद्धि से इतना ही कहा जा सकता है—

१. स्थूल जड़ पदार्थ से स्थूल पदार्थ टकराता है। जब परमधाम में प्रत्येक वस्तु अक्षरातीत का ही स्वरूप है, तो मेअराज के समय अक्षर ब्रह्म की आत्मा के सखियों

के तनों से टकराने का प्रश्न ही नहीं होता, क्योंकि सभी के शरीर सूक्ष्म अति सूक्ष्म, चेतन, नूरमयी, एवं ब्रह्मरूप हैं। "कही सूछ्म सूरत अमरद की" (सिनगार ६/५) और "सूच्छम वय उनमद अंगे" (सागर ६/११४) का कथन इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

परमहंस महाराज श्री युगलदास जी द्वारा रचित रसानन्द सागर में स्पष्ट कहा गया है कि जब श्री राज जी तख्तरवाँ पर बैठकर सागर आदि की सैर को जाते हैं, तो जमीन के जानवर भी अपने माशूक श्री राज जी के दीदार के लिये दौड़ पड़ते हैं। उनकी राह में चाहे माणिक पहाड़ हो, या पुखराज हो, या २४ हाँस का महल हो, सभी झुक जाते हैं और उनकी ऊँचाई मात्र जमीन की ऊँचाई के बराबर ही रह जाती है। जानवरों के गुजर जाने के बाद वे पुनः जैसे के तैसे दिखायी देने लगते हैं। जब हम

स्वप्न देखते हैं, तो हमारा स्थूल शरीर कमरे में अर्धनिद्रित अवस्था में पड़ा रहता है, जबकि हमारे मन की तरंगें हमारे शरीर का हू-ब-हू (यथार्थ) रूप धारण कर कहीं ऐसी जगह पर भी पहुँच जाती हैं, जहाँ पर दरवाजे और खिड़कियाँ तक बन्द होते हैं। अक्षर ब्रह्म की मूल परात्म तो अक्षर धाम में है। उनकी सुरता (आत्मा) ही अरब में आती है और उनकी आत्मिक दृष्टि अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर मूल मिलावा में जाती है। ऐसी स्थिति में उनका सखियों के तनों से टकराने का प्रश्न ही नहीं होता।

२- परिक्रमा २८/८ में कहा गया है-

धनी इनों के कारने, सरूप धरे कई करोर।

ले दिल चाहया दरसन, ऐसे आसिक हक के जोर॥

जब धाम धनी पशु-पक्षियों की इच्छा पूरी करने के लिये करोड़ों रूप धारण कर उनके स्थान पर ही उन्हें दर्शन दे देते हैं, तो ब्रह्मात्माओं की इच्छानुसार तीन हारों में भी मूल मिलावा का दृश्य दिखायी दे सकता है।

परमधाम की लीला, शोभा, एवं गणना को इस संसार के मानकों (मापदण्डों) के आधार पर तय नहीं किया जा सकता। "कई कोट पाग बनें पल में" (सागर ८/४८) का कथन यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि श्री राज जी के श्रृंगार में लौकिक मापदण्ड नहीं अपनाया जाता। उन्हें किसी भी श्रृंगार विशेष के बन्धन में बाँधना असम्भव है।

अक्षर ब्रह्म को पाँच वर्ष के बालक जैसा तथा महालक्ष्मी जी को तीन वर्ष की बालिका की अवस्था वाला कहा जाना श्रीमुखवाणी के पूर्णतया विपरीत है। इस प्रकार का

कथन लक्षणों के अनुसार तो ठीक है, किन्तु अवस्था के अनुसार कदापि ठीक नहीं है। तारतम वाणी के अनुसार परमधाम में सभी की शोभा किशोर है। ऐसी अवस्था में किसी भी व्यक्ति का कथन श्रीमुखवाणी से श्रेष्ठ नहीं हो सकता है।

वस्तुतः पूज्य परमहंसों ने ज्ञान की अपेक्षा प्रेम भाव को अधिक प्राथमिकता दी है। यदि उनकी भावना सखियों को तीन हारों में देखने की रही हो, तो उनको उसी स्थिति में दीदार हो सकता है। वहाँ किसी भी लौकिक सिद्धान्त की सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती।

श्रीमुखवाणी में युगल स्वरूप का जो श्रृंगार वर्णित है, उसमें गुजरात, राजस्थान, तथा सिन्ध के वस्त्रों एवं आभूषणों की छाप अधिक है। ऐसा इसलिये है, क्योंकि श्री मिहिरराज जी के जीव का शरीर इन्हीं भागों के

संस्कारों में पला-बढ़ा था। उनके जीव में जैसी भावना थी, उसके अनुसार ही धाम धनी ने अपना स्वरूप दर्शाया। क्या अक्षरातीत उ.प्र., बिहार, असम, और दक्षिण भारत वालों के नहीं हैं? इसी प्रकार की लीला परमहंस महाराज श्री युगलदास जी के साथ भी हुई है।

३. इस संसार में बैठने का एक विधान होता है, जिसके अनुसार भावों में भरकर यदि किसी ब्रह्मात्मा ने तीन हारों के आधार पर चितवनि की है, तो उस रूप में दर्शन होना कोई आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु श्रीमुखवाणी में तीन हारों का वर्णन नहीं है। यदि सिंहासन पर श्री राजश्यामा जी के विराजमान होने पर युगल स्वरूप कहा जाता है, तो १२००० सखियों के एक स्थान में बैठने पर "एक स्वरूप" कहे जाने का क्या औचित्य है? इस प्रकरण की

चौपाई ५, ६ में "एक स्वरूप" तो कहा ही गया है, यह भी कहा गया है कि "सरूप कहे न जावें दोए।" अनादि काल से वहदत में सबकी शोभा एक समान रही है। फिर भी यह क्यों कहा गया है कि "एक सरूप होए बैठियाँ?"

सभी के एकसाथ सटकर बैठने के कारण ही इस बैठक को विशेष कहा गया है। इस प्रकरण की चौपाई १३, १४ में कहा गया है कि "मिल कर बैठियां एक होए, बड़ी अचरज बैठक ए" तथा "कबूं न बैठियां यों कर", जिससे यह स्पष्ट है कि गले में बाँहे डालकर एकसाथ बैठने से ही "एक स्वरूप" कहा गया है। इस सम्बन्ध में चौपाई २५ और ३०, तथा प्रकरण ११/१-२२ भी देखने योग्य हैं।

४. यद्यपि अँगुली न घुस पाने का कथन भी उपमा अलंकार के अन्तर्गत ही है, किन्तु इसका यह अर्थ है कि

सखियाँ बिल्कुल सट-सट कर बैठी हैं, जिनके बीच से अँगुली जैसी पतली वस्तु भी नहीं निकल सकती। अलंकार के नाम से उन्हें दूर-दूर नहीं बैठाया जा सकता।

खेल देखने की सबकी समान इच्छा होने के कारण भी सबको "एक स्वरूप" नहीं कहा जा सकता। हाँ! उन्हें एकमत वाला अवश्य कहा जा सकता है। अक्षरातीत की ब्रह्मवाणी का वास्तविक आशय केवल अक्षरातीत ही जानते हैं। हम सभी सुन्दरसाथ का यह नैतिक उत्तरदायित्व है कि वैचारिक मतभेद की स्थिति में हम अपने विचारों को बलात् किसी पर न थोपें और स्वयं को ज्ञान के सागर में एक बूँद मानते हुए यथार्थ ज्ञान के प्रकाश के लिये धाम धनी के चरणों में प्रार्थना करें।

गिरदवाए तखत के, कई बैठियां तले चरन।

जानों जिन होवें जुदियां, पकड़ रहे हम सरन॥१०॥

सभी सखियाँ श्री राज जी के चरणों में सिंहासन के चारों ओर बैठी हुई हैं। वे अपने मन में यही बात सोच रही हैं कि हम धाम धनी की शरण में ही रहें , ताकि उनके चरणों से दूर न हो सकें।

चबूतरे लग कठेड़ा, रहियां चारों तरफों भराए।

ज्यों मिल बैठियां बीच में, यों ही बैठियां गिरदवाए॥११॥

सखियाँ सिंहासन के चारों ओर चबूतरे पर कठेड़े तक भरकर बैठी हैं। जिस प्रकार वे मध्य में स्थित सिंहासन के पास बैठी हैं, उसी तरह चबूतरे की किनार पर भी चारों ओर बैठी हैं।

भावार्थ- सम्पूर्ण श्रीमुखवाणी में सिंहासन के पास से

लेकर कठेड़े तक सखियों के भरकर बैठने की बात कही गयी है, किन्तु तीन हारों का वर्णन नहीं है।

एक दूजी को अंक भर, लग रहियां अंगों अंग।

दिल में खेल देखन का, है सबों अंगों उछरंग॥१२॥

सभी सखियाँ एक-दूसरे के गले में बाँहें डालकर सट-सटकर (अंग से अंग लगाकर) बैठी हुई हैं। उन सभी के दिल में माया का खेल देखने के लिये बहुत अधिक उत्साह है।

जाने जिन कोई जुदी पड़े, ए डर दिल में ले।

मिल कर बैठियां एक होए, बड़ी अचरज बैठक ए॥१३॥

उनके दिल में इस बात का डर समा गया है कि कहीं हम आपस में तथा धाम धनी के चरणों से अलग न हो

जायें, इसलिये वे सभी मिलकर इस प्रकार बैठ गयी हैं, जैसे एक ही स्वरूप हों। उनकी यह बैठक बहुत ही आश्चर्य में डालने वाली है।

द्रष्टव्य— इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "एक होए" का तात्पर्य "एकमत होकर" नहीं, बल्कि सट-सटकर बैठने के कारण "एक स्वरूप" होने से है। यहाँ अलग हो जाने के डर का प्रसंग है, इसलिये अर्थ "बैठने" के सन्दर्भ में किया जायेगा।

अतंत सोभा लेत हैं, कबूं ना बैठियां यों कर।

यों बैठियां भर चबूतरे, दूजा सोभा अति सागर॥१४॥

सखियाँ इस तरह से आज दिन तक कभी भी नहीं बैठीं। वे सम्पूर्ण चबूतरे पर भरकर बैठी हैं और उनकी अनन्त शोभा हो रही है। उनकी यह अनन्त शोभा ही

दूसरा सागर है।

माहें ऊँची नीची कोई नहीं, सब बैठियां बराबर।

अंग सकल उमंग में, खेल देखन को चाह कर॥१५॥

वहदत के कारण सभी सखियों का स्वरूप समान है। यही कारण है कि उनकी बैठक में कोई भी ऊँची-नीची नहीं है, बल्कि सभी समान हैं। माया का खेल देखने की चाहना से उनके सभी अंगों में उमंग (उत्साह) भरा हुआ है।

सोभा सुन्दरता अति बड़ी, हक बड़ी रूह अरवाहें।

ए सोभा सागर दूसरा, मुख कहयो न जाए जुबांए॥१६॥

श्री राजश्यामा जी और सखियों के सौन्दर्य की शोभा बहुत अधिक (अनन्त) है, जिसका वर्णन यहाँ के मुख

और जिह्वा से नहीं हो सकता। सखियों की शोभा का यह सागर दूसरा सागर कहा जाता है।

अर्स अरवाहों मुख की, जुबां कहा करे बरनन।

नैन श्रवन मुख नासिका, सोभा सुन्दर अति घन॥१७॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के मुख की शोभा का वर्णन भला यहाँ की जिह्वा कैसे कर सकती है? अनन्त शोभा को धारण किये हुए उनके नेत्र, कान, मुख, और नासिका बहुत अधिक सुन्दर हैं।

गौर रंग लालक लिए, सोभा सुन्दरता अपार।

जो एक अंग बरनन करूँ, वाको भी न आवे पार॥१८॥

सखियों का रंग लालिमा लिये हुए अत्यधिक गौर रंग का है। उनकी शोभा और सुन्दरता अनन्त है। यदि मैं उनके

किसी एक अंग के भी सौन्दर्य का वर्णन करूँ, तो भी उसका पूर्ण वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- परमधाम के गौर वर्ण को इस मायावी जगत का गौर वर्ण नहीं समझना चाहिए। दोनों में धरती – आकाश का अन्तर है। परमधाम का गौर वर्ण नूरमयी है। वहाँ के एक-एक कण के तेज में करोड़ों सूर्य छिप जायेंगे, जबकि इस संसार का गौर वर्ण उस पञ्चभूतात्मक शरीर का है जो हड्डी, माँस, व मल-मूत्र से भरा होता है।

मुख चौक छबि की क्यों कहूं, सोभा हरवटी दंत अधूर।

बीच लांक मुसकनी कहां लग, केहे केहे कहूं मुख नूर॥१९॥

अति सुन्दर टुड्डी, दाँत, और होंठों से युक्त सखियों के मुखारविन्द की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ? मुस्कराते समय दोनों होंठों की अलौकिक शोभा से युक्त मुख के

नूर को मैं कहाँ तक कहकर वर्णन करूँ?

भावार्थ- नासिका, होंठ, दाँत, और टुड्डी का सम्पूर्ण भाग मुख का चौक कहलाता है। इसकी शोभा को गालों के साथ मिलाकर वर्णित किया जाता है।

साड़ी चोली चरनी, जड़ाव रंग झलकार।

कई जवेर केते कहूँ, सोभा सागर सुखकार॥२०॥

सखियों के द्वारा धारण की गयी साड़ी, चोली, एवं पेटीकोट में जड़े हुए अनेक रंगों के जवाहरात झलझला रहे हैं। यह शोभा समुद्र के समान है, जो हृदय को आनन्द देने वाली है। इसका वर्णन कैसे किया जाये?

रुहें बैठी हिल मिल के, याके जुदे जुदे वस्तर।

केते रंग कहूँ साड़ियों, निपट बैठियां मिल कर॥२१॥

यद्यपि सखियाँ आपस में हिलमिल कर बैठी हैं, किन्तु उनके वस्त्रों का रंग अलग-अलग है। उनकी साड़ियों के रंग इतने अधिक हैं कि मैं उनमें से कितने रंगों का वर्णन करूँ? वे आपस में पूर्ण रूप से सट-सटकर बैठी हैं।

कई साड़ी रंग सेत की, कई साड़ी रंग नीली।

कई साड़ी रंग लाल हैं, कई साड़ी रंग पीली॥२२॥

कई साड़ियों का रंग सफेद है, तो कई का नीला। कई साड़ियाँ लाल रंग की हैं, तो कइयों का रंग पीला भी है।

एक लाल माहें कई रंग, और कई रंग नीली माहें।

कई रंग पीली कई सेत में, कई रंग क्यों कहूं जुबांए॥२३॥

लाल रंग वाली साड़ियों में अनेक रंग छिपे हुए हैं। इसी प्रकार नीले रंग की साड़ी में बहुत रंग छिपे पड़े हैं। पीले

और श्वेत रंग की साड़ियों में भी कई रंग छिपे हुए हैं। साड़ियों में इतने रंग हैं कि मैं उनका वर्णन यहाँ की जिह्वा से कैसे करूँ?

मैं नाम लेत रंगों के, कहूँ केते लाल माहें एक।

एक नाम नीला कहूँ, माहें नीले रंग अनेक॥२४॥

यदि मैं साड़ियों के रंगों का नाम लेना प्रारम्भ करूँ, तो एक ही लाल रंग में अनेक प्रकार के लाल रंग निकल आते हैं। इसी प्रकार यदि मैं नीले रंग का वर्णन करना चाहूँ, तो उसमें भी बहुत से नीले रंग निकल आते हैं।

भावार्थ— जब इस संसार में एक-एक रंग में अनेक प्रकार के भेद (shade) होते हैं, तो परमधाम के रंगों के विषय में क्या कहना?

इन बिध कई रंग वस्त्रों, ए बरन्यो क्यों जाए।

तिनमें भी जुदियां नहीं, सब बैठियां अंग मिलाए॥२५॥

इस प्रकार वस्त्रों के बहुत से रंग हैं तथा सखियाँ भी आपस में अंग से अंग मिलाकर इस प्रकार बैठी हैं कि उनमें से कोई भी एक-दूसरे से अलग नहीं है। ऐसी स्थिति में उनके वस्त्रों का वर्णन करना कैसे सम्भव है?

अनेक रंगों साड़ियां, माहें कई बिरिख बेली पात।

फल फूल नकस कटाव कई, तार्थें बरन्यो न जात॥२६॥

अनेक रंगों की साड़ियाँ हैं, जिनमें कई प्रकार के वृक्षों, लताओं, पत्तियों, फलों, फूलों, आदि के बेल-बूटे अंकित हैं। यही कारण है कि उनका यथार्थ रूप में वर्णन नहीं हो पाता।

कई रंग कहुं वस्त्रों, के कहुं जवेरों रंग।

इन बिध रंग अनेक हैं, ताके उठें कई तरंग॥२७॥

मैं वस्त्रों के अनेक रंगों का वर्णन करूँ या जवाहरातों के रंगों का वर्णन करूँ? परमधाम के मूल मिलावा में विराजमान सखियों के वस्त्रों एवं उसमें जड़े हुए जवाहरातों के अनेक (अनन्त) रंग हैं, जिनसे कई (अनन्त) प्रकार की तरंगें निकलती रहती हैं।

द्रष्टव्य— किसी दीपक या बल्ब के चारों ओर ध्यान से देखने पर एक आभामण्डल दिखता है। उसमें प्रकाश की सूक्ष्म किरणों के समूह का आभास होता है। उसमें यह अनुभव किया जाता है कि अनेक रंगों की तरंगें किस प्रकार प्रवाहित होती हैं?

कई किरने उठें कंचन की, कई किरने हीरन।

पाच पांने मोती मानिक, किरने जाए न कही जवेरन॥२८॥

सखियों के वस्त्रों और आभूषणों में जड़े हुए कञ्चन और हीरे से असंख्यों किरणें उठा करती हैं। इसी प्रकार पाच, पन्ना, मोती, माणिक आदि जवाहरातों से भी इतनी अधिक (अनन्त) किरणें उठती हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता।

सो किरने लगे जाए ऊपर, और द्वार दिवालों थंभन।

आवें उतथें किरने सामियां, माहों माहें जंग करें रोसन॥२९॥

ये किरणें ऊपर चन्द्रवा से टकराती हैं। यहाँ तक कि वे इस गोल हवेली के मन्दिरों के दरवाजों, दीवारों, और थम्भों से भी टकराती हैं। पुनः वापस लौटकर उठने वाली नयी किरणों से जब टकराती हैं, तो ऐसा प्रतीत

होता है कि वे युद्ध कर रही हैं। इस प्रकार वहाँ अलौकिक प्रकाश सुशोभित होता है।

और चोली जो चरनियां, सब अंग में रहे समाए।

बरनन न होए एक अंग को, तामें बैठियां सब लपटाए॥३०॥

सखियों की चोली तथा पेटीकोट भी उनके अंगों से एकरूप हो रही हैं, जिससे उनके किसी एक अंग का भी यथार्थ वर्णन करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त सभी सखियाँ आपस में लिपटकर बैठी हैं।

हेम हीरा मोती मानिक, कई रंगों के हार।

पाच पांने नीलवी लसनिए, कई जवेरों अंबार॥३१॥

सभी सखियों ने सोना, हीरा, मोती, तथा माणिक आदि के अनेक रंगों के हारों को धारण किया हुआ है। उसमें

पाच, पन्ना, नीलम, तथा लसनिया आदि अनेक प्रकार के बहुत से जवाहरात जड़े हुए हैं। इनकी तेजराशि झलकती रहती है।

सोभा अतंत है भूखनों, स्वर बाजत हाथ चरन।

मीठी बानी अति नरमाई, खुसबोए और रोसन॥३२॥

सुन्दरसाथ के द्वारा धारण किये गये आभूषणों की शोभा अनन्त है। ये सुगन्धि और प्रकाश से भरपूर हैं। हाथों और पैरों के हिलने पर इनसे बहुत मीठी और कोमल वाणी के (संगीतमय) स्वर फूटा करते हैं।

भावार्थ— परमधाम के आभूषण चेतन हैं। वे इच्छा मात्र से बिना हिले-डुले भी मधुर स्वर छोड़ने में सक्षम हैं। हिलने पर स्वरों का निकलना यहाँ के भावों के अनुसार कहा गया है।

वस्तर भूखन सब अंगों, क्यों कहूं केते रंग।

एक एक नंग के अनेक रंग, तिन रंग रंग कई तरंग॥३३॥

सखियों के सभी अंगों में वस्त्र और आभूषण सुसज्जित हैं। उनके इतने रंग हैं कि उनका वर्णन करना बहुत कठिन है। एक-एक नंग से अनेक प्रकार के रंग निकलते हैं और एक-एक रंग से अनेक रंग की तरंगें निकलती हैं।

निलवट श्रवन नासिका, सिर कंठ उर कई हार।

हाथ पांउं चरन भूखन, अति अलेखे सिनगार॥३४॥

ब्रह्मात्माओं के गले में कण्ठ से लगकर हृदय पर आये हुए अनेक हार शोभा ले रहे हैं। उनके मस्तक, कानों, नासिका, हाथों, तथा पैरों की अँगुलियों आदि में बहुत ही सुन्दर आभूषण दिखायी पड़ रहे हैं। इनकी शोभा-श्रृंगार का यथार्थ वर्णन करना असम्भव है।

जो होवें अरवा अर्स की, सो लीजो कर सहूर।

अंग रंग नंग सब जंग में, होए गयो एक जहूर॥३५॥

जो भी परमधाम की ब्रह्मसृष्टि हो, वह इस ज्ञान का चिन्तन कर आनन्द का रसपान करे। जब सखियों के अंगों की शोभा तथा वस्त्रों एवं आभूषणों में जड़े हुए नगों के रंगों से निकलने वाली किरणें आपस में टकराती हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे युद्ध कर रही हों। इस प्रकार वहाँ चारों ओर एक ही नूरमयी सौन्दर्य की झलकार हो रही है।

महामत कहे बैठियां देख के, हक हँसत हैं हम पर।

कहें देखो इन बिध खेल में, भेलियां रहें क्यों कर॥३६॥

श्री महामति जी कहती हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! हम सबको इस प्रकार सट-सटकर बैठे हुए देखकर धाम

धनी हँस रहे हैं और कह रहे हैं कि यहाँ पर तो ये इस प्रकार बैठी हुई हैं, किन्तु देखना यह है कि माया के खेल में जाने पर ये किस प्रकार इकट्ठी रहती हैं?

प्रकरण ॥२॥ चौपाई ॥१५८॥

ढाल दूसरा इसी सागर

इस शीर्षक में कथित "ढाल दूसरा" का तात्पर्य है – अगली कड़ी या अगला कथन, जो दूसरे सागर के बारे में कहा जा रहा है।

लेहेरी सुख सागर की, लेसी रूहें अर्स।

याके सरूप याको देखसी, जो हैं अरस परस॥१॥

रूहों की शोभा का यह सागर सुख का सागर है। इसकी लहरों का रस मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ ही लेंगी। आत्मायें ही अपने मूल तन से अरस-परस (एकाकार) हैं और एकमात्र वे ही अपने मूल तन (स्वरूप) को देख सकेंगी।

भावार्थ- परात्म को अपने धाम धनी से जो सुख मिलता है वह सागर के समान है, और आत्मा अपने मूल

तन की शोभा को ध्यान द्वारा देखकर जो आनन्द प्राप्त करती है वह लहर के समान है। दूसरे शब्दों में परात्म को, धनी का तन होने से, सुख का सागर भी कहा जाता है। एकमात्र ब्रह्मसृष्टि ही अपने मूल तन को देख सकती है, अन्य कोई दूसरा नहीं। इस सम्बन्ध में सागर ग्रन्थ १४/२७ का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—

ए जो सरूप निसबत के, काहूं न देवें देखाए।
बदले आप देखावत, प्यारी निसबत रखें छिपाए॥

ए जो सरूप सुपन के, असल नजर बीच इन।

वह देखें हमको ख्वाब में, वह असल हमारे तन॥२॥

हमारी आत्मा के द्वारा धारण किया गया तन स्वप्न का है और हमारी परात्म का तन ही हमारा मूल तन है। उस परात्म की नजर हुक्म द्वारा इस स्वप्न के संसार में हमारे

स्वप्न के तनों को देख रही है।

भावार्थ- परात्म की नूरी नजर सीधे ही स्वप्न के इन तनों को नहीं देख रही है, बल्कि श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर देख रही है, और हुक्म द्वारा वह नजर सुरता (आत्मा) के रूप में इन स्वप्न के तनों में विराजमान होकर मायावी खेल को देख रही है।

उनों अंतर आंखें तब खुलें, जब हम देखें वह नजर।

अंदर चुभे जब रूह के, तब इतहीं बैठे बका घर॥३॥

जिस तरह से हमारी परात्म पहले श्री राज जी को देखती रही है, उसी प्रकार हमारी आत्मा भी जब धाम धनी को देखने लगे, तो हमें यहीं बैठे-बैठे परमधाम की अनुभूति होने लगेगी और हमारी आत्मा की अन्तर्दृष्टि भी खुल जायेगी अर्थात् वह जाग्रत हो जायेगी।

भावार्थ- इस चौपाई के कथन पर यह संशय होता है कि जब श्रीमुखवाणी क. हि. २३/२९ में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि "पौढ़े भेले जागसी भेले, खेल देख्या सबों एक", अर्थात् परात्म में जाग्रति सभी की साथ में ही होनी है, तो यहाँ पर यह क्यों कहा गया है कि जिसकी आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी की छवि बस जायेगी, उसकी परात्म में जाग्रति हो जायेगी।

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि यह तो शाश्वत सत्य है कि परमधाम में वहदत होने के कारण सबकी परात्म में जाग्रति एक ही साथ होनी है, किन्तु यहाँ सामूहिक रूप में यह बात दर्शायी गयी है कि जब आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी का साक्षात्कार हो जायेगा, तभी परात्म में जागनी हो सकेगी।

इस खेल में सभी आत्माओं की जागनी धीरे-धीरे

क्रमशः हो रही है। जो भी आत्मा जाग्रत हो जाती है, वह यहीं बैठे-बैठे परमधाम के सुखों का रसपान करती है, किन्तु उसकी परात्म पर फरामोशी का आवरण तब भी पड़ा ही रहता है। अपने पञ्चभौतिक तन का त्याग करने के पश्चात् वह सूक्ष्म शरीर से गुम्मत जी में श्री जी के चरणों में रहकर परमधाम के आनन्द का रसपान करती है। इस सम्बन्ध में छोटा कथननामा १/८७ का यह कथन देखने योग्य है—

जो कदी वह आगे चली, जिमी बैठी वह जिमी मांहे।

पांचों पोहोंचे पाचों में, रूह अपनी असल छोड़े नांहे॥

खेल खत्म होने के बाद ही परात्म की जागनी हो सकेगी। उसके पहले केवल इतना ही हो सकेगा कि आत्मा जाग्रत होकर अपने मूल तन को देखेगी तथा परात्म धाम धनी के दिल रूपी परदे पर अपनी जाग्रत

आत्मा की जागनी लीला देखती रहेगी। इस तथ्य को सागर ११/४४ में इस प्रकार दर्शाया गया है—

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रहयो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए॥

सुरत उनों की हम में, ए जुदे जुदे हुए जो हम।

ए जो बातें करें हम सुपन में, सो करावत हक हुकम॥४॥

उन मूल तनों की सुरता इस समय संसार में हमारे स्वप्न के तनों में है। इस स्वप्नमयी संसार में हम अलग-अलग होकर जो भी बातें कर रहे हैं, वह धाम धनी का हुक्म ही हमसे ऐसा करवा रहा है।

भावार्थ— जिस प्रकार परमधाम में सारी लीला श्री राज जी के दिल से हो रही है, उसी प्रकार इस संसार में सुरताओं के तन से होने वाली सारी लीला श्री राज जी

के हुक्म (आदेश) से ही हो रही है।

इन बिध हक का इलम, हमको जगावत।

इलम किल्ली हमको दर्ई, तिनसे बका द्वार खोलत॥५॥

इस प्रकार यह ब्रह्मवाणी हमें जाग्रत कर रही है। धाम धनी ने हमें यह तारतम ज्ञान रूपी जो चाबी दी है, उससे अध्यात्म के सभी रहस्यों का ज्ञान हो जाता है, और इस स्वप्नमयी संसार में रहते हुए भी अखण्ड परमधाम की पहचान हो जाती है।

बीच असल तन और सुपने, पट नींदै का था।

सो नींद उड़ाए सुपना रख्या, ए देखो किया हक का॥६॥

परमधाम वाले मूल तन तथा इस संसार के स्वप्न के तन के बीच फरामोशी (नींद) का पर्दा था। धाम धनी ने

अपनी मेहर की दृष्टि से ऐसी लीला की है कि माया की नींद को उड़ा दिया तथा स्वप्न के तन को भी सुरक्षित रखा है।

ना तो नींद उड़े पीछे सुपना, कब लों रहेवे ए।

इन विध सुपना ना रहे, पर हुआ हाथ हुकम के॥७॥

नहीं तो माया की नींद के समाप्त हो जाने पर भला यह मानवीय शरीर कैसे रह सकता है, अर्थात् नहीं रह सकता? इस तरह जाग्रत हो जाने पर स्वप्न के शरीर का अस्तित्व नहीं रह सकता, किन्तु श्री राज जी के हुक्म से ही यह अब तक बना हुआ है।

भावार्थ— इन पूर्वाक्त दोनों चौपाइयों का भाव यह है कि जिस प्रकार नींद आने पर सपना देखा जाता है, और नींद के समाप्त होते ही स्वप्न भी टूट जाता है तथा

सपना टूटने पर उसमें देखी गयी सभी वस्तुओं का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार जब ब्रह्मवाणी के द्वारा अक्षरातीत और अपने निज घर तथा मूल तन की पहचान हो जाती है तो यह स्वप्न का शरीर नहीं रहना चाहिए, लेकिन धाम धनी ने अपने आदेश से इसे सुरक्षित रखा है ताकि माया का खेल देखा जा सके। तारतम ज्ञान के द्वारा जानने तथा प्रेम के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव कर लेने के बाद भी शरीर का बना रहना यही सिद्ध करता है कि धनी का हुक्म ही सब कुछ करवा रहा है। हाँ! जाग्रत अवस्था में इतना अवश्य होता है कि शरीर के प्रति मोह समाप्त हो जाता है।

हुकमें खेल देखाइया, जुदे डारे फरामोसी दे।

खेल में जगाए इलमें, अब हुकम मिलावे ले॥८॥

धाम धनी ने अपने आदेश से माया का यह खेल दिखाया है और हमें फरामोशी में डालकर अपने धाम से अलग कर दिया है। इस खेल में ब्रह्मवाणी ने हमें जाग्रत कर दिया है। अब प्रियतम का हुक्म ही सबको उनके चरणों में ले चलेगा।

बात पोहोंची आए नजीक, अब जो कोई रहेवे दम।

उमेदां तुमारी पूरने, राखी खसमें तुम हुकम॥९॥

अब धाम धनी के चरणों में जाग्रत होने का समय बहुत निकट है। इस समय यदि कोई भी आत्मा इस संसार में रह रही है, तो इसका मूल कारण यही है कि उसकी माया का खेल देखने की इच्छा पूरी करने के लिये धाम धनी ने अपने हुक्म से ही रखा हुआ है।

भावार्थ— खिलवत, परिक्रमा, सागर, तथा सिनगार की

वाणी आत्मा को जाग्रत करने के लिये है। इन ग्रन्थों के द्वारा परमधाम, युगल स्वरूप, तथा अपने मूल स्वरूप की पहचान हो जाती है। यही कारण है कि सागर ग्रन्थ की इस चौपाई में आत्म-जाग्रति के समय को बहुत निकट माना गया है।

जो रुहें अर्स अजीम की, सो मिलियो लेकर प्यार।

ए बानी देख फजर की, सबे हूजो खबरदार॥१०॥

जो भी परमधाम की ब्रह्मसृष्टि हो, वह अपने दिल में धनी का प्यार लेकर उनसे मिलन करे अर्थात् उनका दीदार करके अपने धाम हृदय में उन्हें बसाये। सागर ग्रन्थ की यह वाणी हृदय में परमधाम के ज्ञान का उजाला करने वाली है। आप सभी सावचेत हो जाइए, ताकि इस अलौकिक ज्ञान को पाकर भी जाग्रत होने का स्वर्णिम

अवसर न गँवा सकें।

अब फरामोसी क्यों रहे, जब खुल्या बका द्वार।

रुबरु किए हमको, तन असल नूर के पार॥११॥

जब इस ब्रह्मवाणी के द्वारा अखण्ड परमधाम का दरवाजा खुल गया है, तो हमारे अन्दर माया की फरामोशी (नींद) कैसे रह सकती है? धाम धनी ने अपने तारतम ज्ञान द्वारा हमें अपने मूल तन के सम्मुख कर दिया है, जो अक्षर धाम से भी परे है।

भावार्थ- रुबरु कराने का अर्थ है – साक्षात्कार करा देना। अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप अव्याकृत के स्वप्न में यह कालमाया का ब्रह्माण्ड बना है, जिसमें रहने वालों में से आज तक कोई भी परमधाम या अक्षरातीत की पहचान नहीं कर सका था। यह तारतम ज्ञान की ही

महिमा है कि इसके द्वारा हमें यहीं बैठे-बैठे अपनी परात्म का भी साक्षात्कार होता है।

बैठी थीं डर जिनके, सब हिल मिल एक होए।

हुकम हक के कौल पर, उलट तुमको जगावे सोए॥१२॥

सखियों को माया में अलग हो जाने का डर था , इसलिये सभी सखियाँ आपस में सट-सटकर एक स्वरूप होकर बैठ गयी थीं। श्री राज जी के जिस हुक्म से सखियों को माया में आना पड़ा था, अब वही हुक्म उन्हें जगा रहा है, क्योंकि धाम धनी ने उन्हें जगाने का वायदा किया था।

भावार्थ- अक्षरातीत ने मूल मिलावा में वायदा किया था कि मैं तुम्हें खेल में आकर जाग्रत करूँगा।

बांधे आप हुकम के, काजी हुए इत आए।

कौल किया मोमिनो सों, सो पाल्या खेल देखाए॥

सनंध ३२/४९

हो सैंया फुरमान ल्याए हम, आए वतन से वास्ते तुम।

इन में खबर है तुमारी, हकीकत देखो हमारी॥

बड़ा कयामतनामा ६/१

ना तो सुपन के सरूप जो, सो तो खेलै को खैंचत।

सो हुकमें तुमें सुपना, हक को मिलावत॥१३॥

नहीं तो, सपने के तन तो तुम्हें माया की ही ओर
खींचते हैं। अब धाम धनी का हुकम तुम्हें इस मायावी तन
का मोह छुड़ाकर प्रियतम के चरणों से जोड़ रहा है।

भावार्थ— जिन मायावी तनों में जीव के ऊपर

विराजमान होकर आत्मा इस खेल को देख रही होती है, वह जीव जन्म-जन्मान्तरों से विषयों के जाल में फँसा होता है। इसका परिणाम यह होता है कि दलदल में फँसने की भांति वह माया में और अधिक फँसता जाता है। धाम धनी का हुक्म आत्मा को परमधाम की ओर मोड़ देता है और माया से पार करा देता है।

यों सीधी उलटीय से, कौन करे बिना इलम।

इत जगाए उमेदां पूरन कर, खँचत तरफ खसम॥१४॥

इस ब्रह्मवाणी के अतिरिक्त ऐसा और कौन है, जो हमें माया (उल्टी राह) से हटाकर परमधाम की राह (सीधी राह) पर ले चले? धाम धनी के मुखारविन्द से अवतरित यह ब्रह्मवाणी हमें प्रियतम की ओर खींचती है तथा हमारी इच्छाओं को पूर्ण करके जाग्रत भी करती है।

ए होत किया सब हुक्म का, ना तो इन विध क्यों होए।

जाग सुपना मूल तन का, जगाए हुक्म मिलावे सोए॥१५॥

यहाँ सब कुछ श्री राज जी के हुक्म से ही हो रहा है, अन्यथा ऐसा नहीं होता कि आत्मा के जाग्रत होने पर भी मूल तन में फरामोशी बनी रहती। धनी का हुक्म ही आत्मा को जाग्रत करके उसे परात्म से मिला देता है।

भावार्थ- आत्मिक दृष्टि से परात्म को देखना ही आत्मा और परात्म का एकाकार हो जाना है। इसे किरंतन ८/३ में इस प्रकार कहा गया है-

जब आत्म दृष्टि जुड़ी परआत्म, तब भयो आत्म निवेद।

यदि आत्मा अपने धाम हृदय में अपने प्राणवल्लभ को बसाकर परात्म के तदोगत हो जाती है, तो सिद्धान्ततः परात्म में किसी भी प्रकार की फरामोशी नहीं रहनी चाहिए, क्योंकि परात्म अब माया का दृश्य न देखकर

आत्मा के धाम हृदय में अक्षरातीत को देख रही होती है। किन्तु परात्म में फरामोशी इसलिये बनी रहती है कि वहदत में लीला समान होती है। परमधाम में यह कदापि सम्भव नहीं है कि एक की परात्म जाग्रत हो जाये और शेष पर फरामोशी (नींद) का प्रभाव रहे।

सो सुध आपन को नहीं, जो विध करत मेहेरबान।

ना तो कई मेहेर आपन पर, करत हैं रेहेमान॥१६॥

हम सब सुन्दरसाथ को इस बात की सुध नहीं हो पाती है कि मेहर के सागर अक्षरातीत हमारे से कितना लाड-प्यार करते हैं? अति कृपालु अक्षरातीत हमारे ऊपर तो कई प्रकार से पल-पल मेहर करते ही रहते हैं।

महामत कहे मेहेर की, रुहों आवे एक नजर।

तो तबहीं रात को मेट के, जाहेर करें फजर॥१७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि यदि ब्रह्मसृष्टियों को मेहर की प्राप्ति हो जाये, तो वे उसी क्षण अपने अन्दर की मायावी रात्रि के अन्धकार को समाप्त कर देंगी और अपने हृदय में दीप्तिमान ब्रह्मज्ञान के प्रकाश को चारों ओर फैला देंगी।

भावार्थ- "नजर आना" एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ होता है- दर्शन करना, साक्षात्कार करना, या पहचान करना।

मेहेर सोई जो बातूनी, जो हक के दिल का प्यार।

मेहर के अन्दर श्री राज जी का सम्पूर्ण सुख, स्वरूप, और प्रेम छिपा हुआ है। हृदय में धनी का प्रेम आते ही युगल स्वरूप धाम हृदय में विराजमान हो जाते हैं। इसे

ही मेहर की एक नजर आ जाना कहते हैं। इस अवस्था की प्राप्ति हो जाने पर हृदय में प्रियतम के ज्ञान , प्रेम, और आनन्द का प्रकाश छा जाता है तथा मायावी अन्धकार का नामोनिशान भी नहीं रहता।

प्रकरण ॥३॥ चौपाई ॥१७५॥

सागर तीसरा एक दिली रूहन की

अक्षरातीत का दिल श्यामा जी हैं और श्यामा जी के दिल का स्वरूप ब्रह्मसृष्टियाँ हैं। इस प्रकार श्री राज श्यामा जी और ब्रह्मसृष्टियाँ एक वहदत के अन्दर हैं। इस एकदिली को तीसरा सागर कहा गया है। परिक्रमा ग्रन्थ ९/३० में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "पूरन पांचों इंद्री सरूपें, एक एक में पांच पूरन", अर्थात् परमधाम में एक-एक इन्द्रिय में शेष सभी इन्द्रियों के गुण विद्यमान रहते हैं। यद्यपि आँख का सामान्य गुण देखना है, फिर भी वह सुनने, सूँघने, स्पर्श करने, और रस लेने का कार्य करती है। इस संसार में भी सर्प अपनी आँखों से सुनने का कार्य करता है, जिसके कारण उसे चक्षुश्रवा कहते हैं।

अपने रसानन्द सागर ग्रन्थ में परमहंस महाराज श्री

युगलदास जी ने कहा है कि परमधाम के एक फल में ही सभी (अनन्त) फलों का स्वाद छिपा होता है। इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि एक ही फल, आम या अमरूद, में उन सभी फलों का रस छिपा होता है जो परमधाम में विद्यमान हैं। उपरोक्त कथनों से यही निष्कर्ष निकलता है कि परमधाम के प्रत्येक सागर में शेष सभी सागर समाहित होने चाहिए, क्योंकि परमधाम स्वयं में परिपूर्ण है और उसमें कहीं भी किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं है।

पूर्व में श्री राज जी के नूरमयी स्वरूप में सभी सागरों का समावेश माना गया है। इसी प्रकार सर्वरस सागर में भी सभी सागरों का समावेश माना जाता है। जब श्री राज जी के दिल में या स्वरूप में ही सभी सागर हैं और धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों (परात्म) के दिल में विराजमान हैं, तो

दूसरे सागर में सभी सागरों का समावेश माना जा सकता है। एकदिली होने से तीसरे सागर में भी श्री राज जी के दिल की सारी निअमतेँ विद्यमान हैं। चौथा सागर युगल स्वरूप की शोभा और श्रृंगार का सागर है। इस प्रकार चौथे सागर में सभी सागरों का अस्तित्व माना जा सकता है। यही स्थिति पाँचवें, छठे, और सातवें सागर की है।

इश्क और इल्म एक दूसरे के पूरक हैं और इनमें धनी का स्वरूप विराजमान है। मारिफत की अवस्था में तो यही कहा जा सकता है कि परमधाम के एक-एक कण में सम्पूर्ण परमधाम वैसे ही समाया हुआ है, जैसे दर्पण के एक छोटे से टुकड़े या पानी के छोटे से बुलबुले में पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़े आकार वाला सूर्य प्रतिबिम्बित होता है।

अब कहूं सागर तीसरा, मूल मेला बिराजत।

रूह की आंखों देखिए, तो पाइए इनों सिफत॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अब मैं तीसरे सागर "एकदिली" (वहदत) का वर्णन कर रहा हूँ। परमधाम के मूल मिलावा में सभी सखियाँ विराजमान हैं। उनके दिल में एकरूपता है। यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से देखिए तो आपको इनके स्वरूप की महिमा का पता लगेगा।

अर्स की अरवाहें जेती, जुदी होए ना सकें एक खिन।

ए माहें क्यों होएं जुदियां, असल रूहें एक तन॥२॥

परमधाम की जो भी ब्रह्मसृष्टि है, वे वहाँ पर एक क्षण के लिये भी एक-दूसरे से या धाम धनी से अलग नहीं हो सकती। सभी ब्रह्मसृष्टियाँ धाम धनी के ही तन हैं,

इसलिये आपस में कभी भी एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकतीं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब श्री राजश्यामा जी तीसरी भूमिका में पौढ़ रहे होते हैं, तब सखियाँ अलग-अलग समूहों में जगह-जगह घूमने जाती हैं। तो क्या इसमें श्री राज जी से या सखियों में आपस में अलगाव नहीं होता?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि बाह्य रूप से लीला रूप से सभी एक-दूसरे से जुड़े होते हैं, क्योंकि वहदत होने के कारण सभी का दिल एक ही है।

इन सबन की एक अकल, एक दिल एक चित्त।

एक इस्क इनों का, सनेह कायम हित॥३॥

इन सभी ब्रह्मसृष्टियों की बुद्धि एक समान है। दिल और

चित्त भी एक ही हैं। सबका इश्क समरूप है तथा सबका कल्याण करने की भावना करने वाला स्नेह भी इनके अन्दर समान है।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में "एक अकल" कहे जाने का अर्थ यह है कि सभी आत्माओं के अन्दर धनी को रिझाने वाली निजबुद्धि समान रूप से है। इस संसार की तरह किसी में कम या अधिक नहीं है। यद्यपि दिल, अन्तःकरण, और हृदय (सूक्ष्म) एकार्थवाची हैं, तथा मन, चित्त, बुद्धि, एवं अहंकार भी इसके अन्तर्गत ही हैं, किन्तु यहाँ दिल का प्रयोग मन के भाव में किया गया है।

इनों दिल सागर तीसरा, एक सागर सबों दिल।

देखो इनों दिल पैठ के, किन विध बैठियां मिल॥४॥

हे साथ जी! इनके दिल में बैठकर देखिए तो आपको यह विदित होगा कि इनका दिल वहदत का अनन्त सागर है, जिसे तीसरा सागर कहते हैं। इन सभी के दिल में वहदत का सागर लहरा रहा है। उसी के कारण ये सभी एक स्वरूप होकर बैठी हैं।

भावार्थ- दिल में बैठने का तात्पर्य है – अपनी आत्मा के दिल का तार (सम्बन्ध) उस दिल (परात्म के दिल) से जोड़ना। परात्म वहदत में है, इसलिये अपनी परात्म का भेद मिल जाने पर सभी की परात्म से अपना सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। वस्तुतः परात्म के भावों में डूब जाना ही परात्म का भेद पाना है। दिल में बैठना भी इसी सन्दर्भ में कहा गया है।

हाँस विलास सुख एक है, एक भांत एक चाल।

तो इन वाहेदत की क्यों कहूं, कौल फैल जो हाल॥५॥

इन सखियों की श्री राज जी के साथ होने वाली प्रेम और आनन्द की लीलाओं का सुख समान है अर्थात् सबको समान सुख मिलता है। सभी का व्यवहार भी एक समान होता है। ऐसी अवस्था में परमधाम की उस वहदत का मैं कैसे वर्णन करूँ, जहाँ सब की कथनी, करनी, और रहनी एक है।

तो कहया वाहेदत इनको, अर्स अरवा हक जात।

ज्यों जोतें जोत उद्धोत है त्यों, सूरत की सूरत सिफात॥६॥

इसलिये तो परमधाम की इन ब्रह्मसृष्टियों को वहदत का स्वरूप कहते हैं। वस्तुतः ये सभी अक्षरातीत की अर्धांगिनी हैं। जिस प्रकार ज्योति (दीपक की) से ज्योति

प्रकाशित होती है, उसी प्रकार अक्षरातीत का ही स्वरूप सबमें विराजमान है अर्थात् प्रत्येक ब्रह्मसृष्टि का स्वरूप एक-दूसरे के समान है।

भावार्थ- एक दीपक से जब दूसरा दीपक जलाया जाता है, तो दोनों का स्वरूप समान होता है, उनमें रंच मात्र भी भेद नहीं होता। इसी प्रकार अक्षरातीत के हृदय में बहने वाले प्रेम में छिपे हुए आनन्द के स्वरूप श्यामा जी हैं और उन्हीं की अँगरूपा (हृदय स्वरूपा) सखियाँ हैं। ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि एक दीपक (श्यामा जी) से प्रदीप्त किये हुए (जलाये) १२००० दीपकों के समान सखियों की शोभा है।

इन एक दिली रूहन की, ए क्यों कर कही जाए।

एक रूह कहे गुझ हक का, दूजी अंग न उमंग समाए॥७॥

ब्रह्मसृष्टियों की एकदिली का वर्णन कैसे किया जाये। यदि एक ब्रह्मसृष्टि श्री राज जी के प्रेम की रहस्यमयी गुह्य बात को दूसरे से कहती है, तो उसे सुनने मात्र से अपार आनन्द का अनुभव होता है।

भावार्थ- इस मायावी जगत में प्रायः किसी का प्रेम किसी भी अन्य को सुहाता नहीं है (अच्छा नहीं लगता)। इसके विपरीत परमधाम में धनी से एक का प्रेम शेष सभी आत्माओं को आनन्दित करता है, क्योंकि वहाँ प्रत्येक आत्मा दूसरे को अपने से करोड़ों गुना चाहती है। इसका मुख्य कारण यह है कि श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी हैं और उनका दिल सखियाँ हैं। श्री राज जी के दिल में जो कुछ भी इश्क, इल्म, नूर, आनन्द आदि है, वहदत के सिद्धान्त से श्यामा जी और सखियों के अन्दर वैसे ही है, किन्तु लीला रूप में श्री राज जी के द्वारा

उसका अहसास करवाया जाता है।

वह सुख केहेवे अपना, जो किया है हक से।

दिल दूजी के यों आवत, ए सब सुख लिया मैं॥८॥

एक सखी जब दूसरी सखी से उस प्रेममयी सुख का वर्णन करती है जो उसने धनी से पाया होता है, तो उसे सुनकर दूसरी सखी के मन में भी ऐसा आता है कि यह सारा सुख मैंने लिया है।

एकै बात के वास्ते, सुख दूजी को उपज्या यों।

यों सबन की एक दिली, जुदा बरनन होवे क्यों॥९॥

इस प्रकार परमधाम में वहदत होने के कारण एक के सुख का अनुभव दूसरे को होता है। परमधाम में सभी का दिल एक है। यही कारण है कि वहाँ किसी को भी एक—

दूसरे से अलग नहीं समझा जा सकता।

भावार्थ- जब श्यामा जी, सखियाँ, और २५ पक्ष श्री राज जी के दिल के ही प्रकट स्वरूप हैं, तो यह स्पष्ट है कि वहाँ एकमात्र श्री राज जी का दिल ही सारी लीला कर रहा है।

एक रूह बात करे हक सों, सुख दूजी को होए।

जब देखिए मुख बोलते, तब सुख पावें दोए॥१०॥

जब एक ब्रह्मसृष्टि श्री राज जी से बात करती है, तो उसका सुख दूसरी सखी को भी प्राप्त होता है। जब वे श्री राज जी को बोलते हुए देखती हैं, तो उन दोनों को समान रूप से सुख प्राप्त होता है।

भावार्थ- इस मायावी जगत में "सौतिया डाह" से सभी परिचित हैं। परमधाम में इसके विपरीत है। वहाँ एक

सखी को धनी से बातें करते देख दूसरी को भी आनन्द आने लगता है, क्योंकि वहाँ वहदत में सभी एक ही स्वरूप होते हैं।

अरस परस यों हक सों, आराम लेवें सब कोए।

अति सुख पावें बड़ीरूह, ए तिनके अंग सब सोए॥११॥

इस प्रकार परस्पर सभी सखियाँ धनी से प्रेम और आनन्द की लीला करती हैं। अक्षरातीत की हृदय (दिल) स्वरूपा श्री श्यामा जी अपने प्रियतम के प्रेम में बहुत अधिक आनन्द का अनुभव करती हैं। ये सभी सखियाँ उन्हीं की अंग स्वरूपा हैं।

जो सुख पावत बड़ीरूह, सब तिनके सुख सनकूल।

ज्यों जल मूल में सींचिए, पोहोंचे पात फल फूल॥१२॥

श्यामा जी धाम धनी से जो सुख प्राप्त करती हैं, वह सुख सभी आत्माओं को आनन्दित करने वाला होता है, जिस प्रकार किसी वृक्ष की जड़ में पानी देने पर वह पत्ती-पत्ती, प्रत्येक फूल और फल में पहुँच जाता है।

त्यों सुख जेता हक का, पोहोंचत है बड़ीरुह को।

बड़ीरुह का सुख रुहन, आवत है सब मों॥१३॥

उसी प्रकार श्री राज जी का आनन्द श्यामा जी में पहुँच जाता है और उनका आनन्द सभी सखियों में आ जाता है।

भावार्थ- वृक्ष की जड़ में पानी डालने पर पत्ते-पत्ते और डाली-डाली तक उसके पहुँचने की बात मात्र दृष्टान्त के रूप में इसलिये कही गयी है, ताकि यह दर्शाया जा सके कि मारिफत में छिपा हुआ प्रेम और

आनन्द हकीकत के रूप में किस प्रकार प्रकट होता है?
इसको सांसारिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। वस्तुतः
परमधाम की वहदत में सबका प्रेम और आनन्द बराबर
ही होता है।

या भूखन या वस्तर, सिनगार के बखत।

एक पेहेने सुख दूजी को यों, सबों सुख होत अतंत॥१४॥

श्रृंगार के समय जब कोई ब्रह्मसृष्टि किसी वस्त्र या
आभूषण को धारण करती है, तो उसका आनन्द दूसरी
(सभी) को होता है। इस प्रकार एकदिली होने से सभी
सखियों को वह आनन्द प्राप्त होता है।

या जो बखत आरोगने, या कोई अर्स लज्जत।

सो एक रूह से दूसरी, सुख देख केहे पावत॥१५॥

भोजन के समय या परमधाम की किसी अन्य प्रेममयी लीला के समय, किसी सखी को मिलने वाला आनन्द देखने वाली या कहने वाली सखियों को भी प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ- सम्पूर्ण परमधाम स्वलीला अद्वैत होने से पूर्णरूपेण जाग्रत है। वहाँ किसी से कोई भी बात छिपी नहीं रहती। किसी लीला के समय यदि कोई सखी वहाँ उपस्थित न हो, तो भी इच्छा मात्र से वह सब कुछ देखती है और उस आनन्द का रसपान करती है। इस चौपाई में देखने या कहने से समान आनन्द मिलने की बात केवल वहदत को समझाने के लिये है।

ए सुख बातें अर्स की, अलेखे अखंड।

क्यों बरनों मैं इन जुबां, बीच बैठ इन इंड॥१६॥

परमधाम के आनन्द की ये बातें अखण्ड और अनन्त हैं, अर्थात् मानवीय बुद्धि से समझ में न आने वाली हैं। वहाँ की लीला का वर्णन मैं इस झूठे संसार में बैठकर इस झूठी जिह्वा से कैसे करूँ।

मैं नेक कही इन बिध की, सो अर्स में बिध बेसुमार।

इन मुख बानी क्यों कहूँ, जाको वार न पार॥१७॥

इस प्रकार परमधाम में प्रेम और आनन्द की एकदिली में सराबोर अनन्त लीलाएँ हैं, जिनके बहुत ही थोड़े से अंश का मैंने वर्णन किया है। एकदिली के जिस आनन्द की कोई सीमा ही न हो, उसका वर्णन मैं इस संसार के मुख और शब्दों से कैसे करूँ?

तो कह्या रसूल ने, अर्स में वाहेदत।

सो कह्या इन माएनो, ए रूहें एक दिल एक चित्त॥१८॥

इसलिये तो मुहम्मद साहिब ने कहा है कि परमधाम में वहदत है। उन्होंने ऐसा इसलिये कहा है, क्योंकि सभी सखियों का दिल और मन एक ही है।

एक रूह सुख लेत है, सुख पावत बारे हजार।

तो कही जो चीज अर्स की, सो चीजें चीज अपार॥१९॥

कोई एक सखी जिस आनन्द को प्राप्त करती है, वह सम्पूर्ण बारह हजार (सभी) को प्राप्त होता है। यही कारण है कि परमधाम की प्रत्येक वस्तु का परिमाण अनन्त है।

भावार्थ— अक्षरातीत को किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। चूँकि वहदत के रूप में स्वयं धाम धनी ही लीला

करते हैं, इसलिये वहाँ किसी भी पदार्थ की सीमा नहीं है। यदि एक सखी का भाव श्यामा जी को लें, तब तो १२००० कहा जायेगा, किन्तु यदि १२००० सखियों में से किसी एक का प्रसंग हो, तो शेष ११९९९ सखियों के द्वारा सुख प्राप्त होने की बात होगी। यद्यपि परमधाम में सखियों की संख्या अनन्त है, इस चौपाई में १२००० का भाव सभी सखियों से है।

जो कोई चीज अर्स में, बाग जिमी जानवर।

ताको सुख बल इस्क का, पार न आवे क्यों ए कर॥२०॥

परमधाम में जो कुछ भी बाग, धरती, या जानवर हैं, उनके बल या इश्क के आनन्द की कोई सीमा नहीं है।

भावार्थ— परमधाम की धरती या बाग यहाँ की तरह स्थावर नहीं है, बल्कि वे भी प्रेम और आनन्द के स्वरूप

हैं। वस्तुतः परमधाम का कण-कण ही अक्षरातीत का स्वरूप है।

या पसु या बिरिख कोई, अपार तिनों की बात।

तो रूहों के सुख क्यों कहूं, ए तो हैं हक की जात॥२१॥

चाहे कोई पशु हो या कोई वृक्ष हो, सबकी शोभा, प्रेम, और आनन्द अनन्त है। ऐसी अवस्था में अक्षरातीत परब्रह्म की अर्धांगिनी (अँगस्वरूपा) कही जाने वाली ब्रह्मसृष्टियों के आनन्द का वर्णन मैं कैसे करूँ।

जिन किनको संसे उपजे, खेल देख के यों।

ए जो रूहें अर्स की, तिनका इस्क न रह्या क्यों॥२२॥

वर्तमान समय में इस मायावी जगत की स्थिति को देखकर किसी को भी अपने मन में इस विषय में संशय

नहीं करना चाहिये कि इस संसार में अब परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों में अपने प्रियतम के प्रति प्रेम (इश्क) क्यों नहीं रह गया है?

इस्क रूह दोऊ कायम, और कायम अर्स के माहें।

क्यों इस्क खोवे आवे क्यों, उत कमी कोई आवत नाहें॥२३॥

अनादि परमधाम अखण्ड है और वहाँ परात्म का तन तथा उसमें निहित इश्क भी अखण्ड है। इसलिये परात्म न तो अपना इश्क गँवा सकती है और न इस झूठे संसार में आ सकती है। वहाँ किसी भी वस्तु की (ब्राह्मी) कभी भी कमी नहीं हो सकती।

भावार्थ— माया के प्रभाव से आत्मा अपने धाम धनी को भूली रहती है, इसलिये उसमें इश्क का अभाव होता है। ब्रह्मवाणी द्वारा जब वह धाम धनी को जान लेती है, तो

विरह की राह अपनाकर प्रेम (इश्क) को प्राप्त कर लेती है। इसके विपरीत उसके मूल तन परात्म से कभी भी इश्क अलग नहीं हो सकता, क्योंकि वह स्वलीला अद्वैत परमधाम में विराजमान है।

उत कमी क्यों आवहीं, और रूहें आवें क्यों इत।

और इस्क जाए क्यों इनों का, जिनकी एती बड़ी सिफत॥२४॥

परमधाम में किसी भी ब्राह्मी वस्तु की कमी नहीं आ सकती। जिन ब्रह्मसृष्टियों की इतनी बड़ी महिमा कही गयी है, उनके मूल तन न तो इस मायावी जगत में आ सकते हैं और न उनके इश्क में किसी भी प्रकार की कमी हो सकती है।

भावार्थ— परमधाम में किसी भी वस्तु की कमी न होने का तात्पर्य केवल ब्राह्मी वस्तुओं (नूर, प्रेम, शोभा,

ज्ञान) आदि से है। वहाँ काम, क्रोध, मोह, आदि विकारों और दुर्गन्धयुक्त नश्वर वस्तुओं के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कमी की बात तो दूर की है।

जात हक की कहावहीं, और कहावें माहें वाहेदत।

जो इलम विचारे हक का, ताको इस्क बढ़त॥२५॥

ये ब्रह्मसृष्टियाँ अक्षरातीत परब्रह्म की अँगस्वरूपा अर्धांगिनी कहलाती हैं। इनका स्वरूप भी एकदिली के अन्दर ही है। जो भी सुन्दरसाथ धाम धनी के द्वारा अवतरित इस ब्रह्मवाणी के द्वारा अपने निज स्वरूप का चिन्तन करेगा, उसके हृदय में प्रियतम के प्रेम की वृद्धि अवश्य होगी।

भावार्थ— इस चौपाई के तीसरे चरण का आशय केवल ज्ञान की शुष्कता में ही खोये रहना नहीं, बल्कि केवल

ब्रह्मवाणी द्वारा संसार की नश्वरता तथा परमधाम की अखण्डता, वहाँ के अनन्त सौन्दर्य एवं आनन्दमयी लीलाओं, तथा निज स्वरूप का चिन्तन करना है। इसी के द्वारा हृदय में धनी का प्रेम प्रकट होता है।

ए केहेती हों मैं तिनको, कोई संसे ल्यावे जिन।

ए अनहोनी हकें करी, वास्ते हाँसी ऊपर रूहन॥२६॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे साथ जी! यह बात मैं केवल परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों से ही कह रही हूँ। मेरी इस बात में कोई भी संशय न करे। अपनी अँगनाओं पर हँसी करने के लिये धाम धनी ने अनहोनी घटना के रूप में माया का यह खेल दिखाया है।

ना तो ए कबहूँ नहीं, जो हक रूहें देखें सुपन।

एक जरा अर्स का, उड़ावे चौदे भवन॥२७॥

अन्यथा यह तो कभी सम्भव ही नहीं है कि अक्षरातीत की अर्धांगिनी आत्मायें अपनी नूरी नजरों से या शरीर से खेल में आकर इस झूठे खेल को देखें। परमधाम के एक कण के तेज के सामने चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड समाप्त हो जायेगा।

ए हकें हिकमत करी, खेल देखाया झूठ रूहन।

पट दे झूठ देखाइया, नैनों देखें बका वतन॥२८॥

धाम धनी ने ऐसी विचित्र लीला की है, जिसमें ब्रह्मसृष्टियाँ उनके दिल रूपी पर्दे पर इस झूठे खेल को देख रही हैं। धनी के हुक्म से उनकी नजर आत्मा के रूप में इस खेल में आ गयी है तथा उनकी नूरी नजर

परमधाम में ही धनी की ओर देख रही है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का यह भाव नहीं समझना चाहिए कि ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम के पच्चीस पक्षों को देख रही हैं। सच तो यह है कि उनकी नूरमयी आँखें अवश्य श्री राज जी की ओर हैं, किन्तु वे उन्हें भी नहीं देख पा रही हैं। उनकी अन्तर्दृष्टि हुक्म के द्वारा इस झूठे संसार को देख रही है। खिल्वत ग्रन्थ १/३ में यह बात इस रूप में दर्शायी गयी है-

बैठी अंग लगाए के, ऐसी करी अन्तराए।

ना कछु नैनों देखत, ना कछु आप ओलखाए॥

आड़ा पट दे झूठ देखाइया, पट न आड़े हक।

सो हक को हक देखत, हुई फरामोसी रंचक॥२९॥

धाम धनी ने फरामोशी (नींद) का पर्दा देकर अपनी

अँगनाओं को माया का यह झूठा खेल दिखाया है, किन्तु धाम धनी की दृष्टि में कोई भी पर्दा नहीं है। सखियाँ भी धाम धनी की स्वरूपा हैं। वे उनको अपनी नजरों से देख तो रही हैं, किन्तु धनी ने अपने हुक्म के द्वारा उनकी दृष्टि में नाम मात्र की फरामोशी डाल दी है।

भावार्थ— पर्दे दो हैं। एक तो धाम धनी का दिल रूपी परदा, जिस पर परात्म की नूरी नजर फरामोशी के खेल को देख रही है। दूसरा फरामोशी (नींद) का पर्दा है, जिसके कारण आत्मायें मूल मिलावा में विराजमान अपने मूल तन को या धाम धनी को नहीं देख पा रही हैं।

वहदत के कारण, फरामोशी का यह पर्दा न तो धाम धनी के लिये है और न परात्म के लिये। धाम धनी सर्वदा जाग्रत रहने के कारण परमधाम को भी देख रहे हैं तथा कालमाया को भी। इसके विपरीत परात्म के तन

फरामोशी की लीला को तो श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर देख रही हैं, किन्तु फरामोशी के ब्रह्माण्ड को अपनी नूरी नजरों से नहीं देख पा रही हैं। आत्मायें फरामोशी के परदे को तब तक उलंघ नहीं पाती, जब तक वे ब्रह्मवाणी के ज्ञान से धनी को पहचान कर प्रेम की राह नहीं अपना लेतीं। इसी को थोड़ी सी फरामोशी होना कहा गया है अर्थात् नाममात्र के लिये फरामोशी का पर्दा है, जबकि धाम धनी के लिये कोई भी पर्दा नहीं है। ब्रह्मसृष्टियाँ धनी की अँगरूपा हैं, इसलिये इस चौपाई के तीसरे चरण में उन्हें हक कहकर सम्बोधित किया गया है।

इन बिध खेल देखाइया, ना तो रूहें झूठ देखें क्यों कर।

अपने तन हकें जान के, करी हाँसी रूहों ऊपर॥३०॥

इस प्रकार धाम धनी ने अपनी अँगनाओं को माया का

यह खेल दिखाया है, अन्यथा ब्रह्मसृष्टियाँ इस झूठे जगत को नहीं देख सकतीं। प्रियतम अक्षरातीत ने अपनी प्रियात्माओं को अपना साक्षात् स्वरूप (तन) मानकर ही यह हँसी की है, अर्थात् हँसी का यह खेल दिखाया है।

सोभी किया सुख वास्ते, पर अब सुध किनको नाहें।

खेल देसी सुख बड़े, जब जागें अर्स के माहें॥३१॥

श्री राज जी ने हँसी का यह खेल अपनी अँगनाओं को सुख देने के लिये ही किया है, लेकिन इसकी वास्तविकता का ज्ञान अभी किसी को भी नहीं है। जब हम परमधाम में जाग्रत होंगे, तब माया का यह खेल हमें बहुत अधिक सुख देगा।

भावार्थ— जिस प्रकार शीतल चन्द्रमा की किरणें दाहकारक नहीं हो सकतीं, उसी प्रकार अनन्त आनन्द

के स्वरूप अक्षरातीत की कोई भी लीला दुःखदायी नहीं हो सकती। धाम धनी ने हमें दुःख का खेल अवश्य दिखाया है, किन्तु ब्रह्मवाणी द्वारा जो मारिफत की पहचान दी है, वह परमधाम में भी नहीं थी। अब परमधाम में या इस खेल में जाग्रत होने पर ही उस सुख का अहसास हो सकता है। इस सम्बन्ध में सिनगार १२/३० का यह कथन देखने योग्य है—

सुख हक इस्क के, जिनको नाही सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सो करो विचार॥

हादी नूर है हक का, और रूहें हादी अंग नूर।

इन विध अर्स में वाहेदत, ए सब हक का जहूर॥३२॥

श्यामा जी श्री राज जी का नूर हैं और सखियाँ श्री श्यामा जी की नूर हैं। इस प्रकार परमधाम में एकदिली

की लीला है। श्री राज जी के मारिफत स्वरूप हृदय से ही श्यामा जी एवं सखियों के स्वरूप का अनादि रूप से प्रकटन है, अर्थात् स्वयं श्री राज जी ही श्यामा जी एवं सखियों के स्वरूप में लीला कर रहे हैं।

महामत कहें ए तीसरा, ए जो रूहों दिल सागर।

अब कहूं चौथा सागर, पट खोल देखो अन्तर॥३३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! यह तीसरा सागर है, जो सखियों के दिल में स्थित एकदिली (वहदत) का सागर है। अब मैं चौथे सागर (युगल स्वरूप की शोभा और श्रृंगार) का वर्णन करने जा रहा हूँ। अब अपनी आत्मिक दृष्टि से इस सागर को हृद-बेहृद से परे परमधाम के मूल मिलावा में देखिए।

प्रकरण ॥४॥ चौपाई ॥२०८॥

सागर चौथा जुगल किसोर का सिनगार

श्री राजजी का सिनगार पेहेला – मंगला चरन

अपने अहम् का विसर्जन करने के पश्चात् ही कोई तन उस शब्दातीत परब्रह्म की शोभा का वर्णन करने में सक्षम हो सकता है। इसी भाव को ध्यान में रखकर परब्रह्म के चरणों में जो अपनी भावनायें व्यक्त की जाती हैं , उसे मँगलाचरण कहते हैं।

चौदे तबक की दुनी में, किन कहया न बका हरफ।

ए हरफ कैसे केहेवहीं, किन पाई न बका तरफ॥१॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में आज दिन तक किसी ने भी अखण्ड परमधाम के बारे में कोई शब्द नहीं कहा। जब किसी को इस बात का ज्ञान ही नहीं था कि परमधाम कहाँ है तो इसके बारे में वे क्या वर्णन करते?

भावार्थ- यद्यपि वेद-उपनिषदों के अनेक कथनों में परमधाम का वर्णन है और उसे प्रकृति मण्डल से परे कहा गया है, किन्तु बिना तारतम ज्ञान के यह निर्णय नहीं हो पाता कि वह परमधाम इस अनन्त प्रकृति के परे किस ओर है।

आदित्यवर्णः तमसस्परस्तात्। यजु. ३१/१८

त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः। यजु. ३१/४

यत्र ज्योति अजस्त्रं यास्मिन् लोके स्वर्हितम्।

ऋ० ९/११३/७

असतो मा सद् गमय। शतपथ ब्राह्मण

न तत्र सूर्यो भाविन न चन्द्र तारकम्।

कठ एवं मुण्डकोपनिषद

का कथन यही सिद्ध करता है।

आया इलम लदुन्नी, कहे साहेदी एक खुदाए।

तरफ पाई हक इलमें, मैं बका पोहोंची इन राह॥२॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि इस नश्वर जगत में तारतम ज्ञान का अवतरण हुआ, जिसका स्पष्ट कथन है कि एकमात्र अक्षरातीत ही सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं। अक्षरातीत के द्वारा दिये गये इस तारतम ज्ञान की राह पर चलकर ही मैंने उस अनादि और अखण्ड परमधाम को प्राप्त कर लिया।

अर्स देख्या रूहअल्ला, हक सूरत किसोर सुन्दर।

कही वाहेदत की मारफत, जो अर्स के अंदर॥३॥

श्री श्यामा जी ने परमधाम तथा उसमें विराजमान श्री राज जी के अति सुन्दर किशोर स्वरूप का दीदार किया। उन्होंने परमधाम के अन्दर विराजमान वहदत की

मारिफत के स्वरूप श्री राज जी की शोभा का वर्णन किया।

भावार्थ- निस्बत और वहदत के स्वरूप सखियाँ हैं, तथा इनकी मारिफत के स्वरूप श्री राज जी हैं।

नदी ताल बाग जानवर, जो अर्स की हकीकत।

रूहअल्ला दई साहेदी, हक हादी खास उमत॥४॥

परमधाम में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाली शोभा (हकीकत) के रूप में विद्यमान यमुना जी, हौज कौशर ताल, बाग बगीचों, तथा पशु-पक्षियों को सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने देखा। उन्होंने मूल मिलावा में विराजमान युगल स्वरूप तथा सखियों को भी देखा और अपने वचनों के द्वारा उसकी साक्षी दी।

महंमद पोहोंचे अर्स में, देखी हक सूरत।

हौज जोए बाग जानवर, कही सब हक मारफत॥५॥

मुहम्मद साहिब भी अपनी आत्मिक दृष्टि से परमधाम पहुँचे और उन्होंने श्री राज जी का दीदार किया। हौज कौशर ताल, यमुना जी, बाग-बगीचों, एवं पशु-पक्षियों मारिफत के स्वरूप की शोभा का भी वर्णन किया है।

भावार्थ- मुहम्मद साहिब अपने पञ्चभौतिक तन या जीव से परमधाम नहीं गये, बल्कि उनकी आत्मिक दृष्टि ही परमधाम में पहुँची। इसे ही मुहम्मद साहिब का परमधाम में पहुँचना कहते हैं। जिस प्रकार स्वप्न में मन की तरंगें ही शरीर जैसा रूप धारण कर लेती हैं, उसी प्रकार आत्मा भी परात्म का प्रतिबिम्ब लेकर जीव पर बैठी होती है तथा ध्यान में उसकी दृष्टि भी परात्म का प्रतिबिम्बित स्वरूप लेकर परमधाम पहुँच जाती है।

मारिफत (परमसत्य) के स्वरूप श्री राज जी हैं। इसे ही वेद में "ऋत्" की संज्ञा प्राप्त है। हौज कोशर, यमुना जी, तथा बाग-बगीचों का स्वरूप सत्य (हकीकत) है, जो लीला में प्रयुक्त होता है।

देखी अमरद जुल्फें हक की, और बोहोत करी मजकूर।

कही बातें जाहेर बातून, पोहोंच के हक हजूर॥६॥

मुहम्मद साहिब ने श्री राज जी के किशोर स्वरूप और उनके घुँघराले बालों को भी देखा। उन्होंने श्री राज जी से बहुत (९०,००० शब्दों में) बातें भी की। परब्रह्म का साक्षात्कार करके उन्होंने मारिफत स्वरूप श्री राज जी और हकीकत के स्वरूप परमधाम की बात संकेतों में बतायीं।

भावार्थ— "कस्सुल अंबिया" के उर्दू संस्करण पृष्ठ

१८०-१८१ में मुहम्मद साहिब ने अपनी हदीस में कहा है कि उन्होंने खुदा की किशोर सूरत तथा घुँघराले बालों को देखा है।

ए साहेदी आई इन विध की, कहे खुदा एक महंमद बरहक।
सो क्यों सुध परे बिना इलम, हक इलमें करी बेसक॥७॥

कुरआन-हदीसों में इस बात की साक्षी मिलती है कि एकमात्र अक्षरातीत ही परब्रह्म (खुदा) हैं तथा मुहम्मद साहिब का कहा हुआ ज्ञान सत्य है, किन्तु इसका वास्तविक बोध तारतम ज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। ब्रह्मवाणी ने हमें अब पूर्ण रूप से संशय रहित कर दिया है।

महंमद की फुरमान में, कही तीन सूरत।

बसरी मलकी और हकी, एक अव्वल दो आखिरत॥८॥

मुहम्मद साहिब के द्वारा अवतरित कुरआन में तीन सूरतों का वर्णन किया गया है। बशरी, मलकी, तथा हकी तीनों सूरतों के नाम हैं। धर्मग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि लैल-तुल-कद्र के तीसरे तकरार के प्रारम्भ में बशरी सूरत का प्रकटन होगा, तथा आखिरत में मल्की और हकी सूरत प्रकटेंगी।

भावार्थ- कुरआन के व्याख्या ग्रन्थ तफसीर-ए-हुसैनी में पारा १५ सूरे मरियम की व्याख्या में तीन सूरतों का वर्णन किया गया है। बशरी सूरत का तात्पर्य मुहम्मद साहिब (सल्ल.) से है, तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी और श्री प्राणनाथ जी क्रमशः मल्की और हकी सूरत हैं।

मेरी रूह जो बरनन करत है, करी हादियों मेहेरबानगी।

ना तो अव्वल से आज लगे, कहूं जाहेर न बका की॥९॥

मेरी आत्मा जो कुछ वर्णन करने जा रही है, वह युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की कृपा से ही सम्भव हो पा रहा है। अन्यथा, सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक किसी ने भी अखण्ड परमधाम तथा युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार के बारे में कुछ भी नहीं कहा है।

आतम चाहे बरनन करूं, जुगल किसोर विध दोए।

ए दोए बरनन कैसे करूं, दोऊ एक कहावत सोए॥१०॥

मेरी आत्मा चाहती है कि मैं युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की शोभा का अलग-अलग वर्णन करूं, किन्तु यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि जब दोनों एक ही स्वरूप कहलाते हैं तो इनका अलग-अलग वर्णन कैसे

किया जा सकता है?

बरनन होए इलम से, जो इलम हक का होए।

एक देखाऊं बातून में, जाहेर बरनवूं दोए॥११॥

शोभा का वर्णन तो ज्ञान के द्वारा ही होगा, किन्तु ऐसा ज्ञान चाहिये जो श्री राज जी के द्वारा दिया हुआ हो, अर्थात् यदि धाम धनी मेरे अन्दर बैठकर स्वयं ही वर्णन करें तभी ऐसा होना सम्भव है। मैं आन्तरिक रूप से दोनों को एक मानते हुए भी बाह्य रूप से युगल स्वरूप के रूप में वर्णन करूँगी।

रूह चाहे बका सरूप की, बरनन करूं जिमी इन।

इलम लदुन्नी खुदाई से, जो कबहूं न सुनिया किन॥१२॥

मेरी आत्मा यही चाहती है कि मैं श्री राजश्यामा जी के

अखण्ड स्वरूप का वर्णन इस झूठे संसार में करूँ। इस स्वरूप का वर्णन आज दिन तक इस संसार में किसी ने सुना नहीं है, किन्तु श्री राज जी के दिए हुए तारतम ज्ञान से ही ऐसा होना सम्भव है।

द्रष्टव्य— पुराण संहिता तथा माहेश्वर तन्त्र में श्री राजश्यामा जी की शोभा का जो वर्णन दर्शाया गया है, वस्तुतः वह केवल ब्रह्म तथा उनकी आनन्द शक्ति की शोभा का वर्णन है। अक्षरातीत के आवेश के बिना युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी का वर्णन असम्भव है।

जिन जानो ए बरनन, करत आदमी का।

ए सबथें न्यारा सुभान जो, अर्स अजीम में बका॥१३॥

ऐसा किसी को भी नहीं समझना चाहिए कि यह किसी सुन्दर मनुष्य के स्वरूप का वर्णन हो रहा है। यह शोभा

तो उस अखण्ड स्वरूप वाले अक्षरातीत की है, जो सभी ब्रह्माण्डों से अलग सर्वोपरि परमधाम में विराजमान हैं।

मलकूत ऊपर हवा सुन्य, तिन पर नूर अछर।

नूर पार नूरतजल्ला, ए जो अछरातीत सब पर॥१४॥

वैकुण्ठ के परे अनन्त निराकार का मण्डल है, उसके परे अक्षर ब्रह्म का बेहद-मण्डल है, जिसके परे वह परमधाम है जिसमें अक्षर तथा अक्षरातीत का अनादि नूरमयी स्वरूप है।

अर्स ठौर हमेसगी, हमेसा हक सूरत।

सिनगार सबे हमेसगी, ना चल विचल इत॥१५॥

परमधाम तथा उसमें विराजमान श्री राज जी की शोभा-श्रृंगार सभी शाश्वत, नित्य, और अखण्ड है। इनमें

कभी भी कोई विकृति (अस्त-व्यस्तता) नहीं होती।

जित जैसा रूह चाहत, तहां तैसा बनत सिनगार।

नित नए वाहेदत में, सोभा अखंड अपार॥१६॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टि जहाँ भी जैसा श्रृंगार चाहती है, वहाँ पर वैसा ही श्रृंगार तुरन्त दिखायी देने लगता है। परमधाम में एकदिली होने से सभी का श्रृंगार नित्य नूतन अवस्था में अनन्त शोभा को धारण किये रहता है। उसमें कभी भी कमी नहीं होती।

भावार्थ- इस चौपाई में इच्छानुसार श्रृंगार बदलने का सम्बन्ध केवल राज जी से नहीं है, बल्कि श्यामा जी, सखियों, और महालक्ष्मी सहित खूब-खुशालियों से भी है। एकदिली होने से सभी का श्रृंगार मन में लेने से पहले ही वैसा श्रृंगार इच्छानुसार दिखायी पड़ता है।

या वस्तर या भूखन, जो दिल रूह चहे।

सो उन अंगों सोभा लिए, जानों आगूं ही बन रहे॥१७॥

यदि किसी ब्रह्मसृष्टि के अन्दर यह इच्छा होती है कि धाम धनी के वस्त्र या आभूषण का श्रृंगार ऐसा होना चाहिए, तो उसी क्षण उन अंगों में वैसा ही श्रृंगार दिखायी पड़ने लगता है। ऐसा लगता है जैसे मन में लेने से पहले ही वैसा श्रृंगार शोभा देने लगता है।

हाथ न लगे भूखन को, जो दीजे हाथ ऊपर।

चित्त चाह्या अंगों सब लग रह्या, जुदा होए न अग्या बिगर॥१८॥

यदि किसी आभूषण को हाथ से पकड़ने का प्रयास किया जाये, तो वह हाथ में नहीं आता है क्योंकि वह नूरमयी स्वरूप का अंग होता है। चित्त की इच्छानुसार सभी अंगों में आभूषणों की शोभा होती है और बिना

आज्ञा के कोई भी आभूषण अदृश्य (अलग) नहीं हो सकता।

भावार्थ- यद्यपि इच्छा मन में होती है, किन्तु उसका बीज चित्त के संस्कारों में ही निहित होता है, जैसे- गाय के अन्दर माँस खाने या शेर के अन्दर घास खाने की मूलतः इच्छा नहीं होती। इस चौपाई में चित्त के अन्दर इच्छा होने की बात इसलिये कही गयी है।

जिन खिन चित्त जो चाहे, सो आगूंही बनि आवे।

इन विध सिनगार सब समें, नित नए रूप देखावे॥१९॥

किसी भी सखी के चित्त में जिस समय जिस प्रकार के श्रृंगार की इच्छा होती है, वह पहले से वैसा ही दिखायी देने लगता है। इस प्रकार वहाँ सखियों की इच्छानुसार श्रृंगार नित्य ही नये-नये रूपों में दृष्टिगोचर होता रहता

है।

ना पेहेन्या ना उतारिया, दिल चाह्या नित सुख।

वाहेदत हमेसा ए सुख, हक सींचल सनमुख॥२०॥

परमधाम में न तो किसी वस्त्र या आभूषण को पहनना पड़ता है और न उतारना पड़ता है। वहाँ तो हमेशा दिल की इच्छानुसार वस्त्रों एवं आभूषणों के श्रृंगार का सुख प्राप्त होता रहता है। अक्षरातीत के नेत्रों से प्रेम रूपी सुधा का पान करने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ हमेशा एकदिली स्वरूप में आनन्दमग्न रहा करती हैं।

सब्द न लगे सोभा असलें, पर रूह मेरी सेवा चाहे।

तो बरनन करुं इनका, जानों रूहों भी दिल समाए॥२१॥

इस संसार के शब्द श्री राज जी की शोभा का

वास्तविक वर्णन करने में असमर्थ हैं, किन्तु मेरी आत्मा प्रियतम की शोभा का वर्णन करके सेवा करना चाहती है। मैं श्री राज जी की शोभा का वर्णन इसलिये कर रही हूँ, ताकि अन्य ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में यह शोभा बस जाये।

इन जिमी जरे की रोसनी, मावत नहीं आसमान।

तो ए बरनन क्यों होवहीं, अर्स साहेब सुभान॥२२॥

परमधाम के एक कण के अन्दर इतना प्रकाश है कि वह आकाश में नहीं समाता अर्थात् सम्पूर्ण आकाश में फैल जाता है। ऐसी स्थिति में भला यह कैसे सम्भव है कि परमधाम के साहेब श्री राज जी की शोभा का वर्णन किया जा सके।

भावार्थ— साहेब या साहिब शब्द अरबी भाषा का है। वस्तुतः यह सम्मानसूचक शब्द है, जो नाम के अन्त में

लगाया जाता है। इसका अर्थ होता है— स्वामी, मालिक, मित्र, सहायक, साथी, वाला जैसे साहिब-ए-इल्म अर्थात् इल्म वाला।

इस कथन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि "श्री जी साहिब जी" में प्रयुक्त "साहिब जी" शब्द सम्मानसूचक है। "श्री जी" शब्द का अर्थ अनन्त शोभा से सम्पन्न सबके प्रियतम जो अक्षरातीत हैं, वे ही "श्री जी साहेब जी" हैं।

इस चौपाई में वर्णित "साहेब" शब्द के अर्थ "स्वामी" का प्रयोग श्री प्राणनाथ जी के साथ करना उचित नहीं, क्योंकि इस संसार में नाम के आगे "स्वामी" शब्द प्रायः साधु-सन्यासियों के लिये किया जाता है, जैसे— स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द आदि। हम भी "स्वामी प्राणनाथ" कहकर धाम धनी की गरिमा को कम करते हैं।

सम्पूर्ण बीतक में सुन्दरसाथ ने कहीं भी "श्री जी" को "स्वामी जी" कहकर सम्बोधित नहीं किया है। हरिद्वार के प्रसंग में तारतम ज्ञान से अनभिज्ञ अन्य मतावलम्बियों ने अवश्य "स्वामी जी" कहा है। किरंतन ४०/१ में "स्वामि द्रोही" शब्द जीव के लिये कहा गया है, आत्मा के लिये नहीं।

आसिक क्यों बरनन करे, इस्क लिए रहेमान।

एक अंग को देखन लगी, सो तित हीं भई गलतान॥२३॥

आशिक ब्रह्मसृष्टि के रोम-रोम में धनी के लिये प्रेम भरा होता है। उनके लिये अपने प्रियतम की शोभा का वर्णन करना बहुत ही कठिन होता है, क्योंकि वे अपने प्राणवल्लभ के जिस अंग की शोभा को देखती हैं, उसी में डूब जाती हैं।

भावार्थ- शोभा का वर्णन तो तभी सम्भव है, जब बुद्धि कार्य करे। शोभा में डूब जाने पर बेसुधि की अवस्था में बुद्धि कार्य नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में श्रृंगार का वर्णन करना सम्भव नहीं है। यह तो मात्र श्री राज जी के आदेश (हुक्म) से ही सम्भव है।

सोभा जुगल किसोर की, सुख सागर चौथा ए।

आवें लेहेरें नेहेरें अति बड़ी, झीलें अरवाहें जो इन के॥२४॥

यह चौथा सागर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की शोभा का सागर है, जो सुख का सागर है। इस सागर की उमड़ती हुई लहरों में नहरों के समान प्रेम और आनन्द का जल भरा होता है, जिसमें परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ स्नान करती हैं।

भावार्थ- युगल स्वरूप की शोभा को अपने हृदय में

बसाकर ही प्रेम और आनन्द के सागर में स्वयं को डुबोया जा सकता है। संसार के दुःखों से छूटने और धनी को पाने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

खूबी जुगल किसोर की, प्रेम वचन इन रीत।

आसिक इन मासूक की, भर भर प्याले पीत॥२५॥

इस प्रकार, जो ब्रह्मसृष्टि अपने माशूक श्री राजश्यामा जी की आशिक होती है, वह ब्रह्मवाणी के इन प्रेम भरे वचनों को आत्मसात् करती है और युगल स्वरूप की शोभा को अपने दिल में बसाकर प्रेम तथा आनन्द के प्याले भर-भरकर पीती है।

भावार्थ— आत्मा का हृदय ही वह प्याला है, जिसमें प्रेम और आनन्द का रस भरा जाता है, जिसका रसपान

आत्मा करती है। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब युगल स्वरूप की शोभा को दिल में बसाया जाये। इस सम्बन्ध में सागर ग्रन्थ का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है—

ताथें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।
सुरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल॥

सागर ११ / ४६

अगली चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

मेरी रूह नैन की पुतली, तिन पुतलियों के नैन।

तिन नैनों में राखूं मासूक को, ज्यों मेरी रूह पावे सुख चैन॥२६॥

मेरी आत्मा परात्म रूपी नैन की पुतली है। उस आत्मा रूपी पुतली का नैन यह हृदय है, जिसमें अपने माशूक श्री राजश्यामा जी को मुझे बसा लेना है। ऐसा करने पर ही मेरी आत्मा अपने प्रियतम का आनन्द पा सकेगी और

तभी उसे आराम (सुकून, सन्तोष) भी प्राप्त होगा।

भावार्थ- यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि प्रेम रस का पान नेत्रों के द्वारा किया जाता है। परमधाम में परात्म के द्वारा ही श्री राज जी से प्रेम की लीला सम्पादित होती है, इसलिये उसे नेत्र की संज्ञा दी गयी है। जिस प्रकार बिना पुतली के नेत्र से नहीं देखा जा सकता, उसी प्रकार परात्म की नजर जो हुक्म के द्वारा आत्मा (सुरता) के रूप में इस खेल में आयी है, उसके बिना परात्म भी धनी से न तो प्रेम कर पा रही है और न बातें कर पा रही हैं। इस कारण आत्मा को परात्म रूपी नेत्र की पुतली कहा गया है। अब पुतली रूपी आत्मा का नेत्र वह हृदय है, जिससे प्रियतम से प्रेम किया जाता है और उसमें बसाया जाता है। इसी से मिलता-जुलता भाव कबीर जी ने भी व्यक्त किया है। वे कहते हैं-

नैनों की कलि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
नैनों की चिक डारि के, पिऊ को लिया रिझाय।
इस कथन में आत्मा को नेत्र तथा पुतली को हृदय कहा गया है।

मीराबाई के कथन "बसो मेरे नैनन में नन्दलाल" में "नैन" का तात्पर्य जीव के दिल से है।

इस प्रकार अलग-अलग प्रसंगों में नैन, पुतली, और तारा का प्रयोग किया गया है, किन्तु मूल भाव यह है कि हृदय में शोभा बसायी जाती है तथा द्रष्टा आत्मा या जीव के द्वारा उसका रसपान किया जाता है।

॥ मंगलाचरन तमाम ॥

यह मंगलाचरण सम्पूर्ण हुआ। अब श्री राज जी की मेहर से उनकी शोभा का वर्णन किया जा रहा है।

सिर पाग बांधी चतुराई सों, हकें पेच हाथ में ले।

भाव दिल में लेय के, सुख क्यों कहूं विध ए॥२७॥

धाम धनी ने अपने हाथों से सिर पर पेंच (लपेट) फिराते हुए बहुत ही चतुराई से पाग बाँधी है। सखियों को आनन्दित करने के लिये अपने दिल में भाव लेकर उन्होंने जो पाग बाँधी है, उससे मिलने वाले सुख का वर्णन मैं नहीं कर सकती।

केस चुए में भीगल, लिए जुगतें पेच फिराए।

पेच दिए ता पर बहु बिध, बांधी सारंगी बनाए॥२८॥

श्री राज जी के घुँघराले बालों में सुगन्धित इत्र लगा हुआ है। उन्होंने युक्तिपूर्वक अपने सिर के ऊपर अनेक प्रकार के पेंच फिराते हुए इस प्रकार पाग बाँधी है कि उसकी आकृति सारंगी की तरह शोभा ले रही है।

भावार्थ- सारंगी एक प्रकार प्राचीन वाद्ययन्त्र है, जिसके आधार पर आधुनिक वाद्य वायलिन की रचना की गयी है। सारंगी के एक किनारे पर जैसी आकृति उभरती है, लगभग उसी से मिलती हुई शोभा श्री राज जी के पाग की भी है।

उज्जल हस्त कमल सौं, कोमल नरम अतंत।

बांधी हिरदे विचार के, दोऊ क्यों कर करूं सिफत॥२९॥

श्री राज जी के दोनों हस्तकमल अति उज्ज्वल गौर वर्ण के हैं। उनकी कोमलता अनन्त है। अपनी आत्माओं को आनन्दित करने का विचार लेकर धाम धनी ने अपने जिन हाथों से यह सुन्दर पाग बाँधी है, उन हाथों की सुन्दरता का वर्णन मैं कैसे करूँ?

भावार्थ- उज्ज्वल वर्ण का तात्पर्य वह रंग है, जो सफेदी

में गहरी गुलाबी आभा लिये हो।

रंग लाल जरी माहें बेल कई, कई फूल पात नकस कटाव।

कई रंग नंग जवेर झलकें, बलि जाऊं बांधी जिन भाव॥३०॥

पाग का रंग लाल है, जिस पर सोने के तारों से अनेक प्रकार की लताओं, फूलों, और पत्तियों के चित्र अंकित किये गये हैं। पाग में अनेक रंगों के नग और जवाहरात झलकार करते रहते हैं। प्रियतम अक्षरातीत ने अपनी अँगनाओं को आनन्दित करने की जिस भावना से यह पाग बाँधी है, उस भाव पर मैं बार-बार समर्पित (बलिहारी) होती हूँ।

आसिक एही विचार हीं, तब याही में रहे लपटाए।

अंदर हक पेचन से, क्यों कर निकस्यो जाए॥३१॥

श्री राज जी के प्रेम भाव में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टि जब धनी के प्रेममयी भावों एवं पाग की सुन्दरता के बारे में विचार करती है, तो उसमें मग्न हो जाती है। वह पाग के पेचों की शोभा में इतनी डूब जाती है कि उससे निकल पाना उसके लिये सम्भव नहीं होता।

ऊपर कलंगी लटकत, झलकत है अति जोत।

याको नूर आसमान में, भराए रह्यो उद्योत॥३२॥

पाग के ऊपर कलंगी लटक रही है, जिसकी नूरमयी ज्योति बहुत अधिक झलकार कर रही है। उसका नूरमयी प्रकाश आकाश में चारों ओर फैल रहा है।

ऊपर सारंगी दुगदुगी, करे जो झलझलाट।

ए देखे अंतर आंखें खुलें, ए जो हैड़े के कपाट॥३३॥

सारंगी की आकृति वाली उस पाग में दुगदुगी झलकार कर रही है। उसकी शोभा देखने से हृदय के बन्द दरवाजे खुल जाते हैं और आत्मिक दृष्टि परमधाम में विहार करने लगती है।

भावार्थ- जीव जन्म-जन्मान्तरों से माया के बन्धन में बँधा होता है। उसके हृदय में वासनाओं का जाल बिछा होता है। यदि ज्ञान, भक्ति, विवेक, और वैराग्य आदि की अमृतधारा उसके हृदय में प्रवेश नहीं कर पाती है, तो सामान्य तौर पर यही कहा जाता है कि आध्यात्मिक सम्पदा के लिए उसके हृदय का द्वार बन्द है। जब यह आध्यात्मिक सम्पदा उसके हृदय मन्दिर में प्रवेश कर जाती है, तो यही कहा जाता है कि अब उसके हृदय के बन्द द्वार खुल गये हैं। इस चौपाई का आशय यही है कि धाम धनी की मेहर से यदि पाग की जगमगाती हुई

दुगदुगी की शोभा दिख जाये, तो हृदय ऐसे आनन्द से भर जाता है कि वह पुनः माया में भटकने की इच्छा नहीं करता और आत्मिक दृष्टि अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत तथा निज घर को देखने लगती है।

इन परन का नूर क्यों कहूं, देख देख रूह अटकत।

और न्यारी जोत नंगन की, ए जो दुगदुगी लटकत॥३४॥

कलंगी में लगे हुए परों के नूर का वर्णन कैसे किया जा सकता है। उनकी शोभा देखकर तो आत्मा की नजर ही ठहर जाती है। पाग में लटकती हुई दुगदुगी में जो नग जड़े हुए हैं, उनसे निकलने वाली ज्योति की शोभा अलग ही है।

ऊपर दुगदुगी जो मानिक, आसमान भरयो ताके तेज।

आसमान जिमी के बीच में, जोत पोहोंची रेजा रेज॥३५॥

दुगदुगी के ऊपर माणिक जड़ा हुआ है, जिसका तेज आकाश में चारों ओर फैला हुआ है। परमधाम के आकाश और धरती के एक-एक कण तक उसकी ज्योति फैली हुई है।

सुन्दरता इन मुख की, सब्द न पोहोंचे कोए।

नूर को नूर जो नूर है, किन मुख कहूं रंग सोए॥३६॥

श्री राज जी के मुख के अनन्त सौन्दर्य का वर्णन करने में किसी भाषा का कोई भी शब्द समर्थ नहीं है। श्री राज जी के जिस नूरमयी स्वरूप से श्यामा जी और सखियों का स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है, उस स्वरूप के मुखारविन्द के रंग की शोभा का वर्णन कैसे किया जाये।

भावार्थ- श्री राज जी के मुखारविन्द के सम्बन्ध में इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जब योगमाया के एक कण में इतना नूर है कि उसके सामने करोड़ों सूर्य छिप जाते हैं, तो अक्षर ब्रह्म और उनसे परे अक्षरातीत के मुखारविन्द की शोभा कैसी होगी। इस सम्बन्ध में कलश हिन्दुस्तानी २०/१८,२०,२२ तथा सागर १/२६, २७ देखने योग्य हैं-

एक जरा तिन जिमी का, ताके तेज आगे सूर कोट।
 सो सूरज दृष्टें न आवहीं, इन जिमी जरे की ओट॥
 बरनन करुं एक पात की, सो भी इन जुबां कही न जाए।
 कोट ससी जो सूर कहूँ, तो एक पात तले ढंपाए॥
 किरना वन जिमीय की, सामी किरना ससि प्रकास।
 नूर हम पे खेले नूर में, प्रेमें पिया सों रास॥

कलश हि. २०/१८,२०,२२

ए उज्जल रंग अंग अर्स का, माहें गेहेरी लालक ले।

मुख चौक छबि इनकी, किन विध कहूं मैं ए॥३७॥

परमधाम में विराजमान श्री राज जी के मुखारविन्द का रंग उज्जवलता (सफेदी) में गहरी लालिमा लिये हुए है। उनके मुख की आकृति इतनी सुन्दर है कि उसका वर्णन कर पाना मेरे लिये किसी प्रकार से सम्भव नहीं हो पा रहा है।

तिलक सोभित रंग कंचन, असल बन्यो सुन्दर।

चारों तरफों करकरी, सोहे लाल बिंदी अंदर॥३८॥

श्री राज जी के ललाट (माथे) पर सोने के रंग से बना हुआ बहुत ही सुन्दर तिलक शोभायमान हो रहा है। उसके चारों ओर छोटी-छोटी चमकती हुई बिन्दियाँ हैं। तिलक के अन्दर लाल रंग की सुन्दर बिन्दी लगी हुई है।

लवने केस कानों पर, तिन केसों का जो नूर।

आसमान जिमी के बीच में, जोत भराए रही जहूर॥३९॥

श्री राज जी के सुन्दर घुँघराले बाल कान के आभूषणों तक आये हुए हैं। उन बालों से निकलने वाली नूरमयी ज्योति धरती और आकाश के बीच में चारों ओर फैल रही है।

नैनन की मैं क्यों कहूँ, नूर रंग भरे तारे।

सेत माहें लालक लिए, सोहें टेढ़े अनियारे॥४०॥

अनन्त सौन्दर्य से भरे हुए उनके नेत्रों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। दोनों नेत्रों के तारे नूर से भरपूर हैं। दोनों नेत्रों की सफेदी में लालिमा मिली हुई है। नेत्रों की आकृति तिरछी है और उनके कोने नुकीले हैं।

भावार्थ— आँखों की गोल पुतली के अन्दर एक और

छोटी सी गोलाई होती है, जिसे तारा कहते हैं। आँखों के सफेद परदे पर लालिमा छाये रहना प्रेम की प्रगाढ़ता का द्योतक (परिचारक) है। तिरछे और नुकीले नेत्र सौन्दर्य का प्रतिमान माने जाते हैं।

रूह के नैनों से देखिए, अति मीठे लगें प्यारे।

कई रंग रस छबि इनमें, निमख न होंए न्यारे॥४१॥

हे साथ जी! यदि आप अपने आत्मिक नेत्रों से श्री राज जी के नेत्रों को देखें, तो ये बहुत ही प्यारे लगते हैं और माधुर्यता के सागर के समान दिखायी देते हैं। इनमें आठों सागरों की छवि दिखायी पड़ती है, जिनमें उनका स्वरूप और आनन्द झलकता रहता है। इनको देखने पर एक क्षण भी अलग होने की इच्छा नहीं होती।

भावार्थ— दिल के भाव आँखों में दृष्टिगोचर होते हैं। जब

श्री राज जी के दिल में आठों सागर समाये हुए हैं, तो उनकी झलक अवश्य ही नेत्रों से प्रकट होगी। इस चौपाई के तीसरे चरण का यही भाव है।

नासिका की मैं क्यों कहूं, कोई इनका निमूना नाहें॥

जिन देख्या सो जानहीं, वाके चुभ रहे हैंडे माहें॥४२॥

मैं श्री राज जी की नासिका की शोभा का वर्णन कैसे करूँ। इसकी सुन्दरता के वर्णन में किसी की भी उपमा नहीं दी जा सकती। जिन्होंने धाम धनी की नासिका के सौन्दर्य को देखा है, वे ही उसके आनन्द को जानते हैं। नासिका की अलौकिक छवि उनके धाम हृदय में हमेशा ही बनी रहती है (चुभ रही होती है)।

कानन मोती लटकत, उज्जल जोत प्रकास।

बीच लाल की लालक, जोत मावत नहीं आकास॥४३॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत के दोनों कानों में मोती लटक रहे हैं, जिनकी उज्जवल (श्वेत) ज्योति का प्रकाश चारों ओर फैल रहा है। उन मोतियों के बीच में माणिक जड़े हुए हैं, जिनकी लालिमा भरी ज्योति आकाश में नहीं समाती अर्थात् चारों ओर फैल रही है।

लाल बाला अर्स धात का, करड़े बने चार चार।

इन मोती और लाल की, रूह देख देख होए करार॥४४॥

दोनों कानों में नूरमयी तत्व के लाल रंग के दो बाले शोभा दे रहे हैं। इनमें चार-चार ऐंठ (मरोड़) आयी हैं। जब इनमें लटकते हुए मोतियों और माणिक की शोभा को आत्मा देखती है, तो उसे बहुत अधिक आनन्द आता है।

गौर रंग अति गालों के, माहें गेहेरी लालक लिए।

दोऊ भ्रकुटी बीच नासिका, ऊपर सुन्दर तिलक दिए॥४५॥

प्रियतम के दोनों गालों का रंग बहुत अधिक गोरा है। उसमें गहरी लालिमा छिपी हुई है। दोनों भौहों के बीच में नासिका की सुन्दर शोभा हो रही है। माथे (ललाट) पर अति सुन्दर तिलक शोभायमान हो रहा है।

भावार्थ— युगल स्वरूप की शोभा का वर्णन भारतीय संस्कृति की मान्यताओं के अनुसार किया गया है, क्योंकि ब्रह्मसृष्टियों का अवतरण एकमात्र भारतवर्ष में ही हुआ है। यद्यपि कतेब परम्परा में तिलक, साड़ी आदि का वर्णन नहीं है, किन्तु युगल स्वरूप को जो जिस रूप में प्रेमपूर्वक चाहता है, उसे उसी रूप में दीदार मिलता है।

गौर हरवटी अति सुन्दर, बीच लांक ऊपर अधूर।

बल बल जाऊं मीठे मुख की, मिल दोऊ करें मजकूर॥४६॥

श्री राज जी की तुड्डी गोरे रंग की है और बहुत ही सुन्दर है। तुड्डी और होंठ के बीच का गहरा स्थान भी बहुत सुन्दर है। जब श्री राजश्यामा जी आपस में प्रेम भरी बातें करते हैं, तो उनके माधुर्यता भरे मुख की शोभा पर मैं बारम्बार बलिहारी जाती हूँ (समर्पित होती हूँ)।

कटि कोमल अति पेट पांसली, पीठ गौर सोभे सरस।

गरदन केस पेच पाग के, छबि क्यों कहूं अंग अर्स॥४७॥

श्री राज जी की कमर, पसली (कन्धे के नीचे का भाग), और पेट बहुत ही कोमल हैं। गोरे रंग की पीठ बहुत ही सुन्दर सुशोभित हो रही है। गरदन तक आये हुए घुँघराले बालों तथा सिर के ऊपर बँधी हुई पाग के लपेटों

की सुन्दरता अलौकिक है। समझ में नहीं आता कि श्री राज जी के इन नूरी अंगों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

द्रष्टव्य— कन्धे से नीचे आयी मेरुदण्ड से छाती की ओर आयी घुमावदार हड्डियों वाला भाग पसली कहलाता है।

कोमल अंग कंठ हैड़ा, खभे मछे गौर लाल।

कोनी कांडे कोमल देखत, आसिक बदलत हाल॥४८॥

मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत का गला और हृदय (छाती) अंग बहुत कोमल हैं। दोनों कन्धों तथा दोनों बाजुओं का रंग लालिमा लिये हुए अत्यधिक गौर वर्ण का है। कोहनी और कलाइयों की कोमलता को देखकर आशिक आत्मा की स्थिति बदल जाती है।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण का भाव यह है कि

जब आत्मा धनी के इन कोमल अंगों की शोभा को देखती है, तो उस शोभा में डूबकर स्वयं को भुला देती है। उस समय उसके अन्दर केवल "तू" का ही भाव रह जाता है।

लीकें सोभित हथेलियां, रंग उज्जल कहूं के गुलाल।

रूह थें पलक न छूटहीं, अंग कोमल नूरजमाल॥४९॥

दोनों हथेलियों में पतली रेखायें सुशोभित हो रही हैं। हथेलियों का रंग सफेदी में गहरी लालिमा लिये हुए है। यह मिश्रित रंग इस प्रकार ओत-प्रोत है कि यह निर्णय करना कठिन है कि उसका रंग क्या कहा जाये— उज्जवल या लाल? प्रियतम के ये कोमल अंग एक पल के लिये भी आत्मा की दृष्टि से अलग नहीं हो सकते।

नरम अंगुरियां पतली, पोहोंचे सलूकी जुदे भाए।

रंग सलूकी पोहोंचे हथेलियां, किन मुख कहूं चित्त ल्याए॥५०॥

अँगुलियां पतली और बहुत ही कोमल हैं। पँजों की शोभा अलग ही दिखायी दे रही है। दोनों पँजों और हथेलियों के रंगों की सुन्दरता का मैं किस मुख से वर्णन करूँ जो मेरे चित्त में बस गये हैं, अर्थात् उनकी सुन्दरता का वर्णन करना सम्भव नहीं है।

नैन श्रवन मुख नासिका, मुख छबि अति सुन्दर।

ए देखत हीं आसिक अंगों, चुभ रहत हैड़े अन्दर॥५१॥

श्री राज जी के दोनों नेत्रों, कानों, नासिका, तथा मुख की छवि बहुत ही सुन्दर है। जब इस अलौकिक शोभा को आत्मा (आशिक) देखती है, तो उसके धाम हृदय में यह अंकित हो जाती है।

भावार्थ- हृदय में शोभा चुभने का अर्थ है, अखण्ड हो जाना या अंकित हो जाना।

बीड़ी सोभित मुख मोरत, लेत तम्बोल रंग लाल।

ए बरनन रूह तोलों करे, जोलों लगे न हैड़े भाल॥५२॥

श्री राज जी जब अपने मुख में पानों की बीड़ी लेकर चबाते हैं, तो पान सहित होंठों एवं मुख का आन्तरिक भाग लाल हो जाता है। इस अलौकिक शोभा का वर्णन आत्मा तभी तक कर पा रही है, जब तक उसके हृदय में इस शोभा की चोट नहीं लगती।

भावार्थ- पान की लालिमा से जब होंठों की लालिमा और बढ़ जाती है, तो मुखारविन्द की शोभा में बहुत वृद्धि हो जाती है। यद्यपि परमधाम के वहदत में "वृद्धि" जैसे शब्द का प्रयोग उचित नहीं है, किन्तु शोभा के सन्दर्भ में

यहाँ के भावों से ऐसा कहा गया है। हृदय में चोट लगने का तात्पर्य है, उस शोभा में इतना डूब जाना कि वर्णन करने की दृष्टि से बुद्धि स्तब्ध हो जाये और मुख सिल जाये (बन्द हो जाये)।

जानों के जोवन नौतन, अजूं चढ़ता है रंग रस।

ऐसा कायम हमेसा, इन विध अंग अर्स॥५३॥

धाम धनी का स्वरूप ऐसा है, जैसे नवयौवन की बहार आयी हो और जिसके आनन्द और उल्लास (मस्ती) में पल-पल की वृद्धि हो रही हो। श्री राज जी के नूरमयी अंगों में इस प्रकार की शोभा हमेशा ही बनी रहती है।

सेत जामा अंग लग रह्या, मिहीं चूड़ी बनी दोऊ बांहें।

दावन क्यों बरनन करूँ, इन अंग की जुबां॥५४॥

प्राण-प्रियतम ने श्वेत रंग का जामा धारण कर रखा है, जिसकी दोनों बाहों में महीन चुन्नटें बनी हुई हैं। इस माया की जबान (वाणी) से दावन की शोभा का वर्णन करना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- "जामा" शब्द फारसी भाषा का है, जिसका अर्थ वस्त्र है। यह एक प्रकार का पहनावा है जिसकी लम्बाई पैरों के टखने तक रहती है, जिसे प्रायः मध्यकालीन युग में राज दरबार में धारण किया जाता था। इसके नीचे कमर के हिस्से (दावन) में चुन्नटें पड़ी होती हैं तथा यह भाग लहंगे के समान घेरदार होता है।

दावन (दामन) शब्द भी फारसी का है। यह जामे का कमर के नीचे वाला भाग होता है।

बेल नकस दोऊ बगलों, चीन झलकत मोहोरी जड़ाव।

नकस बेल गिरबान बन्ध, पीछे अतंत बन्यो कटाव॥५५॥

आगे के दोनों ओर लताओं (बेलों) के चित्र अंकित हैं। जामे की बाँह की कलाई झलकार कर रही है। जामे की बाँहों की चुन्नटों में नग जड़े हुए हैं। गले के पास (गिरबान बन्ध में) सुन्दर-सुन्दर लताओं के चित्र अंकित हैं। पीठ की तरफ भी अनन्त प्रकार की चित्रकारी की गयी है।

भावार्थ- चीन फारसी भाषा का शब्द है। जामे की बाँह की कलाई को "चीन" कहते हैं और बाँहों की चुन्नटों वाले भाग को "मोहोरी" कहा जाता है। इसी प्रकार कमर के चारों ओर इजार के गोल घेरे को भी चीन कहते हैं। यही बात मोहरी पर भी लागू होती है। वर्तमान समय में जहाँ बटन लगाये जाते हैं, उसे "गिरबान बन्ध" कहते हैं। पहले बटन की जगह बाँधने के लिये छोटी-छोटी डोरियों

का प्रयोग होता था, जो जामे में जुड़ी रहती थीं।

ए देत देखाई रंग जवेर, नकस कटाव बेली जर।

लगत नाही हाथ को, रंग नंग धागा बराबर॥५६॥

ये जो जवाहरातों के तरह-तरह के रंग तथा सोने के तारों से बने हुए अनेक प्रकार की लताओं के चित्र दिखायी देते हैं, हाथों से छूने का प्रयास करने पर कोई भी रंग, नग, या धागा हाथ में नहीं आता।

इजार रंग जो केसरी, झांई जामें में लेत।

दावन जड़ाव अति जगमगे, रंग सोभे केसरी पर सेत॥५७॥

श्री राज जी के पैरों में केशरिया रंग का चूड़ीदार पायजामा (इजार) है। इसका प्रतिबिम्ब श्वेत रंग के जामे में दिखायी पड़ रहा है। केशरिया रंग की इजार के ऊपरी

हिस्से पर जामे का निचला हिस्सा "दावन" आया हुआ है, जो नगों से जड़ा हुआ है और बहुत अधिक जगमगा रहा है।

नीले पीले के बीच में, झाँई लेत रंग दोए।

सो पटुका कमर बन्या, रंग कह्या सुन्दरबाई सोए॥५८॥

नीले और पीले रंग को मिश्रित करने पर हरा रंग हो जाता है। धाम धनी की कमर में इस प्रकार के हरे रंग का (तोते के पँख जैसा) "पटुका" बँधा हुआ है। इसमें कभी नीले रंग का प्रतिबिम्ब झलकता है, तो कभी पीले रंग का। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (श्यामा जी) ने भी पटुके का यही रंग बताया था।

जरी पटुका कटाव कई, कई नकस बेल किनार।

पाच पांने हीरे पोखरे, कई रंग नंग झलकार॥५९॥

पटुके की किनारे पर सोने के तारों से अनेक प्रकार की लताओं के चित्र बने हुए हैं। इनमें पाच, पन्ना, हीरा, और पुखराज आदि के नग जड़े हुए हैं, जिनसे अनेक रंगों की आभा झलकती रहती है।

मनी मानिक लसनियां नीलवी, अतंत उद्धोतकार।

फूल पात बेल नकस, ए जोत न छेड़ों सुमार॥६०॥

पटुके में मणि, माणिक, लहसुनिया, और नीलम आदि अनेक प्रकार के जवाहरात जड़े हुए हैं, जिनसे होने वाला उजाला अनन्त है। पटुके की किनार पर जो लताओं, पत्तियों, तथा फूलों के चित्र अंकित हैं, उनसे निकलने वाली ज्योति की कोई सीमा ही नहीं है।

हेम वस्तर नंग नूर में, नरमाई अतंत।

जो कोई चीज अर्स की, खुसबोए अति बेहेकत॥६१॥

परमधाम में सोना आदि धातुएँ, वस्त्र, या नग आदि जो भी वस्तुएँ हैं, सभी नूरमयी हैं। उनकी कोमलता भी अनन्त है तथा उनसे बहुत अधिक सुगन्धि निकलती है।

एक हार मोती एक नीलवी, और हार हीरों का एक।

एक हार लाल मानिक का, एक लसनियां विसेक॥६२॥

धाम धनी के गले में पाँच हार शोभा देते हैं। एक हार मोती का है और एक नीलम का है। जगमगाते हुए हीरों का भी एक हार है, तो लाल आभा वाले मानिक का भी एक हार है। पाँचवां हार विशेष है, जो लहसुनियाँ का है।

इन हारों बीच दुगदुगी, नूर नंग कह्यो न जाए।

जोत अम्बर लों उठ के, अवकास रह्यो भराए॥६३॥

इन हारों के बीच में दुगदुगी लगी हुई है, जिसमें जड़े हुए नगों में इतना नूर है कि इसका वर्णन ही नहीं हो सकता। नगों से निकलने वाली ज्योति आकाश में बहुत ऊँचाई तक उठकर चारों ओर फैल रही है।

इन पांचों हार के फुमक, तिन फुमक पांचों रंग।

रंग पांचों सोभें जुदे जुदे, जरी सोभित धागे संग॥६४॥

इन पाँच हारों में अलग-अलग पाँच रंगों के फुम्मक झूल रहे हैं। सोने के तारों वाले धागे से ये फुम्मक जड़े हुए हैं।

ए पांच रंग एक कंचन, ताके बने जो बाजूबन्ध।

इन जुबां सोभा क्यों कहूं, झूलें फुन्दन भली सनन्ध॥६५॥

कञ्चन के बने हुए बाजूबन्ध हैं, जिनमें पाँच रंग के नग जड़े हुए हैं। इन दोनों बाजूबन्ध में फुन्दन लटके हुए हैं, जो बहुत अच्छी तरह से झूल रहे हैं। मैं इस जिह्वा से बाजूबन्धों की शोभा का वर्णन कैसे करूँ।

द्रष्टव्य— फुन्दन फूल की आकृति का छोटा सा गुच्छा होता है, जो झालर या धागे से लटकता रहता है। इसे झब्बा भी कहते हैं।

दोए पोहोंची दोए जिनस की, मनी मानिक मोती पुखराज।

हेम हीरा लसनियां नीलवी, दोऊ पोहोंची रही बिराज॥६६॥

धाम धनी अपने दोनों पोहोंचो (पञ्जों) में दो-दो पोहोंची धारण किये हुए हैं। इन दोनों पोहोंचियों में मणि, माणिक,

मोती, पुखराज, हीरा, लहसुनिया, और नीलम के नग सोने में जड़े हुए हैं।

भावार्थ- कलाई से आगे एवं हथेली के विपरीत का ऊपरी भाग पँजा या पोहोंचा कहलाता है। श्री राज जी के प्रत्येक हाथ में दो-दो पोहोंची हैं- एक छोटी तथा दूसरी बड़ी। छोटी पोहोंची को आजकल कड़ा (ब्रेसलेट, bracelet) भी कहा जाता है। बड़ी पोहोंची कुछ जगहों पर "पँचांगुला" के नाम से भी जानी जाती है।

एक पोहोंची एक दुगदुगी, और सात सात दूजी को।

सो सातों जिनस जुदी जुदी, आवत ना अकल मों॥६७॥

एक पोहोंची में एक दुगदुगी है तथा दूसरी पोहोंची में सात-सात दुगदुगी। ये सातों दुगदुगियाँ अलग-अलग नगों की हैं। इनकी अलौकिक शोभा बुद्धि में नहीं आती।

पाच पांने हीरे पोखरे, मुंदरी अंगुरियों सात।

नीलवी मोती लसनियां, साज सोभित हेम धात॥६८॥

श्री राज जी की सात अँगुलियों में सात मुद्रिकायें (मुँदरियां) हैं। इन स्वर्णमयी मुँदरियों में पाच , पन्ना, हीरा, पुखराज, नीलम, मोती, और लहसुनिया के जड़े हुए नग शोभायमान हो रहे हैं।

द्रष्टव्य— मुँदरी (मुद्रिका) और अँगूठी में सूक्ष्म अन्तर होता है। अँगूठे में जो धारण की जाती है, वह अँगूठी कहलाती है, और शेष अन्य अँगुलियों में जो पहनी जाती है, वह मुद्रिका (मुँदरी) कहलाती है।

एक अँगूठी आठमी, सो सोभा लेत सब पर।

सो ए एक मानिक की, जुड़ बैठी अँगूठे भर॥६९॥

आठवीं अँगूठी की शोभा सबसे अधिक है। वह विशुद्ध

माणिक की है और अँगूठे में धारण की गयी है।

भावार्थ- मुद्रिका (मुँदरी) और अँगूठी में भेद केवल अँगुली की दृष्टि से ही होता है, रचना की दृष्टि से नहीं। इस चौपाई के पहले चरण में "एक अँगूठी आठमी" कहने का यही आशय है।

इन मुख नख जोत क्यों कहूं, कई कोट सूरज ढंपाए।

ए सुखकारी तेज सीतल, ए सिफत न कही जाए॥७०॥

अपने इस मुख से धाम धनी के नखों की ज्योति का मैं कैसे वर्णन करूँ। उनकी ज्योति के सामने करोड़ों सूर्य छिप जाते हैं। इन नखों का तेज जड़ सूर्य के तेज की तरह दाहकारक नहीं है, बल्कि शीतल और आनन्ददायक है। इसकी महिमा शब्दों में नहीं कही जा सकती।

अजब रंग आसमानी का, जुड़ी जामें मिहीं चादर।

ए भूखन बेल कटाव जामें, सब आवत माहें नजर॥७१॥

जामे के ऊपर आसमानी रंग की बहुत ही अद्भुत और पतली चादर आयी है। यह चादर इतनी बारीक है कि जामे के ऊपर बनी हुई लताओं के चित्रों और आभूषणों का दृश्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

द्रष्टव्य— चादर सम्पूर्ण जामे के ऊपर नहीं आयी है बल्कि कन्धे के ऊपर आयी है, क्योंकि यह ओढ़ी जाती है। इसे पिछौरी भी कहते हैं।

लाल नीले पीले रंग कई, सोभें छेड़ों बीच किनार।

जामें चादर मिल रही, लेहेरी आवत किरनें अपार॥७२॥

चादर के (दोनों) पल्लों की किनार पर लाल, पीले, और नीले आदि कई प्रकार के रंग शोभा दे रहे हैं, जिनसे

अनन्त किरणों की लहरें सी उठती हुई प्रतीत हो रही हैं।
चादर (पिछौरी) की शोभा जामे के ऊपर आयी हुई है।

गेहेरा रंग जो केसरी, लेत दावन झाँई इजार।

सेत केसर दोऊ रंग के, सोभा होत सुखकार॥७३॥

इजार का रंग गहरा केशरिया है, जिसका मोहक प्रतिबिम्ब जामे के घेरे में दिखायी देता है। जामे के श्वेत रंग तथा इजार की केशरिया रंग का संगम (मिलन) बहुत ही सुन्दर और आनन्ददायी दृश्य उपस्थित करता है।

नेफे मोहोरी चीन के, बेल बनी मोती नंग।

लाल नीली पीली चूनियां, सोभित कंचन संग॥७४॥

कमर के भाग में आयी हुई इजार के नेफे में चुन्नटें बनी हैं, जिसमें मोतियों के नगों से लताओं के चित्र बने हैं।

भावार्थ- "नेफा" शब्द फारसी भाषा का है। कमर पर आयी हुई इजार का वह भाग जिसमें बाँधने के लिये डोरी डाली जाती है, नेफा कहलाता है। सोने के तारों से लाल, पीले, और नीले रंग के छोटे-छोटे जरीदार बूटे शोभा दे रहे हैं।

कई रंग इजार बंध में, अनेक विध के नंग।

सारी उमर बरनन करूँ, तो होए ना सुपन के अंग॥७५॥

इजार बन्द में अनेक प्रकार के रंग हैं और अनेक प्रकार के नग जड़े हुए हैं। इसकी शोभा का वर्णन यदि मैं इस स्वप्न के तन से करूँ, तो सारी उम्र में भी पूर्ण वर्णन होना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- जिस प्रकार जामे में गले के पास "गिरबान" होता है, उसी प्रकार इजार को जिस डोरी से बाँधा जाता

है, उसे "इजार बंध" कहते हैं।

एक एक नंग नाम लेत हों, रंग रंग में रंग अनेक।

एकै इजार बंध में, क्यों कहूं रंग नंग विवेक॥७६॥

यद्यपि मैंने रंग सहित एक-एक नंग का नाम लेकर वर्णन किया है, किन्तु एक ही इजारबन्ध के एक-एक रंग में अनेक रंग छिपे हुए हैं। ऐसी अवस्था में यह कैसे सम्भव है कि नगों का वास्तविक रंग सहित वर्णन किया जा सके।

याकी रंग सलूकी क्यों कहूं, बका धनी के चरन।

लांक तली रंग सोभित, ग्रहूं रूह के अन्तस्करन॥७७॥

धनी के अखण्ड चरणों के मनोहर सौन्दर्य का वर्णन मैं कैसे करूँ। चरणों की लाँक (गहराई) की सुन्दरता बहुत

अधिक सुशोभित हो रही है, जिसे मैं अपनी आत्मा के अन्तःकरण में ग्रहण कर रही हूँ।

देखूँ रंग चरन अंगूठे, और सलूकी कहूँ क्यों कर।

नख उतरते छोटे छोटे, सोभा लेत अंगुरियों पर॥७८॥

श्री राज जी के चरणों के अँगूठों की शोभा-सुन्दरता को देखकर भी उनका वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ। चरणों के नख अँगुलियों पर सुशोभित हो रहे हैं और अँगूठे से लेकर सबसे छोटी अँगुली तक क्रमशः छोटे होते गये हैं।

पोहोंचे सोभित रंग सुन्दर, टांकन घूँटी काड़े कोमल।

लांक एड़ी पीड़ी पकड़, बेर बेर जाऊँ बल बल॥७९॥

दोनों चरणों के पँजे (पोहोंचे) बहुत ही सुन्दर रंग में शोभा दे रहे हैं। टखने, घूँटी, और कड़े बहुत सुन्दर तथा

कोमल हैं। एड़ियों की लाँक (गहराई) तथा पिण्डलियों को पकड़कर मैं बारम्बार बलिहारी जाती हूँ (न्योछावर होती हूँ)।

ए चरन नख अति सोभित, जानो तेज पुंज भर पूर।

लेहेरें लगेँ आकास को, नेहेरें चलत तेज नूर॥८०॥

चरणों के नाखून बहुत ही सुन्दर सुशोभित हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ये बहुत बड़े तेज पुञ्ज (भण्डार) हैं। इनसे उठने वाली लहरें आकाश में छायी रहती हैं, जो तेजोमयी नूर की चलती हुई नहरों के समान प्रतीत होती हैं।

अब जो भूखन चरन के, हेम झांझर घूंघर कड़ी।

अनेक रंग नंग झलके, जानों के जवेर जड़ी॥८१॥

अब चरणों के जो आभूषण हैं, वे हैं— झांझरी, घूंघरी, और कड़ी। ये सोने के बने हुए हैं और इनमें अनेक प्रकार के रंगों के नग झलकार करते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे ये जवाहरातों से जड़े गये हैं।

जड़ी न घड़ी समारी किने, ए तो कायम सदा असल।

नई न पुरानी अर्स में, इत होत न चल विचल॥८२॥

सच तो यह है कि इन आभूषणों में जवाहरातों को न तो किसी ने जड़ा है और न ही बनाया है। किसी ने इनकी सुन्दरता को सँवारा भी नहीं है। ये तो हमेशा से ही अपने मूल रूप में अखण्ड हैं। परमधाम में कोई वस्तु न तो कभी नई होती है और न कभी पुरानी होती है। अस्त-व्यस्त होने की भी प्रक्रिया नहीं होती।

भावार्थ— परमधाम के एक-एक कण में अक्षरातीत का

ही नूरमयी स्वरूप क्रीड़ा कर रहा है, अर्थात् प्रत्येक पदार्थ ब्रह्मरूप है। ऐसी स्थिति में वहाँ किसी भी पदार्थ के उत्पन्न होने या नष्ट होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जरी जवेर रंग रेसम, नकस बेल फूल पात।

ए सिनगार सोभा कही इन जुबां, पर सब्द न इत समात॥८३॥

परमधाम एवं धाम धनी की शोभा-श्रृंगार का वर्णन करने में मैंने यहाँ के शब्दों के अनुसार ही सोने के तारों, जवाहरातों, अनेक प्रकार के रंगों, रेशम, अनेक प्रकार की लताओं, पत्तियों, और फूलों की शोभा का वर्णन किया है, किन्तु इन शब्दों से वहाँ की शोभा का यथार्थ (वास्तविक) वर्णन करना कदापि सम्भव नहीं है।

अब जो वस्तर भूखन की, क्यों कर होए बरनन।

इत अकल ना पोहोंचत, और ठौर नहीं बोलन॥८४॥

ऐसी स्थिति में श्री राज जी के वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है। वहाँ पर न तो यहाँ की बुद्धि पहुँच पा रही है और न ही कुछ कहने का सामर्थ्य रह सका है।

भावार्थ- "बोलने का ठिकाना न रहना" एक प्रकार का भाषायी सौन्दर्य है, जिसका अभिप्राय होता है- कहने का सामर्थ्य न रह जाना।

ए भूखन अर्स जवेर के, हक सूरत के अंग।

कहा कहे रूह इन जुबां, रंग रेसम सोब्रन नंग॥८५॥

परमधाम के जिन आभूषणों और जवाहरातों का वर्णन किया गया है, वस्तुतः वे धाम धनी के अंगों की ही शोभा

रूप हैं अर्थात् उनके ही स्वरूप हैं। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि मेरी आत्मा यहाँ की जिह्वा से परमधाम के रंगों, नगों, स्वर्ण, और रेशम की नूरमयी शोभा का वास्तविक वर्णन कर सके।

आसिक इन चरन की, अर्स मेला रूहन।

ए खिलवत खाना गैब का, जिन इत किया रोसन॥८६॥

ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के चरणों की आशिक हैं और वे परमधाम में मूल मिलावा में धनी के सम्मुख इकट्ठा होकर बैठी हैं। परमधाम के मूल मिलावा का ज्ञान इस सृष्टि से पहले किसी को भी नहीं था। ब्रह्मवाणी के द्वारा ही इसका ज्ञान प्रकट हो सका है।

चरन तली ना छूटत, रंग लाल लिए उज्जल।

ताए क्यों कहिए आसिक, जो इतथें जाए चल॥८७॥

श्री राज जी के चरणों के नीचे का भाग (तली) उज्जवलता में गहरी लालिमा लिये हुए है। आत्माओं की नजर वहाँ से हटती ही नहीं है। जिसकी दृष्टि धनी के चरणों की लालिमा के सौन्दर्य से हटकर कहीं और चली जाये, उसे आशिक कहलाने का कोई अधिकार ही नहीं है।

पांउं तले पड़ी रहे, याको इतहीं खान पान।

एही दीदार दोस्ती कायम, जो होए अरवा अर्स सुभान॥८८॥

जो अक्षरातीत की अर्धांगिनी ब्रह्मसृष्टि है, उसकी सच्ची पहचान यही है कि वह प्रियतम अक्षरातीत के चरणों की तली के सौन्दर्य में खोई रहती है। उसका दीदार ही

उनके लिये भोजन करना और जल पीना है। चरणों की छवि के दर्शन से मिलने वाला अखण्ड आनन्द ही धनी से इनके अखण्ड प्रेम का परिचय देता है।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "दोस्ती" शब्द का भाव प्रेम से है। यहाँ सांसारिक दोस्ती का भाव नहीं समझना चाहिए।

इतहीं जगात इत जारत, इत बंदगी परहेजी जान।

और आसिक न रखे या बिना, इतहीं होवे कुरबान॥८९॥

संसार से ध्यान हटाकर धनी के मनोहर चरणों की शोभा में डूबे रहना ही ब्रह्मसृष्टियों के लिये दान करना (जकात देना) और तीर्थ यात्रा (जियारत) करना है। भक्ति (बन्दगी) और इन्द्रियों का संयमन (परहेज) भी प्रियतम के चरणों का ध्यान ही है। श्री राज जी के प्रेम में

डूबी रहने वाली उनकी अँगनाएं उनके चरणों के प्रेम के अतिरिक्त संसार की अन्य किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं करतीं। वे धनी के चरणों में ही अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती हैं।

भावार्थ— संसार के जीव जहाँ कर्मकाण्ड और उपासना (शरियत तथा तरीकत) को ही सर्वस्व मानकर उसमें उलझे रहते हैं तथा निराकार से परे नहीं हो पाते, वहीं ब्रह्मसृष्टि हृद-बेहृद से परे परमधाम में विराजमान धनी के नूरमयी चरणों की शोभा में डूबी रहती है। यह हकीकत और मारिफत की राह है। इस मार्ग पर चलने वालों के लिये शरियत-तरीकत की कोई आवश्यकता नहीं होती।

खाना दीदार इनका, या सों जीवे लेवे स्वांस।

दोस्ती इन सरूप की, तिनसे मिटत प्यास॥९०॥

अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत का दीदार करना ही इनका भोजन करना है। इनका जीवित रहना या साँस लेना भी धनी के दीदार पर ही निर्भर करता है, अर्थात् प्रियतम के दर्शन बिना ये शरीर को निरर्थक समझती हैं और उससे किसी भी प्रकार का मोह नहीं रखतीं। श्री राज के नख से शिख तक के स्वरूप से इनका अखण्ड प्रेम होता है। इसी से इनके हृदय की प्यास (प्रेममयी) बुझा करती है।

हक खिलवत जाहेर करी, इत सिजदा हैयात।

इतहीं इमाम इमामत, इतहीं महंमद सिफात॥९१॥

अक्षरातीत श्री राज जी ने श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर ब्रह्मवाणी द्वारा मूल मिलावा की सम्पूर्ण शोभा का वर्णन कर दिया। इसके पहले यह ज्ञान संसार में नहीं था। यहाँ पर किया हुआ प्रणाम (सिज्दा)

अखण्ड होता है, अर्थात् युगल स्वरूप सहित मूल मिलावा की शोभा को दिल में बसाना ही वास्तविक प्रेम लक्षणा भक्ति है और इसका फल अखण्ड होता है। आखरूल इमाम मुहम्मद महदी श्री प्राणनाथ जी का निर्देश भी इसी मूल मिलावा के ध्यान के लिये है तथा मुहम्मद साहिब (सल्ल.) ने भी अर्श (मूल मिलावा) के सिज्दे की महिमा गायी है।

भावार्थ- "इमामत" का अर्थ नेतृत्व करना होता है। ब्रह्मसृष्टियों को जाग्रत करने के लिये श्री प्राणनाथ जी ने मूल मिलावा में ध्यान करने के लिये कहा है (निर्देश दिया है)। इसे ही इमाम की इमामत कहते हैं। श्रीमुखवाणी का यह कथन "अर्स बका पर सिजदा, करावसी इमाम" इसी ओर संकेत करता है।

मुहम्मद साहिब (सल्ल.) ने कुरआन तथा हदीसों में

एकमात्र अल्लाह तआला की बन्दगी का निर्देश दिया है, जो अर्श में विराजमान हैं। शरियत की नमाज जिस मस्जिद में पढ़ी जाती है, उसमें परमधाम के रंगमहल के मुख्य द्वार की मेहराबों की आकृति बनायी गयी होती है, जो अर्श पर सिज्दा करने का संकेत है।

कोई खाली न गया इन खिलवतें, कछू लिया हक का भेद।

सो कहूं जाए ना सके, पड़या इस्क के कैद॥९२॥

मूल मिलावा का ध्यान कभी भी निष्फल नहीं जाता। उस पर धनी की मेहर अवश्य होती है। जिसने भी श्री राज जी की कुछ शोभा अपने धाम हृदय में बसा ली, वह कभी भी धनी को छोड़कर अन्यत्र (माया या देव पूजन में) नहीं जा सकता, क्योंकि वह तो अक्षरातीत के प्रेम में कैद हो गया होता है।

भावार्थ- श्री राज जी का भेद लेने का तात्पर्य होता है, उनकी शोभा को दिल में बसा लेना। यहाँ दिल के भेद लेने का प्रसंग नहीं है। दिल के भेद केवल मारिफत की अवस्था में ही लिये जा सकते हैं। युगल स्वरूप का ध्यान ही माया से बचने एवं अपने अन्दर इश्क (प्रेम) पैदा करने का एकमात्र साधन है।

आसिक पकड़े जो दावन, तो छूटे नहीं क्योंकर।

देखत देखत चीन लगे, तोलों जात निकस उमर॥९३॥

धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली आत्मा जब जामे के दावन को देखती है, तो उसे देखती ही रह जाती है। उसे वह किसी भी तरह छोड़ नहीं पाती। यदि उसकी नजर चुन्नटों में लग जाती है, तो वह उसमें इतनी खो जाती है कि यदि सारी उम्र देखती रहे तो भी उससे नजर हटा

पाने की उसमें इच्छा नहीं होती।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का भाव सम्पूर्ण उम्र देखने से है। यहाँ शरीर छूटने का प्रसंग नहीं है, बल्कि यह कहा गया है कि यदि सारी उम्र भी उस शोभा को देखने में लगा दी जाये तो उससे हटने की इच्छा नहीं होगी। यद्यपि व्यवहारिक रूप में ऐसा सम्भव नहीं है कि कोई सम्पूर्ण उम्र बिना खाये, पीये, और सोये केवल दीदार में ही लगा रहे, क्योंकि इस पञ्चभौतिक शरीर की एक सीमा है।

बोहोत अटकाव है आसिक, कछू सेवा भी किया चाहे।

ए तो बरनन सिनगार, सेवा उमंग रही भराए॥९४॥

एक आशिक के लिये धनी के श्रृंगार का वर्णन करने में बहुत सी बाधाएँ (अटकाव) हैं, क्योंकि शोभा से नजर

हटती नहीं और बुद्धि स्तब्ध रह जाती है। मेरे हृदय में श्री राज जी के श्रृंगार का वर्णन करके सेवा करने की बहुत अधिक उमंग है, इसलिये मेरी आत्मा बहुत अटकाव होने पर भी श्रृंगार-वर्णन के रूप में सेवा करना चाहती है।

भावार्थ- इस चौपाई में सेवा का प्रसंग धनी को रिझाने के लिये भी है और सुन्दरसाथ के लिये भी है। श्री महामति जी को श्री राज जी ने जागनी कार्य के लिये खड़ा किया है और श्री महामति जी के तन से जो श्रृंगार का अवतरण हो रहा है, उससे परोक्ष रूप में वे धाम धनी की सेवा कर रही हैं। सुन्दरसाथ इस ज्ञान से लाभ उठा रहा है, इसलिये यहाँ सुन्दरसाथ की भी सेवा मानी जायेगी। बीतक में इसी प्रकार का प्रसंग है।

जो कदी कमर अटकी, तो आसिक न छोड़े ए।

ए लांक पटुका छोड़ के, जाए न सके उर ले॥९५॥

यदि प्रेम में मग्न (सराबोर) आत्मा की नजर धनी की कमर पर टिक गयी, तो वहाँ से वह हट नहीं पाती। वह कमर की गहराई (लाँक) वाले हिस्से तथा पटुके की सुन्दरता में इतनी डूब जाती है कि उसे छोड़कर उसकी दृष्टि वक्षस्थल (छाती) तक नहीं पहुँच पाती।

जो दिल हक का देखिए, तो पूरा इस्क का पुन्ज।

क्यों छोड़े आसिक इनको, हक दिल इस्क गन्ज॥९६॥

यदि श्री राज जी के दिल को देखा जाये तो वह इश्क (प्रेम) का अनन्त भण्डार नजर आता है। धनी के जिस दिल में इश्क ही इश्क भरा है, उससे आशिक रूह (आत्मा) कैसे अलग हो सकती है।

मोमिन दिल अर्स कहया, सो अर्स हक का घर।

इस्क प्याले हक फूल के, देत भर भर अपनी नजर॥९७॥

धाम धनी का स्वरूप जहाँ विराजमान होता है, वह परमधाम (अर्श) कहलाता है और वह अर्श ब्रह्मसृष्टि का हृदय (दिल) है। प्रियतम अक्षरातीत रीझकर दिल रूपी प्याले में इश्क भर-भर कर अपनी अँगनाओं को अपनी नजरों से पिलाते हैं।

भावार्थ- काँसा एक मिश्रित धातु है जो ताँबे और टीन को मिलाकर बनायी जाती है। शुद्ध बर्तन के रूप में काँसे (फूल) का वर्णन आता है, किन्तु इसका वास्तविक आशय प्रसन्नतापूर्वक (रीझकर) या आनन्दपूर्वक पिलाने से है। वस्तुतः यह भावमूलक कथन है, द्रव्यमूलक नहीं। फूला न समाना, फूल के कुप्पा हो जाना, आदि मुहावरों का प्रयोग इसी सन्दर्भ में किया जाता है।

इस चौपाई में यह संशय होता है कि यहाँ आत्मा के दिल में विराजमान होने का प्रसंग है या परात्म के दिल में? यदि आत्मा के दिल में विराजमान होकर पिलाने का प्रसंग है तो यह कैसे सम्भव हो सकता है, क्योंकि इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है कि अपनी नजरों से पिलाते हैं?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि परमधाम में परात्म के दिल में धनी अनवरत (निरन्तर) विराजमान हैं और वहाँ अपनी नूरी नजरों से प्रेम का अमृत (रस) पिलाते ही हैं। इस मायावी खेल में भी आत्मा जब अपने दिल में धनी की शोभा को बसाती है तो उसे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह साक्षात् मूल मिलावा में बैठी है और धनी की नजरों से उसकी नजरें मिली हुई हैं। जिस शोभा को वह मूल मिलावा में देख

रही होती है, वही शोभा उसे अपने दिल में भी दिखती है। इस अवस्था में उसका दिल धनी का अर्श (परमधाम) हो जाता है और उसकी आत्मा अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर परमधाम की तरह प्रेम रस का पान करती है।

इस्क सुराही लेय के, आए बैठे दिल पर।

इस्क प्याले आसिकों, हक देत आप भर भर॥९८॥

धाम धनी इश्क की सुराही लेकर ब्रह्मसृष्टियों के दिल में विराजमान हो गये हैं और अपनी अँगनाओं (आशिकों) को इश्क के प्याले भर-भर कर दे रहे हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में जागनी-लीला का चित्रण है। आत्मा का दिल प्याला है और उसमें विराजमान होने वाली धनी की शोभा ही वह सुराही है, जिससे इश्क का

रस आत्मा के दिल में प्रवाहित होता है। परमधाम में विराजमान धनी का नूरमयी स्वरूप तो इश्क का सागर है।

जो कदी आवे मस्ती में, तो एक प्याला देवे गिराए।

सराब तहूरा ऐसा चढ़े, दिल तबहीं देवे फिराए॥९९॥

यदि कभी धाम धनी के हृदय का लाड (प्यार) छलक पड़ता है, तो आत्मा के धाम हृदय में प्रेम का प्याला भर जाता है अर्थात् प्रियतम की छवि दिल में अंकित हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि वह बेसुध हो जाती है। उसके अन्दर प्रेम का ऐसा नशा चढ़ जाता है कि उसका दिल संसार से पूर्णतया हटकर धनी की शोभा में डूब जाता है।

भावार्थ- मस्ती में आना धनी के लाड-प्यार का सूचक

है। इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "एक प्याला" का तात्पर्य है, एक बार धनी की झलक आ जाना या किसी एक अंग की शोभा का दिल में बस जाना। इस चरण में "गिराए" शब्द बेसुधी के भाव में है। जाहिरी रूप से गिरने का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है।

जाए हक सराब पिलावत, आस बांधत है सोए।

वाको अर्स सराब की, आवत है खुसबोए॥१००॥

जिसे धाम धनी अपनी प्रेम-सुधा का पान कराते हैं, उसके मन में यह आशा बनी रहती है कि युगल स्वरूप मेरे दिल में बस जायें तथा इसी तरह मुझे प्रेम का आनन्द मिलता रहे। प्रियतम अक्षरातीत की मेहर से उसकी इच्छा के अनुरूप उसे प्रेम की सुगन्धि मिलती रहती है।

आई जो कदी खुसबोए, ए जो अर्स की सराब।

इन मद के चढ़ाव से, देवे तबहीं उड़ाए ख्वाब॥१०१॥

जब कभी किसी ब्रह्मसृष्टि को परमधाम के प्रेम की सुगन्धि मिल जाती है, तो उसे इतना अधिक आनन्द प्राप्त होता है कि उसकी दृष्टि में इस स्वप्नमयी शरीर और ब्रह्माण्ड का अस्तित्व नहीं रह जाता अर्थात् वह इनके मोह से परे हो जाती है।

भावार्थ- यद्यपि इस चौपाई के चौथे चरण का बाह्य अर्थ इस स्वप्नमयी शरीर का त्याग करना है, किन्तु इसका वास्तविक आशय ज्ञान दृष्टि से छोड़ना है।

आज लगे ढांप्या रह्या, हकें मोहोर करी तिन पर।

सो अछूत प्याला फूल का, हकें खोल दिया मेहेर कर॥१०२॥

आज दिन तक परमधाम का यह प्रेम रूपी प्याला छिपा

हुआ था। धनी के आदेश से इस प्रेम रूपी प्याले का मुख बन्द था। जिस प्रेम रूपी आनन्दमयी प्याले को आज दिन तक कोई छू भी नहीं सका था, उसे धाम धनी ने अपनी कृपा से सबके लिये सुलभ कर दिया।

भावार्थ- प्रेम का मूल स्रोत अक्षरातीत है। जब संसार में तारतम ज्ञान था ही नहीं, तो किसी को भी परब्रह्म के धाम, स्वरूप, और लीला का ज्ञान कैसे हो सकता था। ऐसी स्थिति में किसी के पास परमधाम का प्रेम होना सम्भव ही नहीं था। यही कारण है कि इस चौपाई में प्रेम रूपी प्याले के मुख को बन्द तथा अनछुआ कहा गया है। यद्यपि संसार में बड़े-बड़े योगी, यति, तपस्वी, सिद्ध, और भक्त हो चुके हैं, किन्तु उनका प्रेम वैकुण्ठ, निराकार, और बेहद तक ही सीमित था। परमधाम के प्रेम की झलक उनमें से किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकी

थी।

एकों पिया एक पीवत हैं, एक प्याले पीवेंगे।

खोल्या दरवाजा अर्स का, वास्ते अर्स अरवाहों के॥१०३॥

धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों के लिये परमधाम के प्रेम का दरवाजा खोल दिया है। कुछ अँगनाओं (आत्माओं) ने प्रेम के प्याले को पी लिया है, कुछ पी रही हैं, और कुछ पीने वाली हैं।

भावार्थ— यद्यपि इस प्रेम रूपी प्याले का रसपान करने का सौभाग्य सबको प्राप्त है, किन्तु केवल ब्रह्मसृष्टियाँ ही उसका वास्तविक रसपान (शोभा—श्रृंगार में डूबना) कर पाती हैं। ईश्वरी सृष्टि ज्ञान और भक्ति में लग जाती है, तो जीव सृष्टि मात्र कर्मकाण्ड को ही अपने जीवन का आधार समझ लेती है।

अंग आसिक उपले देख के, इतहीं रहे ललचाए।

जो कदी पैठे गंज में, तो क्यों कर निकस्यो जाए॥१०४॥

धनी के प्रेम में डूबी हुई आत्मा प्रियतम के बाह्य अंगों की शोभा को देखकर पल-पल और अधिक आकर्षित होती जाती है। यदि वह श्री राज जी के दिल में बैठ गयी, तो उस गंजानगंज इश्क के सागर से निकल पाना उसके लिये असम्भव (बहुत कठिन) होता है।

भावार्थ- यद्यपि परमधाम में अन्दर-बाहर एक ही तत्त्व है, किन्तु यहाँ के भावों से ऐसा समझना चाहिए कि बाह्य स्वरूप पर आकर्षित होने के बाद प्रेम बढ़ता है, किन्तु उस प्रेम का मूल हृदय (दिल) से जुड़ा होता है। हृदय में डूबे बिना प्रेम का वास्तविक रसपान सम्भव नहीं है। यद्यपि परमधाम में वहदत होने के कारण श्री राज जी के किसी भी बाह्य अंग की शोभा को दिल में बसाकर बैठाने

(मारिफत) की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु यहाँ चौपाई का भाव यह है कि कभी भी धनी का दीदार होने के पश्चात् अपने प्रेम की झोली बन्द नहीं कर देनी चाहिए, बल्कि उनकी शोभा को पल-पल दिल में बसाते हुए अपनी प्यास बढ़ाते रहना चाहिए और धनी के दिल में डुबकी लगाकर सर्वोच्च मन्जिल को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

इस चौपाई के दूसरे चरण में "ललचाए" का तात्पर्य और अधिक आकर्षित होने से है। जो वस्तु सुन्दर दिखायी देती है, उसे देखने की बारम्बार इच्छा होती है। इसी को इस चौपाई में ललचाना कहा गया है।

हस्त कमल को देखिए, तो अति खूबी कोमल।

ए छोड़ आगे जाए ना सके, जो कोई आसिक दिल॥१०५॥

यदि श्री राज जी के हस्तकमल (हाथों) को देखा जाये, तो उनकी विशेषता यह है कि वे बहुत अधिक कोमल हैं। जिस आत्मा के दिल में धनी के लिये प्रेम भरा होता है, वह सौन्दर्य से भरपूर इन कोमल हाथों का दीदार छोड़कर अपनी दृष्टि और कहीं भी नहीं कर सकती।

नख अंगुरियां निरखते, मुंदरियां अति झलकत।

ए रंग रेखा क्यों छूटहीं, आसिक चित्त गलित॥१०६॥

श्री राज जी के नखों और अँगुलियों की शोभा को देखने पर नूरमयी आभा से झलकती हुई मुद्रिकायें (मुन्द्रियाँ) दिखायी देती हैं। धनी की शोभा में जिसका चित्त गलतान (लीन) हो गया हो, उससे हथेलियों की सुन्दरता तथा रेखाओं के प्रति आकर्षण नहीं छूट सकता।

पोहोंची बांहें बाजू बन्ध, दोऊ निरखत नीके कर।

एक नंग और फुन्दन, चुभ रहत हैड़े अन्दर॥१०७॥

श्री राज जी की बाँहों में पोहोंची और बाजूबन्ध सुशोभित हो रहे हैं। जब इन्हें आत्मिक दृष्टि से प्रेमपूर्वक (अच्छी तरह) देखा जाता है, तो उनमें जड़े हुए नगों और फुन्दनों की शोभा हृदय में चुभ जाती है।

भावार्थ— पोहोंची कलाई में पहनी जाती है, बाजुओं में बाजूबन्ध पहना जाता है, और हाथ के पँजों में पोहोंचा पहना जाता है।

हिरदे कमल अति कोमल, देख इन सरूप के अंग।

जो आसिक कहावे आपको, क्यों छोड़े इनको संग॥१०८॥

धाम धनी का वक्षस्थल (हृदय कमल) बहुत ही कोमल है। श्री राज जी के इन अति सुन्दर अंगों को देखने के

पश्चात्, जो भी सुन्दरसाथ स्वयं को धनी का आशिक कहते हैं, इस अलौकिक शोभा से कभी भी दूर नहीं होना चाहेंगे।

भावार्थ- वस्तुतः वक्षस्थल में हृदय कमल का निवास माना जाता है। यहाँ बाह्य अंगों की शोभा का वर्णन हो रहा है, इसलिये यहाँ हृदय कमल का तात्पर्य वक्षस्थल (छाती) के सौन्दर्य से लिया जायेगा, आन्तरिक हृदय से नहीं। इस चौपाई से यह स्पष्ट है कि प्रियतम की शोभा में स्वयं को डुबाने वाले ही सच्चे आशिक हैं। भजन एवं नाच-कूद के माध्यम से स्वयं को आशिक मान लेने वाले सुन्दरसाथ वास्तविकता से कोसों दूर हैं।

हार कण्ठ गिरवान जो, अति सुन्दर सुखदाए।

लाल लटकत मोती पर, ए सोभा छोड़ी न जाए॥१०९॥

श्री राज जी के कण्ठ में लटकते हुए हार जामे के गिरवान पर आये हुए हैं। ये बहुत ही सुन्दर हैं तथा आत्मा को आनन्द देने वाले हैं। इनमें माणिक (लाल) तथा मोती के नग जड़े हुए हैं। आत्मा की नजरों से यह अलौकिक शोभा कभी अलग नहीं की जा सकती।

मुख सरूप अति सुन्दर, क्यों कहूं सोभा मुख इन।

एक अंग जो निरखिए, तो तितहीं थके बरनन॥११०॥

प्राण प्रियतम का मुखारविन्द बहुत ही सुन्दर है। मैं इस मुख (जिह्वा) से अनन्त शोभा का वर्णन कैसे करूँ। यदि धनी के किसी भी अंग को देखा जाये, तो आत्मा उसमें डूब जाती है। उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है।

भावार्थ— परमधाम की वहदत में श्री राज जी सर्वांग सुन्दर हैं। यद्यपि किसी भी अंग की सुन्दरता को कम या

अधिक नहीं माना जा सकता, किन्तु इस संसार में जिस प्रकार मुखारविन्द की सुन्दरता को सौन्दर्य माना जाता है, उसी प्रकार धाम धनी के मुख के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

छबि सरूप मुख छोड़ के, देख सकों न लांक अधूर।

ए लाल की लालक क्यों कहूं, जो अमृत अर्स मधूर॥१११॥

मैं मुखारविन्द की अलौकिक शोभा को छोड़कर लालिमा भरे होंठों की गहराई के सौन्दर्य को नहीं देख पा रही हूँ। अमृत के समान मधुर (मीठे) इन लाल होंठों के लालिमा भरे सौन्दर्य का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ।

भावार्थ— इस संसार में अमृत को अमरत्व देने वाला कहा जाता है। प्रेम ही जीवन है और प्रेम में ही शाश्वत आनन्द समाया होता है। होंठों का सौन्दर्य प्रेम की वृद्धि

करता है। यही कारण है कि होंठों में अमृत की कल्पना रसिक कवियों ने की है। इसी भाव के आधार पर श्री राज जी के होंठों को अमृतमय और माधुर्यता का सागर कहा गया है। वैसे तो सम्पूर्ण परमधाम का कण-कण ही प्रेममयी, अमृतमयी, आनन्दमयी, और माधुर्यता का सागर है।

ए मुख अधुर लांक छोड़ के, क्यों कर दन्त लग जाए।
 देत नाम निमूना इत का, सों इन सरूपें क्यों सोभाए॥११२॥
 मुखारविन्द तथा दोनों अधरों के बीच की गहराई वाला भाग इतना सुन्दर है कि उसके सौन्दर्य को छोड़कर दाँतों की शोभा की ओर दृष्टि नहीं जा पाती। यदि इस स्वरूप की शोभा के वर्णन में मैं इस संसार की कोई उपमा दूँ तो यह कदापि उचित नहीं होगा।

भावार्थ- इस चौपाई के दूसरे चरण का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि दाँतों की शोभा कम है। परमधाम में कोई भी वस्तु कम या अधिक सुन्दर नहीं है, बल्कि आत्मा अपनी दृष्टि से जिस शोभा को देखती है, उसी में डूब जाती है और उससे निकलकर अन्य शोभा को देख पाना बहुत कठिन होता है। इस दूसरे चरण में यही भाव दर्शाया गया है। युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का सम्पूर्ण वर्णन तो मात्र धनी के आवेश से ही सम्भव हो सका है। कोई भी आत्मा प्रत्यक्ष देखकर बिना आवेश और आदेश (हुक्म) के कुछ भी नहीं कह सकती।

सो दन्त अधुर लांक छोड़ के, जाए न सकौं लग गाल।
 सो गाल लाल मुख छोड़ के, आगूं नजर न सके चाल॥११३॥
 किन्तु यदि आत्मा की नजर दाँतों की शोभा को देखने

लगती है तो दाँतों और होंठों की गहराई के सौन्दर्य को छोड़कर गालों को नहीं देख पाती, और यदि गालों तथा लाल मुखारविन्द की शोभा को देखने लगती है तो उन्हें छोड़कर कहीं और नहीं जा पाती।

मुख नासिका देखत आसिक, सुन्दर सोभा अतंत।

नेत्र बीच निलाट तिलक, आसिक याही सों जीवत॥११४॥

श्री राज जी का मुखारविन्द तथा नासिका बहुत ही सुन्दर हैं। इनकी शोभा अनन्त है, जिसका रसपान आत्मायें करती हैं। दोनों नेत्रों के बीच माथे पर तिलक बना हुआ है। इनके मधुर दर्शन (शरबत-ए-दीदार) में ही प्रेममयी ब्रह्मसृष्टियों का जीवन छिपा है, अर्थात् इसके बिना कोई भी ब्रह्मसृष्टि रह ही नहीं सकती।

भृकुटी तिलक सोभा छोड़ के, जाए न सकों लग कान।
 सो कान कोमल अति सुन्दर, सुख पाइए हिरदे आन॥११५॥

भौंहों तथा तिलक की मनोहर शोभा इतनी अधिक है कि मेरी आत्मा उसे छोड़कर कानों की ओर नहीं देख पा रही है। धनी के ये कान बहुत ही सुन्दर और कोमल हैं। इनकी शोभा को दिल में बसा लेने पर बहुत आनन्द प्राप्त होता है।

और भी खूबी कानन की, दिल दरदां देवे भान।
 जाको केहे लेऊं पड़ उत्तर, कोई न सुख इन समान॥११६॥

कानों की और भी विशेषता है। ये विरह भरे दिल के दर्द को समाप्त कर देते हैं। इन कानों से कहकर ही तो मैं अपने प्रश्नों के उत्तर ले पाती हूँ, जिसके समान अन्य कोई भी सुख नहीं है।

भावार्थ- आशिक (प्रेमी) के विरह की पीड़ा को कानों के माध्यम से माशूक (प्रेमास्पद) ग्रहण कर लेता है। इसके पश्चात् वह अपने हृदय का प्रेम अपने आशिक पर उड़ेल देता है। यही भाव इस चौपाई में दर्शाया गया है।

कहें सुनें बातें करें, ए जो अर्स मेहेरबान।

सो खिलवत सुख छोड़ के, लग जवाए नहीं नैन बान॥११७॥

धाम के धनी मेहर के सागर श्री राज जी ब्रह्मसृष्टियों से अपनी बातें कहते हैं तथा उनकी बातें प्रेमपूर्वक सुनते हैं। इस प्रकार वे बहुत ही प्यार से अपनी अँगनाओं से बातें करते हैं। यह सारी प्रेममयी लीला खिलवत में जिन कानों के द्वारा सम्पन्न होती है, उन कानों को छोड़कर नेत्रों की तरफ आत्मा की दृष्टि नहीं जा पाती, जबकि ये नेत्र प्रेम के अमोघ बाण छोड़ा करते हैं।

ए नैन बान सुभान के, क्यों छोड़ें रूह मोमिन।

ए नैन रस छोड़ आगे चले, रूहें नाम धरत हैं तिन॥११८॥

धनी के जिन नेत्रों से दूसरों के हृदय को बींधने वाले प्रेम के बाण निकला करते हैं, उन नेत्रों के दीदार के सुख को भला परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ कैसे छोड़ सकती हैं। प्रियतम के नेत्रों के दीदार से मिलने वाले आनन्द को छोड़कर जिस ब्रह्मसृष्टि की नजर कहीं और चली जाती है, आत्माओं की नजर में उसका नाम प्रेम के ऊपर धब्बा लगाने वालों में होता है।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रेम के ऊपर धब्बा लगाने या प्रेम के क्षेत्र में लज्जित होने की बात इस जागनी ब्रह्माण्ड से सम्बन्धित है। परमधाम की लीला में इस प्रकार की कोई भी बात नहीं होती है, क्योंकि वहाँ सबका इश्क बराबर है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में यदि आत्मा की नजर

हृद-बेहृद को पार कर परमधाम में जाकर श्री राज जी के नेत्रों का अमृत रस पीने लगे और पुनः उसे छोड़कर कहीं और चली जाये, तो यह प्रश्न उठता है कि आखिरकार उसने ऐसा क्यों किया? क्या श्री राज जी से मिलने वाले प्रेम के आनन्द में कमी थी या उससे भी अधिक कहीं और से आनन्द मिलने की सम्भावना थी? अक्षरातीत के हृदय का प्रेम जिन नेत्रों द्वारा प्रवाहित होता है, उन्हें छोड़कर कहीं और नजर कर लेना निश्चित रूप से प्रेम की उज्ज्वल चादर पर धब्बा लगाने जैसी बात है और इसी कारण हँसी या लज्जा करवाने वाली आत्माओं में उसका नाम जुड़ जाता है।

नैन अनियारे अति तीखे, पल देत तारे चंचल।

स्याम उज्जल लालक लिए, ए क्यों कहूं सुपन अकल॥११९॥

धनी के नेत्र बाँके (टेढ़े, तिरछे) और बहुत ही नुकीले हैं। प्रेम की अधिकता के कारण आँखों में चञ्चलता है, जिससे प्रायः पलकें झपकती रहती हैं। नेत्रों के बीच का भाग काला है, जबकि शेष भाग श्वेत है। इसके साथ ही प्रेम की लालिमा सम्पूर्ण नेत्रों में फैली हुई है। स्वप्न की बुद्धि वाले इस ब्रह्माण्ड में प्रियतम के नेत्रों की शोभा का वर्णन भला कैसे हो सकता है।

भावार्थ- नेत्रों का बिना पलक झपकाये पूर्ण रूप से खुला और स्थिर रहना ज्ञान का द्योतक (परिचायक) है, जबकि प्रेम भरे नेत्र अधखुले रहते हैं और उनमें चञ्चलता का मिश्रण रहता है।

इस चौपाई के दूसरे चरण का भाव यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैं स्वप्न की बुद्धि से कैसे वर्णन करूँ?

जिस तन में अक्षरातीत अपनी पाँचों शक्तियों के साथ लीला कर रहे हैं, यदि उनमें ही जाग्रत बुद्धि और निज बुद्धि न हो तो अन्य किसके पास होगी। जब महामति जी पहले ही कह चुके हैं कि "मेरी बुद्धे लुगा न निकसे, धनी जाहेर करे अखण्ड घर सुख", और सागर ग्रन्थ में स्वयं धाम धनी कह रहे हैं कि "साहेब मांहे बैठ के, बतावत हैं ठौर", तो इसमें स्वप्न की बुद्धि होने का प्रश्न ही नहीं होता। हाँ! इतना अवश्य है कि प्रस्तुतीकरण में स्वप्न की बुद्धि का योग अवश्य होता है, जिसके कारण वास्तविक वर्णन नहीं हो पाता। महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होने से ही अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि को वह सब कुछ प्राप्त हुआ, जो अनादि काल से अब तक प्राप्त नहीं हो सका था।

मेरी संगते ऐसी सुधरी, बुध बड़ी हुई अछर।

तारतमें सब सुध परी, लीला अन्दर की घर॥

क० हि० २३/१०३

धनी मेरे ध्यान तुमारे, बैठे बुध जी बरस सहस्र चार।

किरंतन ५३/१

नैन रसीले रंग भरे, खँचत बंके मरोर।

सो आसिक रूह जाए ना सके, जाए लगें बान ए जोर॥१२०॥

प्रियतम के नेत्र प्रेम के रस और आनन्द से भरपूर हैं। वे अपनी प्रेम भरी चितवनि (दृष्टि, नजर) से आत्माओं को अपनी ओर खींच लेते हैं। उनके नेत्रों से निकले हुए प्रेम के बाण जिसे लग जाते हैं, वह आत्मा धनी से कदापि अलग नहीं रह सकती।

ए नेत्र रसीले निरखते, उपजत है सुख चैन।

ए क्यों न्यारे होए नैन रूह के, सामी छोड़ नैन की सैन॥१२१॥

श्री राज जी के प्रेम भरे नेत्रों की ओर देखने पर आत्मा के हृदय में बहुत अधिक आनन्द होता है। धाम धनी के नेत्रों से होने वाले प्रेम-संकेतों को छोड़कर भला आत्मा के नेत्र कैसे अलग हो सकते हैं।

जो चल जाए सारी उमर, तो क्यों छोड़िए सुख नैनन।

इन सुख से क्यों अघाइए, आसिक अंतस्करन॥१२२॥

यदि प्राणवल्लभ अक्षरातीत के नेत्रों को निहारते – निहारते (देखते-देखते) इस शरीर की सारी उम्र भी बीत जाये, तो भी उन नेत्रों से मिलने वाले आनन्द को नहीं छोड़ना चाहिए। धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टि का हृदय इस आनन्द से भी तृप्त नहीं हो पाता।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि अतृप्ति तो मायावी विषयों से होती है जबकि ब्रह्मानन्द को शाश्वत शान्ति (तृप्ति) देने वाला कहा जाता है, किन्तु इस चौपाई में ऐसा क्यों कहा गया है कि धनी के नेत्रों की ओर देखते रहने पर भी तृप्ति नहीं होती?

इसका समाधान यह है कि विषयों से मिलने वाला सुख क्षणिक होता है और उसके सेवन में लज्जा, भय, तथा अन्ततोगत्वा ग्लानि का अनुभव होता है, किन्तु चित्त में विषय-सुख का संस्कार होने के कारण उसको पुनः भोगने की इच्छा बनी रहती है, और यह चक्र जन्म-जन्मान्तरों तक चलता रहता है।

इसके विपरीत ब्रह्मानन्द का सेवन करने वाला विषयों की नश्वरता और निरर्थकता को ज्ञान दृष्टि से जान चुका होता है। जब वह चितवनि (ध्यान) की अवस्था में धनी

के नेत्रों से ब्रह्मानन्द का रसपान करता है तो उसमें उसे अनन्त आनन्द का अनुभव होता है, किन्तु कुछ समय के पश्चात् उसे अपना ध्यान तोड़ना पड़ता है, क्योंकि इस शरीर को निद्रा, भोजन आदि की अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ती है।

ध्यान तोड़ने के पश्चात् उसे यह अनुभव होता है कि यह संसार तो तृष्णाओं और कष्टों की अग्नि से जलने वाले भयंकर वन की तरह है। ऐसी दशा में वह पुनः ध्यान में मग्न होकर ब्रह्मानन्द का रसपान करने लगता है और कभी भी संसार की ओर देखने की इच्छा नहीं करता। इसे ही इस चौपाई में अतृप्त होने की बात कही गयी है।

निलवट सुन्दर सुभान के, सोभा मीठी मुखारबिंद।

ए छबि कही न जाए एक अंग की, ए तो सोभा सागर खावंद॥१२३॥

श्री राज जी का मस्तक बहुत सुन्दर है तथा उनके मुखारविन्द की शोभा में बहुत माधुर्यता है। धाम धनी के किसी एक अंग की शोभा का वर्णन करना भी सम्भव नहीं है, जबकि वे तो शोभा के अनन्त सागर हैं।

हँसत सोभित हरवटी, दंत अधुर मुख लाल।

आसिक से क्यों छूटहीं, सब अंग रंग रसाल॥१२४॥

जब प्रियतम अक्षरातीत हँसते हैं, तो उनकी ठुड़ी, दँतावलि (दाँतों की पँक्तियां), होंठ, और लाल मुखारविंद की शोभा बहुत (अनन्त) होती है। धनी के ये सभी अंग प्रेम और आनन्द के रस से ओत-प्रोत हैं। उनके प्रेम भाव में हमेशा डूबी रहने वाली (आशिक) ब्रह्मसृष्टियों से इन अंगों की शोभा कदापि अलग नहीं हो सकती।

अति कोमल अंग किसोर, कायम अंग उनमद।

ए छबि अंग अर्स के, पोहोंचत नहीं सब्द॥१२५॥

धनी के ये सभी अंग बहुत कोमल हैं, किशोरावस्था के हैं, अखण्ड नूरमयी हैं, तथा प्रेम और आनन्द से भरपूर (मस्त) हैं। यह सम्पूर्ण शोभा परमधाम के उन नूरमयी अंगों की है, जिसका वर्णन करने का सामर्थ्य इस संसार की किसी भी भाषा के शब्दों में नहीं है।

मुख नासिका नेत्र भौंह, तिलक निलाट और कान।

हाथ पांउ अंग हैड़ा, सब मुसकत केहेत मुख बान॥१२६॥

माधुर्यता के सागर श्री राज जी जब बोलते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनका मुखारविन्द, नासिका, नेत्र, भौंहें, तिलक, मस्तक, कान, हाथ, पैर, और वक्षस्थल आदि सभी प्रेमपूर्वक मुस्करा रहे हैं।

जो आसिक इन मासूक की, सो अटक रहे एकै अंग।

और अंग लग जाए ना सके, अंग एकै लग जाए रंग॥१२७॥

जो सुन्दरसाथ माशूक श्री राज जी के सच्चे आशिक (प्रेमी) होते हैं, अपने धाम धनी के किसी भी अंग की शोभा में डूबे (अटके) रहते हैं। उनकी दृष्टि वहाँ से हटकर अन्य किसी अंग में नहीं जा पाती। वे एक ही अंग के दर्शन (दीदार) में मग्न हो जाते हैं और उन्हें सारा आनन्द प्राप्त हो जाता है।

देख बीड़ी मुख मोरत, रूह अंग उपजत सुख।

पीऊं सराब लेऊं मस्ती, ज्यों बल बल जाऊं इन मुख॥१२८॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि जब धाम धनी पान का बीड़ा चबाते हैं, तो उनके मुखारविन्द की शोभा को देखकर आत्मा के दिल में बहुत अधिक आनन्द आता

है। मेरे दिल की यही इच्छा है कि मैं प्रियतम की प्रेमसुधा का रसपान कर बेसुध हो जाऊँ, जिससे मैं उनके मुखारविन्द की अलौकिक शोभा पर बारम्बार न्योछावर हो सकूँ।

ए छबि छोड़ के आसिक, क्यों कर आगे जाए।

मोहि लेत मुख मासूक, सो चित्त रह्यो चुभाए॥१२९॥

जो श्री राज जी से सच्चा प्रेम करने वाला सुन्दरसाथ (आशिक) होगा, वह धनी के मुखारविन्द की शोभा को छोड़कर और कहीं जा ही नहीं सकता। अनन्त सौन्दर्य से भरपूर श्री राज जी का मुखारविन्द सबके मन को मुग्ध कर लेता है और हृदय में अखण्ड रूप से अंकित हो जाता है।

नैनों निलवट निरखते, देखी बनी सारंगी पाग।

दुगदुगी कलंगी ए जोत, छबि रूह हिरदे रही लाग॥१३०॥

जब आत्मिक नजर श्री राज जी के मस्तक और उस पर बँधी हुई सारंगी की आकृति वाली पाग को देखती है, तो वह इतना मुग्ध हो जाती है कि ज्योति से भरपूर दुगदुगी और कलंगी की शोभा आत्मा के दिल में अखण्ड हो जाती है।

होए बरनन चतुराई से, आसिक धरे ताको नाम।

एक अंग छोड़ जाए और लगे, सो नहीं आसिक को काम॥१३१॥

धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टियों (आशिकों) की दृष्टि में वह आत्मा हँसी की पात्र बन जाती है, जो अपनी बुद्धि की चतुराई से सभी अंगों का वर्णन करने का प्रयास करती है। यह कार्य एक सच्चे आशिक का नहीं है

कि एक अंग की शोभा को जल्दी-जल्दी देखकर कहीं
और देखने लग जाये।

आसिक कहिए हक की, जो लग रहे एकै ठौर।

आसिक ऐसी चाहिए, जो ले न सके अंग और॥१३२॥

अक्षरातीत से सच्चा प्रेम करने वाली ब्रह्मसृष्टि (आशिक)
वही है, जिसकी नजर यदि किसी भी अंग पर पड़ती है
तो उसी में डूबी रह जाती है। आशिक की परिभाषा भी
यही है कि वह किसी एक अंग की शोभा को छोड़कर
कहीं और नहीं जाती।

इन आसिक की नजरों, दिल एकै हुआ सागर।

सो झीले याही सुख में, निकसे नहीं क्यों कर॥१३३॥

आत्मा (आशिक) जब सौन्दर्य के सागर अक्षरातीत की

शोभा को देखती है, तो उसका दिल धनी के दिल से वैसे ही एकरूप हो जाता है जैसे सागर में मिलने के पश्चात् नदी उसी का स्वरूप बन जाती है। उस अवस्था में वह श्री राज जी के दिल में उमड़ने वाले प्रेम और आनन्द के सागर में क्रीड़ा करती है तथा उससे निकल नहीं पाती।

भावार्थ- धनी की शोभा में डूबकर, अक्षरातीत के दिल से एकरूप होकर, मारिफत (विज्ञान) की अवस्था में पहुँचने का प्रसंग सिनगार में इस प्रकार दिया गया है-

हक अर्स दिल मोमिन, और अर्स हक खिलवत।

वाहेदत बीच अर्स के, है अर्स में अपार न्यामत॥

सिनगार २/२

हम अरस परस हैं हक के, ए देखो मोमिनो हिसाब।

हम हकमें हक हममें, और हक बिना सब ख्वाब॥

सिनगार २/१२

दिल को तुम अर्स किया, तुम आए बैठे दिल मांहें।

हम अर्स समेत तुम दिल में, अजूं क्यों जोस आवत नाहें॥

सिनगार २/४७

तो सोभा सारे सरूप की, क्यों कहे जुबां इन।

लेहेरें नेहेरें पोहोंचे आकास लों, और ठौर न कोई मोमिन॥१३४॥

इस प्रकार श्री राज जी की नख से शिख (सिर) तक की सम्पूर्ण शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं किया जा सकता। उनकी शोभा रूपी सागर से इस प्रकार की लहरें आकाश में उठती (उमड़ती) हैं, जैसे तेज की नहरें चल रही हों। इस शोभा को छोड़कर ब्रह्मसृष्टियों के लिये और कोई जगह नहीं है, अर्थात् आत्म-जाग्रति के लिये धनी की शोभा को अपने दिल में बसाने के अतिरिक्त अन्य

कोई मार्ग नहीं है।

आसिक न लेवे दानाई, पर ए दानाई हक।

इस्क आपे पीवहीं, और पिलावें बेसक॥१३५॥

यद्यपि प्रियतम की शोभा का वर्णन करने में आत्मा (आशिक) कोई भी चतुराई नहीं लेना चाहती, किन्तु इस श्रृंगार-वर्णन में जो बौद्धिक चातुर्य दिख रहा है, वह भी तो धाम धनी का ही दिया हुआ है। इसमें कोई संशय नहीं है कि धाम धनी अपनी आत्माओं से लीला रूप में इश्क का रस स्वयं पीते हैं तथा उनको पिलाते हैं।

भावार्थ- कोई भी आत्मा धनी की शोभा को देखकर उसमें डूब जाती है। यदि श्री राज जी उससे वर्णन न करवायें, तो उसके लिये स्वयं वर्णन कर पाना सम्भव नहीं होता।

ए चतुराई हक की, और हकै का इलम।

ए सुख इन सरूप के, देवें एही खसम॥१३६॥

श्रृंगार के वर्णन में जिस ज्ञान और बुद्धि की चतुराई यहाँ दिख रही है, वह श्री राज जी की ही दी हुई है। अपने स्वरूप के वर्णन से अपनी शोभा में डुबोने का सुख स्वयं श्री राज जी ही अपनी अँगनाओं को देते हैं।

इन सरूप को बरनन, सो याही की चतुराए।

याको आसिक जानिए, जो इतहीं रहे लपटाए॥१३७॥

धनी की शोभा का वर्णन भी धनी की दी हुई चतुराई से ही सम्भव होता है। वही आत्मा आशिक कहलाने का अधिकार रखती है, जो उस शोभा को देखकर डूब जाये और अपना अस्तित्व भुला दे।

ए सुख इन सरूप को, और आसिक एही आराम।

जोलों इस्क न आवहीं, तोलों इलम एही विश्राम॥१३८॥

प्रियतम की शोभा में दो प्रकार का सुख छिपा होता है, जिसका रसास्वादन आत्मायें किया करती हैं। एक सुख तो शोभा-श्रृंगार के वर्णन का होता है और दूसरा उसमें डूबने का होता है। जब तक शोभा में स्वयं को डुबाने के लिये आत्मा के अन्दर प्रेम (इश्क) नहीं आ जाता, तब तक वह ज्ञान (इल्म) के द्वारा ही शोभा का रसपान करती है।

इस्क को सुख और है, और सुख इलम।

पर न्यारी बात आसिक की, जिन जो देवें खसम॥१३९॥

इश्क और इल्म (प्रेम और ज्ञान) के सुख अलग-अलग हैं। इश्क जहाँ वहदत के आनन्द में डुबो देता है, वहीं

इल्म आत्मा को उसके स्वाद का अनुभव कराता है।
ब्रह्मसृष्टियों की बात सबसे अलग होती है। यह धाम धनी
की मेहर के ऊपर निर्भर करता है कि उन्हें क्या देना है—
केवल इश्क या केवल इल्म या दोनों?

ए इलम ए इस्क, दोऊ इन हक को चाहें।

पर जिनको हक जो देत हैं, सो लेवे सिर चढ़ाए॥१४०॥

ब्रह्मसृष्टि प्रेम और तारतम ज्ञान के द्वारा धनी को पाना
चाहती है, किन्तु श्री राज जी जिसको प्रेम या ज्ञान में से
जो कुछ भी देते हैं, वह उसे शिरोधार्य कर लेती है।

महामत कहे अपनी रूहन को, तुम जो अरवा अर्स।

सराब प्याले इस्क के, ल्यो प्याले पर प्याले सरस॥१४१॥

श्री महामति जी ब्रह्मसृष्टियों से कहते हैं कि हे साथ जी!

यदि आपके अन्दर परमधाम का अँकुर है, तो आप आनन्द देने वाले प्रेम के प्याले पर प्याले लीजिए और उसका रसपान कीजिए।

भावार्थ- इस चौपाई में ब्रह्मसृष्टियों की यह कसौटी बतायी गयी है कि यदि वे अपने दिल में धनी का प्रेम नहीं बसा सकतीं, तो उन्हें धनी की अर्धांगिनी कहलाने का कोई अधिकार नहीं है। ब्रह्मसृष्टि की गरिमा ही इसी में है कि वह धनी के हृदय से प्रवाहित होने वाले प्रेम की अमृतमयी धारा का रसास्वादन करें। प्याले पर प्याले लेने का तात्पर्य है— कई प्याले लेना। सामान्यतः यदि कोई एक प्याला पी ले और उसे अन्य प्यालों को पीने के लिये कहा जाये, तो उस समय प्याले पर प्याले का कथन चरितार्थ होता है।

प्रकरण ॥५॥ चौपाई ॥३४९॥

श्री ठकुरानी जी को सिनगार पेहेलो

मंगला चरन

इस प्रकरण में श्यामा जी के श्रृंगार का वर्णन किया गया है।

बरनन करुं बड़ी रूह की, रूहें इन अंग का नूर।

अरवाहें अर्स में वाहेदत, सो सब इनका जहूर॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि अब मैं श्यामा जी के श्रृंगार का वर्णन करती हूँ। श्री राज जी के आनन्द अंग श्यामा जी हैं और सभी सखियाँ श्यामा जी के नूर की अँगरूपा हैं। परमधाम की एकदिली में जो सखियाँ हैं, सभी इन्हीं की स्वरूपा हैं।

भावार्थ- सखियों को श्री श्यामा जी के अंग का नूर कहे जाने का यह अर्थ कदापि नहीं समझना चाहिए कि

उनका प्रेम और सौन्दर्य श्यामा जी से कम है। उस शब्दातीत परमधाम की अद्वैत लीला को समझने के लिये इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है।

प्रथम लागूं दोऊ चरन को, धनी ए न छोड़ाइयो खिन।

लांक तली लाल एड़ियां, मेरे जीव के एही जीवन॥२॥

मैं सर्वप्रथम श्यामा जी के दोनों चरण-कमलों में प्रणाम करती हूँ और श्री राज जी से यह प्रार्थना करती हूँ कि हे धाम धनी! मुझे श्यामा जी के इन चरणों से अलग नहीं होने देना। श्री श्यामा जी के चरणों की लाल-लाल एड़ियाँ और तलवों की गहराई वाले भाग (लाँक) की सुन्दरता ही तो मेरे जीव के जीवन का आधार है।

भावार्थ- इस मंगलाचरण में प्रथम चौपाई को छोड़कर शेष सभी चौपाइयों में "मेरे जीव के एही जीवन" कहकर

चौपाई का चौथा चरण पूर्ण किया गया है। इन चौपाइयों में यह जिज्ञासा होती है कि यहाँ "मेरे जीव के एही जीवन" से क्या अभिप्राय है? क्या जीव इनके बिना नहीं रह सकता या आत्मा नहीं रह सकती? यदि यहाँ आत्मा का प्रसंग है तो जीव शब्द क्यों लिखा गया है?

चेतना के तीन स्वरूप हैं— जीव चेतना, ईश्वरीय चेतना, आत्मिक चेतना। "जीव" शब्द का भाव मात्र कालमाया एवं योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही होता है। यहाँ जीव भाव को दो रूपों में व्यक्त किया जाता है। एक आदिनारायण की अंशीभूत चेतना और दूसरी आत्म चेतना। इन्हें ही "जीव" शब्द से सम्बोधित कर दिया जाता है। जैसे—

तमथी अलगो जे रहूँ, ते जीव मारे न खमाय।

एक पल मांहे रे सखियों, कोटान कोट जुग थाय॥

एवडां दुख ते कां करो, हुं दऊं एम केम छेह।

तमे मारा प्राणनां प्रीतम, बांध्या जे मूल सनेह॥

रास ४७/१०, १३

ये कथन अक्षरातीत श्री राज जी के हैं, जो उन्होंने रास के ब्रह्माण्ड में सखियों से कहे थे। यह निर्विवाद सत्य है कि रास के समय श्री राज जी के उस नूरमयी तन में जीव का अस्तित्व नहीं था, फिर भी उन्होंने अपनी आत्म-चेतना को "जीव" शब्द से सम्बोधित करके कहा। इसी प्रकार दस प्राणों का कथन भी मात्र कालमाया के ब्रह्माण्ड में ही प्रयुक्त होता है, योगमाया या परमधाम में नहीं, क्योंकि वहाँ जन्म-मरण की प्रक्रिया है ही नहीं, फिर भी रास ४७/१३ में अपनी आत्म-चेतना को स्वयं धाम धनी ने "प्राण" शब्द से सम्बोधित किया है।

इसी प्रकार कलश हिन्दुस्तानी में स्वयं धाम धनी अपनी आत्माओं को अपने "प्राणों का प्रियतम" कहते हैं—

प्रीतम मेरे प्राण के, अंगना आतम नूर।

मन कलपे खेल देखते, सो ए दुख करुं सब दूर॥

क. हि. २३/१७

स्पष्ट है कि श्रीमुखवाणी के इन कथनों में जीव और प्राण (जीवन) का बाह्य अर्थ न लेकर गुह्य (लाक्षणिक) अर्थ लिया गया है और इसे आत्मपरक माना गया है। इसी प्रकार श्री श्यामा जी के श्रृंगार वर्णन में कथित "मेरे जीव के एही जीवन" का भाव समझना चाहिए। यहाँ "जीव" शब्द का तात्पर्य "आत्मिक भाव" से ही है।

किन्तु यदि ऐसा भी माना जाये कि मेरी आत्मा जिस जीव पर विराजमान होकर इस खेल को देख रही है, वह

जीव धनी की वाणी से प्रेम की राह अपना चुका है और श्यामा जी के चरण कमलों को नहीं छोड़ना चाहता तथा उनके बिना जीवित भी नहीं रहना चाहता, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है।

किन्तु यह भी ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि जीव को श्यामा जी के चरण कमलों का दर्शन नहीं हो सकता। वह प्रेम के द्वारा श्री राज जी के चरण कमलों का दर्शन अवश्य प्राप्त कर लेगा। सागर १४/२७ का यह कथन "बदले आप देखावत, प्यारी निसबत रखें छिपाए" यही सिद्ध करता है। वस्तुतः "आसिक इन चरन की, आसिक की रूह चरन" (सिनगार) के आधार पर यही कहा जा सकता है कि धनी के चरण कमल ही ब्रह्मसृष्टियों के जीवन के आधार (सर्वस्व) हैं।

सिफत नख कहूं के अंगुरियों, के रंग पोहोंचे ऊपर टांकन।
 कहूं कोमलता किन जुबां, मेरे जीव के एही जीवन॥३॥

मैं श्यामा जी के चरणों के नखों और अँगुलियों के
 सौन्दर्य की महिमा का कैसे वर्णन करूँ। मेरी जिह्वा में यह
 सामर्थ्य नहीं है कि वह श्यामा जी के चरणों के पँजों और
 टखनों की कोमलता एवं सुन्दरता का वर्णन कर सके। ये
 चरण कमल ही तो मेरे जीवन के आधार हैं।

रंग नरमाई सलूकी, अर्स अंग चरन।
 बल बल जाऊं देख देख के, मेरे जीव के एही जीवन॥४॥

मैं श्यामा जी के नूरमयी चरण कमलों की सुन्दरता ,
 कोमलता को देख-देख कर बारम्बार न्योछावर होती हूँ।
 ये दोनों चरण कमल ही तो मेरे जीवन के आधार हैं।

इन पांउं तले पड़ी रहूं, धनी नजर खोलो बातन।

पल न वालूं निरखूं नेत्रे, मेरे जीव के एही जीवन॥५॥

मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत! मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप अपनी मेहर से मेरी आत्मिक दृष्टि खोल दीजिए, जिससे मैं अपलक नेत्रों से श्यामा जी के चरण कमलों का दर्शन करती रहूँ। मेरी यही कामना है कि मेरी आत्मिक दृष्टि हमेशा ही इन चरणों में लगी रहे, क्योंकि ये मेरे जीवन के आधार हैं।

भावार्थ— चरणों में पड़े रहने का भाव आलंकारिक है। इसका तात्पर्य है, आत्मिक दृष्टि से चरणों का दीदार करते रहना और उनके सान्निध्य से कभी अलग नहीं होना।

चारों जोड़े चरन के, और अनवट बिछिया रोसन।

बानी मीठी नरमाई जोत धरे, मेरे जीव के एही जीवन॥६॥

श्यामा जी के दोनों चरणों की एड़ियों में झांझरी, घूंघरी, कांबी, कड़ला, तथा अंगूठों एवं अंगुलियों में अनवट , बिछिया के आभूषण जगमगा रहे हैं। इनकी मीठी और कोमल आवाज मुग्ध करने वाली है। नूरी आभा से युक्त इन आभूषणों की शोभा मेरे जीवन का आधार है।

प्यारे मेरे प्राण के, मोहे पल छोड़ो जिन।

मैं पाई मेहेरे मेहेबूब की, मेरे जीव के एही जीवन॥७॥

ये दोनों चरण कमल मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। अब एक पल के लिये भी इन चरणों की शोभा मेरे दिल से अलग नहीं होनी चाहिए। धाम धनी की मेहर से मुझे इन चरणों की पहचान हो गयी है, जो मेरे जीवन के

आधार हैं।

ए चरन पुतलियां नैन की, सो मैं राखूं बीच तारन।

पकड़ राखूं पल ढांप के, मेरे जीव के एही जीवन॥८॥

मेरी यही चाहना है कि श्यामा जी के इन चरणों को अपने नेत्रों की पुतलियों के तारों में बसा लूँ और पलकों से ढककर अन्दर ही पकड़े रखूँ। वस्तुतः ये चरण कमल ही तो मेरे जीवन के सर्वस्व हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के गुह्य भाव में नैन परात्म का तन है, तो पुतली आत्मा का स्वरूप है। उसका दिल ही तारा है, जिसमें श्यामा जी के चरण कमलों को बसाना है। जिस प्रकार आँखों की पलकें बन्द कर लेने पर बाहर की वस्तुएँ दिखायी नहीं पड़तीं, उसी प्रकार आत्मा जब संसार से अपना ध्यान हटाकर युगल स्वरूप की शोभा

की ओर मुड़ जाती है, तो संसार से सम्बन्ध टूट जाता है। इस प्रकार पलकें आत्मा की इच्छा शक्ति का प्रतीक हैं।

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआत्म।
सो परआत्म लेय के, विलसिए संग खसम॥

सागर ७/४१

जब तक आत्मा (पुतली) अपनी दृष्टि संसार से हटाकर अपनी परात्म का श्रृंगार नहीं कर लेती, तब तक उसके तारा रूपी दिल में धनी की शोभा नहीं बस सकती।

मेरे मीठे मीठरड़े आत्म के, सो चुभ रहे अन्तस्करन।

रूह लागी मीठी नजरों, मेरे जीव के एही जीवन॥९॥

ये चरण कमल मेरी आत्मा को बहुत ही मीठे (प्यारे) लगते हैं। उनकी मधुर छवि मेरे हृदय में बस चुकी है।

अब मेरी आत्मा अपनी मधुर दृष्टि से इन चरणों की तरफ लग गयी है, क्योंकि ये चरण कमल मेरे जीवन के आधार हैं।

ए चरन कमल अर्स के, इनसे खुसबोए आवे वतन।
 ए तन बका अर्स अजीम, मेरे जीव के एही जीवन॥१०॥
 ये नूरी चरण कमल परमधाम के हैं। इनके ध्यान (चितवनि) से निज घर की सुगन्धि का अनुभव होता है।
 उस अखण्ड परमधाम में श्यामा जी का वह नूरी तन विराजमान है, जिसके चरण मेरी आत्मा के आधार हैं अर्थात् उनके बिना मेरा कोई भी अस्तित्व नहीं है।

ए चरन निमख न छोड़िए, राखिए माहें नैनन।
 ए निसबत हक अर्स की, मेरे जीव के एही जीवन॥११॥

हे साथ जी! इन चरणों को एक क्षण के लिये भी न छोड़िये। इन्हें अपनी आत्मा के दिल रूपी नेत्रों में बसा लीजिए। श्री राज जी की अर्धांगिनी श्यामा जी के इन चरणों से मेरा मूल सम्बन्ध तो परमधाम से ही है। वस्तुतः ये चरण कमल ही मेरे प्राणाधार हैं।

मेहरें नेहेर ल्याए चरन अन्दर, द्वार नूर पार खोले इन।

मोहे पोहोंचाई बका मिने, मेरे जीव के एही जीवन॥१२॥

श्री राज जी के मेहर सागर की एक लहर मेरे दिल में आयी, जिससे मेरी सुरता (आत्मिक दृष्टि) अक्षरधाम से भी परे परमधाम के रंगमहल में पहुँची और मैंने युगल स्वरूप का दीदार किया, जिसके परिणामस्वरूप श्यामा जी के चरण कमल अब मेरे धाम दिल में विराजमान हो चुके हैं। इन चरणों में ही मेरा जीवन है।

सोभा सिनगार अंग सुखकारी, मेरी रूह के कण्ठ भूखन।

सब खूबियां मेरे इन सें, मेरे जीव के एही जीवन॥१३॥

श्यामा जी के इन अंगों (चरणों) की शोभा तथा श्रृंगार आत्मा को आनन्द देने वाले हैं। ये मेरी आत्मा के कण्ठहार के समान हैं। मुझमें जो भी विशेषतायें हैं , अर्थात् मुझे संसार में जो भी शोभा प्राप्त हुई है , इन चरणों की कृपा से ही प्राप्त हुई है। वस्तुतः ये मेरी आत्मा के आधार हैं।

ए मेहेर अलेखे असल, मेरे ताले अर्स के तन।

क्यों न होए मोहे बुजरकियां, मेरे जीव के एही जीवन॥१४॥

मेरे ऊपर धनी की यह वास्तविक और अनन्त मेहर है कि मेरे सौभाग्य से परमधाम में मेरा तन है जो श्यामा जी का ही अंग है। जब श्यामा जी के चरण कमल ही मेरे

सर्वस्व हैं, तो मुझे इस संसार में बड़प्पन (महामति कहलाने की शोभा) क्यों नहीं मिलेगा।

द्रष्टव्य— "सबथें बड़ी मुझे करी, ऐसी और न दूजी कोए" (किरंतन १०९/२) का यह कथन अक्षरशः सत्य है। महामति जी के समान किसी को भी ब्रज, रास, या जागनी में शोभा नहीं मिली है।

चित्त खँच लिया इन चरणों, मोहे सब विध करी धन धन।
 ए सिफत करुं क्यों इन जुबां, मेरे जीव के एही जीवन॥१५॥

श्यामा जी के इन चरणों ने मेरे हृदय (चित्त) को अपनी ओर खींच लिया है और मुझे हर तरह से धन्य-धन्य कर दिया। अपनी इस जिह्वा से मैं इन चरणों की महिमा का वर्णन कैसे करूँ। ये चरण ही तो मेरे जीवन के आधार हैं।

ज्यों जानो त्यों मेहेबूब करो, ए सुख दिया न जाए दूजे किन।
 कहूं तो जो दूजा कोई होवहीं, मेरे जीव के एही जीवन॥१६॥

हे धाम धनी! अब आप जैसा चाहें, वैसा कीजिए।
 आपके अतिरिक्त इन चरणों का सुख और कोई दूसरा
 नहीं दे सकता। मैं और किसी को तो तब कहूँ, जब
 हमारा आपके अतिरिक्त और कोई (प्रियतम) हो। यथार्थ
 तो यह है कि श्यामा जी के ये चरण मेरे प्राणाधार हैं।

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।
 ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन॥१७॥

मैं श्यामा जी के चरणों की महिमा का वर्णन कैसे करूँ।
 इस सम्बन्ध में बोलने का सामर्थ्य ही मुझमें नहीं है।
 अन्ततः ये चरण कमल ही मेरे जीवन हैं, क्योंकि इनकी
 कृपा से ही मेरे धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हुए

हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण का भाव यह है कि जब आत्मा श्री राज जी या श्यामा जी के चरणों का ध्यान करती है तो हृदय में प्रेम बढ़ता है, जिससे युगल स्वरूप की छवि विराजमान हो जाती है। इस सम्बन्ध में सिनगार २१/२२७ देखने योग्य है-

ए मेहेर करें चरन जिन पर, देत हिरदे पूरन सरूप।

जुगल किसोर चित्त चुभत, सुख सुन्दर रूप अनूप॥

करत चरन पूरी मेहेर, तिन सरूप आवत पूरन।

प्यार पूरा ताए आवत, मेरे जीव के एही जीवन॥१८॥

इन चरणों की जिन पर पूर्ण मेहर होती है, उनके अन्दर ही धनी का पूर्ण प्रेम आता है और युगल स्वरूप का दीदार होता है। अन्ततः ये चरण कमल ही तो मेरी

आत्मा के आधार हैं।

ए चरन दिल आवें निसबतें, ए मता अर्स रुहन।

ए धनी के दिए क्यों छूटहीं, मेरे जीव के एही जीवन॥१९॥

मूल सम्बन्ध होने पर ही श्यामा जी के चरण कमल दिल में आते हैं। यह आध्यात्मिक सम्पदा मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के लिये है। धाम धनी की मेहर (कृपा) से ही ये चरण कमल प्राप्त होते हैं, इसलिये किसी भी स्थिति में इनका छूट पाना असम्भव है। मेरी आत्मा के सर्वस्व तो श्यामा जी के ये मनोहर चरण ही हैं।

भावार्थ— श्यामा जी के चरण कमल मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के अन्दर विराजमान होते हैं, अन्य किसी के भी अन्दर नहीं, चाहे वह कितना ही ज्ञानी-तपस्वी क्यों न हो।

धनी देवें सहूर सब बिध, तो नैनों निरखूं निसदिन।

आठों जाम चौंसठ घड़ी, मेरे जीव के एही जीवन॥२०॥

मेरी यही इच्छा है कि यदि धाम धनी मुझे पूर्ण रूप से आत्म-चिन्तन (समूह) में लगा दें, तो मैं दिन-रात, आठों प्रहर, चौंसठ घड़ी इन चरण कमलों को ही निहारती (देखती) रहूँ, क्योंकि ये चरण कमल ही मेरे जीवन के आधार हैं।

महामत चाहें इन चरन को, कर मनसा वाचा करमन।

आए बैठे मेरे सब अंगों, मेरे जीव के एही जीवन॥२१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मन, वाणी, और कर्म से मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि श्यामा जी के ये चरण कमल मेरे धाम हृदय में आकर विराजमान हो जायें। वस्तुतः ये ही मेरी आत्मा के आधार हैं।

द्रष्टव्य- इस चौपाई में इस प्रकार का कथन सुन्दरसाथ को सिखापन मात्र देने के लिये कहा गया है, ताकि सुन्दरसाथ युगल स्वरूप के चरणों को दिल में बसाने की राह अपनायें। श्री इन्द्रावती जी के अन्दर तो हब्से में ही युगल स्वरूप विराजमान हो गये थे।

॥ मंगला चरण संपूर्ण ॥

ए रूह सरूप नहीं तत्व को, इनको अस्वारी मन।

खान पान सुख सिनगार, ए होए रूह के चितवन॥२२॥

श्री श्यामा जी का स्वरूप पाँच तत्व का नहीं है। यह स्वरूप मन की गति के अनुसार परमधाम में कहीं भी आ-जा सकता है। लीला रूप में तरह-तरह के भोज्य पदार्थों को खाना-पीना, आनन्दमयी क्रीड़ायेँ करना, तथा श्रृंगार आदि आत्मा की इच्छा मात्र से ही हो जाते

हैं।

भावार्थ- यद्यपि इस जड़ जगत में स्थूल शरीर को आने-जाने के लिये यानों और वाहनों की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु जो सूक्ष्म शरीरधारी सिद्ध योगी होते हैं, वे पल भर में हजारों किलोमीटर की यात्रा पूरी कर लेते हैं। सम्पूर्ण परमधाम श्री राज जी के दिल (मारिफत) का ही व्यक्त स्वरूप है। जब वहाँ स्वलीला अद्वैत है, तो आने-जाने एवं अन्य क्रियाओं का मन की इच्छानुसार होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जो पेहेनावा अर्स का, अचरज अदभुत जान।

कहूँ दुनियाँ में किन बिध, किन कबहूँ न सुनिया कान॥२३॥

परमधाम में जो वस्त्र एवं आभूषण धारण किये जाते हैं, वे इतने विचित्र और आश्चर्य में डालने वाले हैं कि मेरे

सामने यह प्रश्न होता है कि मैं इसे संसार में कैसे व्यक्त करूँ। आज तक किसी ने भी अपने कानों से इस प्रकार का वर्णन कभी नहीं सुना है।

कण्ठ कान मुख नासिका, ए जो पेहेनत हैं भूखन।

ए दुनियां ज्यों पेहेनत है, जिन जानो बिध इन॥२४॥

श्यामा जी अपने गले में तथा मुखारविन्द के कान और नासिका में जो आभूषण धारण करती हैं, उसके बारे में ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि जैसे संसार के लोग आभूषण पहनते हैं, वैसे ही श्यामा जी भी पहनती हैं।

या वस्तर या भूखन, सकल अंग हाथ पाए।

सो असल ऐसे ही देखत, जैसा रूह चित्त चाहे॥२५॥

श्यामा जी के हाथ-पैर आदि सभी अंगों में जो भी वस्त्र

या आभूषण दिखायी पड़ते हैं, वास्तव में वे वैसे ही दिखायी पड़ते हैं जैसा आत्मा अपने दिल में देखना चाहती है।

अंग संग भूखन सदा, दिलके तअल्लुक असल।

ए सरूप सिनगार दिल चाहे, अर्स में नाहीं नकल॥२६॥

श्यामा जी के दिल की इच्छानुसार सभी आभूषण हमेशा ही शारीरिक अंगों से जुड़े रहते हैं। सारा श्रृंगार उनके हृदय की इच्छा से सुशोभित होता है। परमधाम के आभूषणों को यहाँ के आभूषणों की नकल नहीं समझना चाहिए।

ज्यों अंग त्यों वस्तर भूखन, होत हमेसा बने।

दिल जैसा चाहे खिन में, तैसा आगूंहीं पेहेने॥२७॥

जिस प्रकार श्यामा जी के सभी अंग नूरमयी हैं, उसी प्रकार उनके वस्त्र और आभूषण भी नूरमयी हैं। वे हमेशा उनके अंगों पर बने रहते हैं। श्यामा जी के दिल में जिस प्रकार के वस्त्र एवं आभूषण धारण करने की इच्छा होती है, क्षण भर में ही उसी तरह का श्रृंगार पहले से धारण किया हुआ दिखने लगता है।

जाको नामै कायम, अखंड बका अपार।

सोई भूल जानो अपनी, सोभा ल्याइए माहें सुमार॥२८॥

स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म का परमधाम अनादि, अनन्त, और अखण्ड है। वहाँ की अनन्त शोभा को इस संसार की सीमित शोभा में बाँधना अपनी बहुत बड़ी भूल है।

भावार्थ— परमधाम के एक कण के तेज के सामने जब

इस ब्रह्माण्ड के करोड़ों सूर्य छिप जाते हैं , तो श्री राजश्यामा जी और सखियों के एक-एक अंग की उपमा यहाँ के पदार्थों से देना हीरे को काँच कहने के समान है।

पेहेले सोभा कही सुभान की, सोई सोभा बड़ी रुह जान।

नहीं जुदागी इनमें, जुगल किसोर परवान॥२९॥

जैसी नूरमयी शोभा श्री राज जी की वर्णित की गयी है, वैसी ही शोभा श्यामा जी की भी जाननी चाहिए। युगल किशोर श्री राजश्यामा जी एक ही स्वरूप हैं और इनमें किसी प्रकार का अलगाव नहीं है।

हक सूरत को नूर हैं, जिन जानो अंग और।

इनको नूर रुहें वाहेदत, कोई और न पाइए इन ठौर॥३०॥

श्यामा जी को अलग स्वरूप नहीं समझना चाहिए ,

बल्कि ये श्री राज जी के ही नूरमयी स्वरूप के अंग हैं। इनकी अँगरूपा नूरमयी स्वरूप वाली ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, जिनका स्वरूप एकदिली में है। इनके अतिरिक्त परमधाम में और कोई नहीं है।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म और आनन्द अंग श्यामा जी दोनों ही श्री राज जी के नूरमयी अंग हैं और इनके सहित सम्पूर्ण परमधाम का स्वरूप भी नूरमयी है। अन्तर केवल इतना है कि एक स्वरूप सत् की लीला का प्रतिनिधित्व करता है, तो दूसरा आनन्द की लीला का।

शोभा स्यामाजीय की, निपट अति सुन्दर।

अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नजर॥३१॥

श्यामा जी की शोभा बहुत अधिक (अनन्त) सुन्दर है। यदि बाह्य दृष्टि को छोड़कर आत्मिक दृष्टि से देखा जाये

तो दोनों एक ही स्वरूप नजर आते हैं।

भावार्थ- बाह्य दृष्टि का तात्पर्य है – लौकिक भावों से जुड़ी हुई जीव व अन्तःकरण की दृष्टि। आत्मिक दृष्टि परमधाम की एकदिली से जुड़ी होती है और वही श्री राजश्यामा जी के स्वरूप की वास्तविक पहचान करती है।

लाल साड़ी कटाव कई, कई छापे बेली नकस।

क्यों कहूं छेड़े किनार की, सोभित अति सरस॥३२॥

श्यामा जी की साड़ी का रंग लाल है, जिस पर अनेक प्रकार के बेल-बूटे बने हुए हैं। उस पर अनेक प्रकार की लताओं के चित्र तथा छापे भी अंकित हैं। साड़ी के दोनों छोरों के किनारे बहुत ही सुन्दर सुशोभित हो रहे हैं। उनकी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

माहें जरी जवेर रंग कई, जानों आगूंहीं बने असल।

जित जुगत जो चाहिए, सोभित अपनी मिसल॥३३॥

साड़ी में सोने के तारों से अनेक रंग के जवाहरात जड़े हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ये पहले से ही वास्तव में बने हुए हैं। जहाँ जिस प्रकार की बनावट चाहिए, वहाँ वैसी ही शोभा सुशोभित हो रही है।

बेली किनार छेड़े बनी, सुन्दर अति सोभित।

कटाव फूल नकस कई, जुदी जुदी जड़ाव जुगत॥३४॥

साड़ी के पल्लू (छोर) की किनार पर बनी हुई लताएँ बहुत सुन्दर सुशोभित हो रही हैं। उसमें अनेक प्रकार के बेल-बूटे, फूल, तथा चित्र, जो अलग-अलग प्रकार की बनावट में जड़े हुए हैं, शोभा दे रहे हैं।

ऐसे ही असल के, ना कछू बुने वस्तर।

ऐसे ही भूखन बने, किन घड़े न घाट घड़तर॥३५॥

इसी प्रकार ये वस्त्र भी मूल (अनादि काल) से ही हैं। इन्हें किसी ने बुनकर नहीं बनाया है। श्यामा जी के स्वरूप की तरह आभूषण भी अनादि हैं। किसी ने इन्हें गढ़कर इतना सुन्दर नहीं बनाया है।

भावार्थ— श्यामा जी की तरह ही उनके सभी वस्त्र—आभूषण चेतन, नूरमयी, और अनादि काल से हैं। इस संसार के वस्त्र—आभूषणों की तरह इन्हें नहीं बनाया गया है।

चोली स्याम जड़ाव नंग, माहें हेम जवेर अनेक।

जड़तर कंठ उर बाहें, कहां लग कहूं विवेक॥३६॥

श्यामा जी की चोली (ब्लाउज) का रंग काला है। उसमें

सोने के साथ अनेक प्रकार के जवाहरात जड़े हुए हैं। श्यामा जी के गले, वक्षस्थल, तथा बाहों के पास वाले भाग की चोली में तरह-तरह के नग जड़े हुए हैं, जिसका शोभा का वर्णन कहाँ तक किया जाये। उसके वर्णन से बुद्धि स्तम्भित हो जाती है।

जित बेली बनी चाहिए, और कांगरी फूल।

कई नकस खजूरे बूटियां, चोली सोभित है इन सूल॥३७॥

चोली की शोभा इस प्रकार की है कि जहाँ भी लताओं, काँगरी, और फूलों की शोभा की आवश्यकता है, वहाँ वह पहले से ही बनी हुई है। कई जगह लहरीदार बेल-बूटियों के चित्र भी बने हुए हैं।

नंग हेम मिले तो कहूं, जो किन जड़े होए जड़तर।
 नकस कटाव बेली तो कहूं, जो किन बनाए होए हाथों कर॥३८॥
 ब्लाउज की शोभा में सोने के साथ जड़े हुए जवाहरातों
 का वर्णन तो तब किया जाये, जब किसी ने अपने हाथों
 से जड़कर बनाया हो। इसी प्रकार तरह-तरह की
 लताओं और बेल-बूटों के चित्रों का वर्णन तभी सम्भव
 होता है, जब किसी ने इन्हें अपने हाथों से बनाया हो।

चरनी नीली अतलस, माहें अनेक बिध के रंग।
 चीन पर बेली नकस, बीच जरी बेल फूल नंग॥३९॥
 श्यामा जी का पेटीकोट रेशमी है और नीले रंग का है।
 इस नीले रंग में अनेक प्रकार के रंग दिखायी देते हैं।
 इसकी चुन्नटों पर लताओं के चित्र अंकित हैं। बीच में
 सोने के तारों से लताओं और फूलों के चित्र बने हैं ,

जिनमें तरह-तरह के जवाहरात जड़े हुए हैं।

क्यों कहूं किनार की कांगरी, मानिक मोती सात नंग।

हीरे लसनिए पांने पोखरे, माहें पाच कुन्दन करें जंग॥४०॥

पेटीकोट की किनार पर काँगरी की शोभा आयी है, जिसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। इसमें सोने के अन्दर सात प्रकार के जवाहरात जड़े हुए हैं जो बहुत अधिक जगमगा रहे हैं। ये जवाहरात इस प्रकार हैं—माणिक, मोती, हीरा, लहसुनिया, पन्ना, पुखराज, और पाच।

वस्तर धागा न सूझहीं, सरभर जरी नकस।

वस्तर भरयो न बुन्यो किने, असल सबे एक रस॥४१॥

श्यामा जी के वस्त्रों में सोने-चाँदी के तारों से इतने

अधिक चित्र अंकित (नक्शकारी) हैं कि यह पता ही नहीं चल पाता कि इसके धागे कहाँ हैं। वास्तविकता तो यह है कि न तो इन वस्त्रों में किसी ने कशीदाकारी (स्वर्णमयी तारों से चित्र अंकित करना) की है और न किसी ने धागे से बुना है, बल्कि ये सभी श्यामा जी के नूरमयी अंगों की अभिन्न शोभा हैं।

नवरंग इन नाड़ी मिने, कंचन धात उज्जल।

ए केहेती हों सब अर्स के, ए देखो दिल निरमल॥४२॥

श्यामा जी के पेटीकोट का नाड़ा नौ रंगों का है, जो कञ्चन जैसी स्वच्छ (उज्ज्वल) धातु के समान जगमगा रहा है। यह सारी शोभा परमधाम की है और इसमें कोई भी संशय नहीं करना। हे साथ जी! अपने हृदय को स्वच्छ बनाकर आप इस अलौकिक शोभा को देखिए।

क्या वस्तर क्या भूखन, चीज सबे सुखकार।

खुसबोए रोसन नरमाई, इन बिध अर्स सिनगार॥४३॥

परमधाम का श्रृंगार इस प्रकार का है कि वस्त्र और आभूषण आदि सभी वस्तुएँ आनन्दमयी हैं और नूरमयी प्रकाश से युक्त हैं। इसके अतिरिक्त इनमें सुगन्धि और कोमलता ओत-प्रोत है।

सिर पर सोहे राखड़ी, जोत साड़ी में करे अपार।

फिरते मोती माहें मानिक, पांने पोखरे दोऊ किनार॥४४॥

श्यामा जी के सिर पर राखड़ी सुशोभित है, जो साड़ी में अपार ज्योति कर रही है। राखड़ी के बीच में मानिक का लाल रंग का नग है, जिसे घेरकर मोतियों की शोभा आयी है। दोनों किनारों पर पन्ना और पुखराज जगमगा रहे हैं।

ऊपर राखड़ी जो मानिक, क्यों देऊं इनकी मिसाल।

आसमान जिमी के बीच में, होए गयो सब लाल॥४५॥

राखड़ी के ऊपर माणिक की शोभा इतनी अधिक है कि उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। माणिक की लालिमा से धरती और आकाश लाल ही लाल दिखायी पड़ रहे हैं।

कुन्दन माहें धरे अति जोत, आकास न माए झलकार।

बेन गुंथी तीन गोफने, जड़ित घुंघरी घमकार॥४६॥

कुन्दन में जड़े हुए इस माणिक की नूरमयी ज्योति बहुत अधिक है। इसकी झलकार आकाश में नहीं समा पा रही है अर्थात् आकाश में चारों ओर फैली हुई है। बालों की चोटी परांन्दे के साथ तीन भागों में गुंथी हुई है। इन तीनों गोफनों में कुन्दन लटक रहे हैं, जिसमें जड़ी हुई घुंघरी

(घुंघरू) बहुत ही मीठी आवाज कर रही है।

तीन रंग जरी फुन्दन, गोफनड़े नंग जड़तर।

बारीक नंग नीले नकस, ए बरनन होए क्यों कर॥४७॥

तीन रंग की जरी में फुन्दन लटके हुए हैं। गोफनों में तरह-तरह के नंग जड़े हुए हैं। नीले रंग के छोटे-छोटे नगों से जो चित्रांकन (नक्शकारी) किया गया है, उसकी शोभा का वर्णन नहीं हो सकता।

भावार्थ- सोने, चाँदी आदि के तारों को जरी कहते हैं। श्यामा जी के बालों में चोटी तो एक है, किन्तु उसमें तीन लरें हैं जो आपस में परांदे के साथ गुँथी हुई है। जरी, रेशम, या धागे से परांदा बनाया जाता है, जो बालों को मिलाकर गुँथा जाता है।

गोफना फूल की आकृति में गोलाई लिये हुए होता है

और परांदे के निचले हिस्से से जुड़ा होता है। गोफनों में फुन्दन लड़ियों के सहारे जुड़े होते हैं। ये आकार में गोफनों से बहुत छोटे होते हैं और संख्या में कई होते हैं, जबकि गोफनों की संख्या मात्र तीन ही होती है। फुन्दन में घुंघरियां जड़ी होती हैं। गोफनों और गोफनड़े एकार्थवाची हैं।

पांन सोहे सेंथे पर, माहें बेल कांगरी कटाव।

हारें खजूरें बूटियां, मानों के जुगत जड़ाव॥४८॥

श्यामा जी की मांग में पान के पत्ते जैसी शोभा आयी है। उसमें तरह-तरह की लताओं, काँगरी, बेल-बूटों, तथा लहरीदार बेल-बूटियों की पंक्तियां इस प्रकार जगमगा रही हैं, जैसे किसी ने उन्हें बड़ी युक्तिपूर्वक जोड़ दिया हो।

सिर पटली मोती सरें, माहें पांच नंग के रंग।

मोती सर सेंथे लग, नीले पीले लाल सेत नंग॥४९॥

राखड़ी को बाँधने के लिये सिर पर पटली की शोभा है, जिसमें मोतियों की लरें आयी हैं। इसमें मोती, नीलवी, पुखराज, माणिक, और हीरा— ये पाँच तरह के नंग शोभायमान हो रहे हैं। इनके रंग श्वेत, नीले, पीले, और लाल हैं। मोतियों की लरें मांग के ऊपर सुशोभित हो रही हैं।

द्रष्टव्य— हीरा और मोती दोनों का रंग श्वेत होता है।

तिन नंगों के फूल बने, आगूं सिर पटली कांगरी।

निलवट से ले राखड़ी, बीच लाल मांग भरी॥५०॥

इन पाँचों प्रकार के नंगों से फूल जैसी आकृति बनी हुई है। सिर के आगे पटली में कांगरी की भी बनावट है। माथे

से लेकर राखड़ी तक लाल मांग सुशोभित हो रही है।

अदभुत सोभा ए बनी, कहूं जो होवे और काहें।

ए देखे ही बनत है, केहेनी में आवत नाहें॥५१॥

इस प्रकार की यह विचित्र शोभा है। यदि ऐसी शोभा कहीं और होती, तब तो मैं उसकी उपमा देकर वर्णन भी करती। यह सुन्दरता देखते ही बनती है। इस शब्दातीत शोभा का कथन कर पाना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

बेनी गूथी एक भांत सों, पीठ गौर ऊपर लेहेकत।

देत देखाई साड़ी मिने, फिरती घूंघरड़ी घमकत॥५२॥

श्यामा जी के बालों की चोटी बहुत ही विचित्र तरीके से गूथी हुई है। वह उनकी गोरे रंग की पीठ पर लहरा रही है

और साड़ी के अन्दर दिखायी पड़ रही है अर्थात् चोटी के ऊपर साड़ी आयी है। चोटी में लगे हुए फुन्दनों में घुंघरियां लगी है, जिनसे बहुत ही मधुर ध्वनि गूँजती रहती है।

चोली के बंध चारों बंधे, सोभित पीठ ऊपर।

झलकत फुन्दन चोली कांगरी, सोभा देखत साड़ी अंदर॥५३॥

ब्लाउज में चार बन्ध हैं, जो पीठ पर बँधे हुए सुशोभित हो रहे हैं। चोली की डोरी में लटकने वाले फुन्दनों और काँगरी की झलझलाहट भरी शोभा साड़ी के अन्दर दिखायी पड़ रही है।

ए छबि पीठ की क्यों कहूं, रंग गौर लांक सलूक।

ए सोभा केहेत सखत जीवरा, हुआ नहीं टूक टूक॥५४॥

मैं पीठ की इस अलौकिक शोभा का वर्णन कैसे करूँ। पीठ का रंग बहुत ही गोरा है और बीच की गहराई बहुत ही सुन्दर है। यह आश्चर्य की बात है कि इस अनन्त शोभा का वर्णन करते समय मेरा जीव टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गया। क्या यह इतने कठोर दिल का हो गया है?

भावार्थ- परब्रह्म के सौन्दर्य का आकर्षण इतना प्रबल होता है कि उसके पल भर के वियोग से भी जीव अपने शरीर का परित्याग करने की स्थिति में पहुँच जाता है। सौन्दर्य की रसमाधुरी का रसास्वादन करने के पश्चात् उसे शब्दों में व्यक्त करना भी इसी प्रकार कठिन होता है। इस चौपाई के चौथे चरण में "टूक टूक" कहने का यही भाव है।

मुख चौक छबि निलवट बनी, क्यों कर कहूं सिफत।

ए सोभा अर्स सरूप की, क्यों होए इन जुबां इत॥५५॥

श्यामा जी के मुखारविन्द तथा माथे के अलौकिक सौन्दर्य की महिमा का वर्णन शब्दों में हो पाना सम्भव नहीं है। यह शोभा परमधाम के उस नूरमयी स्वरूप की है। भला इसका वर्णन माया की इस जिह्वा से हो पाना कैसे सम्भव हो सकता है।

पाच हीरे मोती मानिक, बेना चौक टीका सोभित।

सैंथें लाल तले मोती सरे, नूर रोसन तेज अतंत॥५६॥

पाच, हीरा, माणिक, और मोती के नगों से जड़ा सुन्दर बेंदा ललाट पर टीके के समान शोभा दे रहा है। उसकी मोतियों की लर लाल मांग के नीचे जगमगा रही है। इसका नूरमयी तेज और प्रकाश अनन्त है।

जड़ित पानड़ी श्रवनों, लरें लाल मोती लटकत।

ए जरी जोत कही न जावहीं, पांच नंग झलकत॥५७॥

श्यामा जी ने अपने कानों में पानड़ी धारण कर रखी है।
उससे माणिक और मोती की लरें लटक रही हैं, जिसमें
सोने के तार में माणिक और मोती के नंग लटक रहे हैं।
उसकी ज्योति इतनी अधिक है कि उसका वर्णन ही नहीं
हो सकता। पानड़ी में पाँच नंग जड़े हुए हैं, जिनकी
नूरमयी आभा झलकार कर रही है।

काजल रेखा तो कहूं, जो होए सुपन के नैन।

ए स्याम सेत लाल असल, सदा सुखकारी सुख चैन॥५८॥

श्यामा जी के नेत्रों के काजल की काली रेखा का वर्णन
तो तब किया जाता, जब वे स्वप्नमयी संसार के नेत्र
होते। इन प्रेम भरे काले और सफेद नेत्रों में प्रेम की

लालिमा हमेशा ही छायी रहती है। आनन्द के स्वरूप ये नेत्र ब्रह्मसृष्टियों के लिये हमेशा ही आनन्द की वर्षा करते हैं।

भावार्थ- सामान्यतः आँखों की भौंहों, तारों, तथा पुतलियों का रंग काला होता है, तथा परदे का शेष भाग श्वेत होता है। प्रेम के उन्माद में (अधिकता) लालिमा छा जाती है, इसलिये इस चौपाई में नेत्रों के वर्णन में काले, श्वेत, और लाल रंग का वर्णन किया गया है। वस्तुतः काले रंग की अधिकता होने से आँखों का रंग विशेषकर काला ही कहा जाता है। काजल लगाकर उनके सौन्दर्य में वृद्धि की जाती है, किन्तु नूरमयी आँखों में भला काजल की क्या आवश्यकता। इस चौपाई में यही बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है।

ए तन नैन अर्स के, नहीं और कोई देह।

ए निरखो नैनों रूह के, भीगल प्रेम सनेह॥५९॥

श्यामा जी का यह तन और नेत्र परमधाम के हैं। इनकी स्थिति मायावी शरीरों जैसी नहीं है। हे साथ जी! प्रेम के रस में ओत-प्रोत होकर इस अलौकिक स्वरूप को अपने आत्मिक नेत्रों से देखिए।

भावार्थ- स्वर्ग और वैकुण्ठ आदि लोकों के शरीर भी प्रकाशमयी होते हैं। ये भी मृत्यु, बुढ़ापे, और रोग से रहित होते हैं। इसी प्रकार निराकार में स्वच्छन्द विचरण करने वाले योगिराज भी अपनी इच्छानुसार दिव्य स्वरूप धारण कर लेते हैं, किन्तु ये सभी शरीर मायाजनित होने से काल के अधीन हैं। परमधाम के तन अक्षरातीत के अंग होने से साक्षात् ब्रह्मस्वरूप होते हैं। स्वप्न में भी इनकी तुलना मायावी तनों से नहीं की जा सकती।

नैन तीखे अति अनियारे, सखी ए छबि कही न जाए।

आधे घूँघट मासूक को, निरखत नैन तिरछाए॥६०॥

श्यामा जी के नेत्र नुकीले और बाँके (तिरछे) हैं। इस शोभा का वर्णन यहाँ के शब्दों में कदापि सम्भव नहीं है। वे आधे घूँघट से, अर्थात् अपने बायें हाथ की ओर से साड़ी को कुछ खिसकाकर, प्रेम भरे तिरछे नेत्रों से श्री राज जी की ओर देखती हैं।

भावार्थ- प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप में ही "आधे घूँघट" से देखने का कथन है, जो यहाँ के भावों के अनुसार किया गया है। स्वलीला अद्वैत परमधाम की प्रेममयी लीला को संसार के भावों एवं लोकाचार में नहीं बाँधा जा सकता।

सब अंग उमंग करत हैं, करने बात रहेमान।

दिल मासूक का देख के, खँचत हैं प्रेम बान॥६१॥

अपने प्रियतम से बातें करने के लिये श्यामा जी के अंग-अंग में एक विचित्र सी उमंग भरी होती है। श्री राज जी के दिल की इच्छानुसार, वे अपनी प्रेम भरी बातों से उन्हें अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रेममयी लीला की एक हल्की सी झलक दिखायी गयी है। सामान्यतः कोई भी दिन-रात बातें नहीं करता। आशिक और माशूक (प्रेमी और प्रेमास्पद) जब एक-दूसरे के प्रेम में खोये होते हैं, तो कभी-कभी मधुर बातें भी करते हैं। आशिक की यही चाह होती है कि जब माशूक की इच्छा हो, तभी वह अपने प्रेम की अमृतधारा प्रवाहित करे। इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "दिल मासूक का देख के" का

यही अभिप्राय है।

कहा कहूं नूर तारन का, सेत लालक लिए।

काजल रेखा अनियों पर, अंग असल ही दिए॥६२॥

सफेदी और लालिमा से भरपूर श्यामा जी के नेत्रों के तारों में जो चमक (नूर) है, उसका मैं कैसे वर्णन करूँ। आँखों के कोनों पर जो काले काजल की पतली सी रेखा सुशोभित हो रही है, वह उनके वास्तविक अंग की ही शोभा है।

भावार्थ- हृदय में लहराता हुआ प्रेम का सागर आँखों से छलक उठता है, जिसे इस चौपाई में "नूर तारन का" से सम्बोधित किया गया है। बुझी हुई आँखें प्रेम से रहित होने का संकेत देती है।

तिन तारन में जो पुतलियां, माहें नूर रंग रस।

पिउ देखें प्यारी नैनों, साम सामी अरस-परस॥६३॥

नेत्रों के तारों में जो पुतलियाँ हैं, उनमें प्रेम और आनन्द का ही नूर समाया हुआ है। श्री राजश्यामा जी आमने-सामने बैठकर आपस में एक-दूसरे के नेत्रों की ओर देखते हैं। इस लीला में श्री राज जी श्यामा जी के नेत्रों में देखते हैं और श्यामा जी श्री राज जी के नेत्रों में।

भावार्थ- बिना बोले अपनी भावनाओं (प्रेम या घृणा) का प्रकटीकरण दूसरों के नेत्रों की ओर देखकर ही किया जाता है, किन्तु प्रेम लीला में नेत्रों में देखना उसके दिल में डूबने और अपने अस्तित्व को समाप्त कर देने के लिये किया जाता है। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

चकलाई चंचलाई की, छबि होए नहीं बरनन।

जो धनी देवें पट खोल के, तो तबहीं उड़े एह तन॥६४॥

श्यामा जी के इन प्रेम भरे चञ्चल नेत्रों की आकृति की सुन्दरता का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। यदि धाम धनी अपनी मेहर से हमारे आत्म-चक्षुओं को खोलकर श्यामा जी के इन नेत्रों का दीदार करा दें, तो उसी क्षण इस शरीर का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का भाव यह कदापि नहीं समझना चाहिए की श्यामा जी के नेत्रों का दर्शन होते ही शरीर छूट जायेगा (मृत्यु आ जायेगी)। वस्तुतः इसका तात्पर्य यह है कि श्यामा जी के नेत्रों का दीदार होते ही आत्मा इस शरीर और ब्रह्माण्ड से पूर्णतया अलग हो जायेगी। उसे कुछ भी सुध नहीं रहेगी, यहाँ तक कि वह स्वयं को भी भूल जायेगी।

बंके भौं भृकुटी लिए, सोभित गौर अंग।

अंग अंग भूखन भूखन, करत माहों माहें जंग॥६५॥

श्यामा जी के गोरे माथे पर काली-काली तिरछी भौंहें बहुत अधिक सुशोभित हो रही हैं। उनके प्रत्येक अंग और प्रत्येक आभूषण से निकलने वाली नूरमयी किरणें आपस में टकराकर युद्ध करती हुई प्रतीत होती हैं।

द्रष्टव्य- दोनों भौंहों के बीच का ऊपरी भाग भृकुटी कहलाता है।

दोऊ जड़ाव अदभुत, सात रंग नंग झाल।

सुच्छम झाल सोभा अति बड़ी, झांई उठत माहें गाल॥६६॥

श्यामा जी के दोनों कानों में लटकते हुए दोनों झाल बहुत ही अद्भुत शोभा को धारण किये हुए हैं। इनमें सात रंगों के नग जड़े हुए हैं। इस नूरमयी झाल की शोभा बहुत

अधिक है। श्यामा जी के दोनों गालों में इनकी नूरमयी झलक (झांई) दिखाई देती है।

भावार्थ- "झाल" एक प्रकार का आभूषण है, जो पानड़ी के नीचे होता है और इसमें से जवाहरातों की झालर लटकती रहती है। "सुच्छम" (सूक्ष्म) शब्द का तात्पर्य त्रिगुणातीत स्वरूप से है, जैसे- "सुच्छम सरूप ने उनमद अंगे"।

फूल झालों के मुख पर, सोभा लेत अति नंग।

तिन नंगों जोत उठत है, तिनके अनेक तरंग॥६७॥

श्यामा जी के मुखारविन्द (दोनों गालों) पर झालों में बने हुए फूल प्रतिबिम्बित हो रहे हैं, जिनमें जड़े हुए नग बहुत ही शोभायमान हैं। उन नगों से जो नूरमयी ज्योति निकल रही है, उससे प्रकाश की बहुत अधिक तरंगे

निकल रही हैं।

ऊपर किनार साड़ी सोभित, लाल नीली पीली जर।

छब फब बनी कोई भांत की, सेंथे लवने झाल ऊपर॥६८॥

सिर के ऊपर आयी हुई साड़ी की किनार बहुत अधिक सुशोभित हो रही है। उसमें लाल, पीले, और नीले रंग की जरी की सजावट है। साड़ी की शोभा कुछ इस प्रकार की है कि वह मांग के ऊपर से होकर दोनों ओर के कानों के आभूषणों— झाल तथा पानड़ी आदि— को छूती हुई दृष्टिगोचर हो रही है।

ए जो कांगरी इन नंग की, सोभित माहें किनार।

गौर निलवट स्याम केसों पर, जाए अंबर लगी झलकार॥६९॥

साड़ी की किनार में काँगरी बनी हुई है, जिसमें जड़े हुए

जवाहरातों के नगों की बहुत सुन्दर शोभा हो रही है। गोरे माथे पर काले-काले बालों की मनोहर लटों (अलकावली) की झलझलाहट आकाश में फैल रही है।

शोभा कहूं अंग माफक, इन सुपन जुबां अकल।

सो क्यों पोहोंचे इन सरूप लों, जो बीच कायम बका असल॥७०॥

यह सारी शोभा तो मैं यहाँ के अंगों के अनुकूल ही कह रही हूँ। मेरी जिह्वा स्वप्न की है तथा जिस बुद्धि से मैं यह प्रस्तुत कर रही हूँ, वह भी यहाँ की है। उस अनादि परमधाम में श्यामा जी का जो अखण्ड नूरमयी स्वरूप है, वहाँ तक यह वर्णन कैसे पहुँच सकता है अर्थात् मैं वहाँ का यथार्थ वर्णन कैसे कर सकती हूँ।

भावार्थ— इस शोभा के वर्णन में स्वप्न की बुद्धि के प्रयोग की जो बात कही गयी है, उसका विशिष्ट आशय

है। यद्यपि महामति के धाम हृदय में युगल स्वरूप के विराजमान होने से परमधाम की निज बुद्धि एवं अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि भी विराजमान है और उनके अन्दर ज्ञान (इल्म) का सागर भी लहरा रहा है, किन्तु उसका प्रकटीकरण इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में स्वप्न के तन से हो रहा है जिसकी कुछ निश्चित सीमायें हैं।

जीव (मरू) महामति जी के धाम हृदय में लहराते हुए ज्ञान के सागर की लहरों को जितना आत्मसात् कर रहा है, उतना ही कह पा रहा है। वास्तविकता तो यह है कि वह जितना अनुभूत करता है, उतना भी कह नहीं पाता। यही कारण है कि मेअराज (दर्शन) के पश्चात् मुहम्मद साहिब भी परमधाम का यथार्थ वर्णन नहीं कर सके। एक मुख्य तथ्य यह भी है कि आशिक (श्री महामति जी) के लिये माशूक (श्री राजश्यामा जी) की शोभा का वर्णन

कर पाना बहुत कठिन (लगभग असम्भव) होता है। यह वर्णन तो मात्र धाम धनी के हुक्म से ही सम्भव हो सका है।

गौर रंग अति गालों के, ए रंग जानें इनके तन।

अचरज अदभुत वाही देखें, जो है अर्स मोमिन॥७१॥

श्यामा जी के गालों का रंग बहुत ही गोरा है। इस रंग को तो मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही यथार्थ रूप से जानती हैं। आश्चर्य में डालने वाले गालों के इस अद्भुत सौन्दर्य को मात्र परमधाम की आत्मायें ही देख पाती हैं।

मुख चौक नेत्र नासिका, निहायत सोभा अतंत।

मुरली नासिका तेज में, सोभे नंग मोती लटकत॥७२॥

श्यामा जी के गालों सहित सम्पूर्ण मुखारविन्द , नेत्रों,

और नासिका की शोभा अनन्त है। उनकी तेजोमयी नासिका में बेसर (मुरली) है, जिसमें मोती का सुन्दर नग लटक रहा है, जिसकी शोभा बहुत अधिक है।

एक खसखस के दाने जेता, नंग रोसन अंबर भराए।

क्यों कहूं नंग मुरलीय के, ए जुबां इत क्यों पोहोंचाए॥७३॥

एक खसखस के बराबर के नग की रोशनी (ज्योति) जब पूरे आकाश में छा जाती है, तो नासिका की मुरली में जो नग लटक रहा है उसकी रोशनी का वर्णन भला यहाँ की जिह्वा कैसे कर सकती है।

भावार्थ- परमधाम की वहदत में सभी का तेज वैसे ही बराबर होता है जैसे हाथी और खरगोश की शक्ति बराबर होती है, किन्तु इस चौपाई में मात्र समझने के लिये खसखस के दाने का दृष्टान्त दिया गया है।

हक के अंग का नूर है, ए जो अर्स बका खावंद।

ए छबि इन सरूप की, क्यों केहेसी मत मंद॥७४॥

श्री श्यामा जी अखण्ड परमधाम की स्वामिनी हैं। वे श्री राज जी के अंग का नूर हैं, अर्थात् उनके दिल के प्रेम, जीवन, आनन्द आदि का स्वरूप हैं। ऐसी श्यामा जी की शोभा का वर्णन यहाँ की अल्प बुद्धि से कैसे किया जा सकता है।

भावार्थ- "हक के अंग का नूर" का तात्पर्य केवल बाह्य अंगों के नूर (तेज, ज्योति) से नहीं है, बल्कि अंग का अर्थ हृदय भी है। आशिक श्री राज जी के दिल की स्वरूपा माशूक श्यामा जी हैं। आशिक के लिये माशूक ही जीवन का आधार, सर्वस्व होता है। इस आधार पर श्यामा जी को परमधाम की स्वामिनी, आह्लादिनी, प्राणेश्वरी, हृदयेश्वरी आदि भी कहा जाता है। इस चौपाई

के चौथे चरण में "मत मंद" कहा जाना विनम्रता और शालीनता की पराकाष्ठा है, यथार्थता कदापि नहीं। इस प्रकार के कथन कीर्तन ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुए हैं, जो हमारे लिये सिखापन हैं कि हमें अहंकार से किस प्रकार दूर रहना है, जैसे—

रोम रोम कई कोट अवगुन, ऐसी मैं गुन्हेगार।

किरंतन ४१/१०

पिया ऐसी निपट मैं क्यों भई, कठिन कठोर अति ढीठ।

किरंतन ४१/२

दंत लालक लिए मुख अधुर, क्यों कहूं रंग ए लाल।

जो कछू होवे पेहेचान, तो क्यों दीजे इन मिसाल॥७५॥

श्यामा जी के गालों और अधरों की लालिमा का वर्णन मैं कैसे करूँ। इनकी लालिमा से दाँत भी लाल दिखायी

दे रहे हैं। यदि मुखारविन्द की इस अनन्त शोभा की थोड़ी सी भी पहचान हो जाये, तो इस झूठे संसार की किसी भी वस्तु से उसकी उपमा नहीं दी जा सकती।

भावार्थ- यद्यपि दाँतों और मोती का रंग श्वेत है, किन्तु होंठों की लालिमा से ये भी लाल हो जाते हैं।

सुन्दर सरूप श्यामाजीय को, अर्स अखंड सिनगार।

रूह मुख निरख्यो चाहत, उर पर लटकत हार॥७६॥

श्यामा जी का स्वरूप बहुत ही सुन्दर है। वे परमधाम के अखण्ड श्रृंगार से सुशोभित हैं। उनके हृदय कमल पर हार जगमगा रहे हैं। ऐसी अलौकिक शोभा वाली श्यामा जी के सुन्दर मुखारविन्द के दीदार की इच्छा आत्मा में हमेशा ही बनी रहती है।

एक हार मोती निरमल, और मानिक जोत धरत।

तीसरा हार लसनियां, सो सोभा लेत अतंत॥७७॥

श्यामा जी के गले में एक हार मोती का है, जो बहुत ही स्वच्छ (उज्ज्वल) है। दूसरा हार माणिक का है, जिससे ज्योति निकल रही है। तीसरा हार लहसुनिया का है, जिसकी शोभा अनन्त है।

चौथा हार हीरन का, पांचमा सुन्दर नीलवी।

इन हारों बीच दुगदुगी, देखत सोभा अति भली॥७८॥

चौथा हार जगमगाते हुए हीरों का है। पाँचवा हार बहुत सुन्दर है, जो नीलम का है। इन हारों के बीच में दुगदुगी दिखायी पड़ रही है, जिसकी शोभा बहुत ही प्यारी लग रही है।

क्यों कहूं नंग दुगदुगी, ए पांचों सैन्या चढ़ाए।

जंग करें माहें जुदे जुदे, पांचों अंबर में न समाए॥७९॥

दुगदुगी के पाँचों नगों की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।
ऐसा प्रतीत होता है, जैसे पाँच हारों की ज्योति रूपी
सेना के विरुद्ध पाँच दुगदुगी के नगों की ज्योति रूपी
सेना युद्ध कर रही है, अर्थात् पाँचों हार और पाँचों
दुगदुगी के नग आपस में युद्ध कर रहे हैं। इन पाँचों
लॉकेटों की ज्योति से सम्पूर्ण आकाश भरा हुआ है।

भावार्थ- दुगदुगी को लॉकेट (pendant) भी कहते हैं।
यह सोने की गोल आकृति में बनी होती है, जिसके बीच
में वही जवाहरात जुड़ा होता है जिसका हार होता है।
उसे घेर कर चारों ओर अन्य छोटे-छोटे नग होते हैं।
दुगदुगी की शोभा प्रत्येक हार में आयी है।

पाँचों ऊपर हार हेंम का, मुख मोती सिरे नीलवी।

ए हार अति बिराजत, जड़तर चौपकली॥८०॥

इन पाँचों हारों के ऊपर सोने का बना हुआ चौपकली का हार है, जिसके मुख पर मोती और किनारे पर नीलम जड़ा हुआ है। यह हार बहुत ही सुन्दर लग रहा है।

पांच पाने पुखराज, जरी मांहे जड़ित।

चौपकली का हार जो, उर ऊपर लटकत॥८१॥

श्यामा जी के हृदय कमल पर यह चौपकली का हार सुशोभित हो रहा है। इसमें सोने के तार (जंजीर) में पाच, पन्ना, और पुखराज भी जड़े हुए हैं।

ऊपर चोली के कांठले, बेल लगत कांगरी।

ऊपर चौपकलीय के, मोती मानिक पाने जरी॥८२॥

श्यामा जी के ब्लाउज के गले वाले भाग में काँगरी बनी है, जिसमें लताओं (बेलों) की सुन्दर शोभा आयी है। इसके ऊपर चौपकली का हार आया है, जिसमें सोने के तार में मोती, माणिक, और पन्ना जड़े हुए हैं।

पांच लरी चीड़ तिन पर, कंठ लग आई सोए।

रंग नंग धात अर्स के, इन जुबां सिफत क्यों होए॥८३॥

चौपकली के ऊपर पाँच लड़ियों वाला चीड़ का हार है। इसकी लड़ियाँ कण्ठ तक आई हैं। इन हारों में दिखायी देने वाले रंग, नग, और धातुएँ परमधाम की हैं। इनकी महिमा का वर्णन इस जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है।

सात हार के फुमक, जगमगे सातों रंग।

मूल बंध बेनी तले, बन रहे ऊपर अंग॥८४॥

इन सात हारों के सात फुम्मक हैं, जो सात रंगों में अपनी अलौकिक शोभा से जगमगा रहे हैं। इन हारों के मूल बन्ध पीठ पर चोटी के नीचे बने हुए हैं।

बाजू बंध दोऊ बने, जरी फुमक लटकत।

हीरे लसनिएं नीलवी, देख देख रूह अटकत॥८५॥

श्यामा जी के दोनों हाथों में दो बाजूबन्द सुशोभित हो रहे हैं। इनमें सोने के तारों में फुम्मक लटक रहे हैं, जिनमें हीरा, लहसुनिया, और नीलम के मनोहर नग जड़े हुए हैं। इनकी अलौकिक शोभा को देखते ही आत्मा की दृष्टि अटकी रह (ठहर) जाती है। वहाँ से वह हटने का नाम ही नहीं लेती।

नवरंग रतन नंग चूड़ के, अर्स धात न सोभा सुमार।

चूड़ जोत जो करत है, आकास न माए झलकार॥८६॥

श्यामा जी की अति कोमल कलाइयों में नौ रंग के रत्नों के नगों में चूड़ (कंकण) सुशोभित है। परमधाम की जिन धातुओं में ये नग जड़े हुए हैं, उनकी शोभा की कोई सीमा ही नहीं है। चूड़ से निकलने वाली नूरमयी ज्योति की झलझलाहट आकाश में नहीं समा पा रही है, अर्थात् चारों ओर ज्योति ही ज्योति दिखायी पड़ रही है।

नवरंग रतन चूड़ के, जुदी जुदी चूड़ी झलकत।

जोत सों जोत लरत है, सोभा अर्स कहूं क्यों इत॥८७॥

नौ रंग वाले इस रत्नमयी चूड़ में अलग-अलग चूड़ियाँ दिखायी दे रही हैं, जिनकी झलकार चारों ओर फैल रही है। उनसे निकलने वाली ज्योति आपस में टकराकर युद्ध

करते हुए प्रतीत हो रही है। परमधाम की इस अलौकिक शोभा का वर्णन इस झूठे संसार में मैं कैसे करूँ।

अतंत जोत इन धात में, इन नंग में जोत अतंत।

अतंत जोत रंग रेसम, तीनों नरमाई एक सिफत॥८८॥

परमधाम की इन धातुओं और नगों में अनन्त नूरमयी ज्योति विद्यमान है। वहाँ के रंगों और रेशमी वस्त्रों से भी अनन्त ज्योति छिटक रही है। विशेष बात यह है कि परमधाम की धातुएँ और नग कालमाया की तरह कठोर नहीं है, बल्कि रेशम की तरह कोमल हैं। वहाँ की एकदिली में धातुओं, नगों, और रेशम की कोमलता पूर्णतया समान है।

कंचन जड़ित जो कंकनी, माहें बाजत झनझनकार।

बेल फूल नकस जड़े, झलकत चूड़ किनार॥८९॥

नगों से जड़ी हुई सोने की कंकनी है, जो अन्दर से पोली है और झन्-झन् की मधुर ध्वनि करती है। इसमें नगों के द्वारा बनी हुई लताओं और फूलों के चित्र अंकित हैं। इसकी बगल में कलाई की किनार पर नवचूड़ अपनी नूरमयी शोभा से झलकार कर रहा है।

निरमल पोहोंची नवघरी, पांच पांच दोऊ के नंग।

अर्स रसायन में जड़े, करत मिनो मिने जंग॥९०॥

पोहोंची और नवघरी बहुत ही सुन्दर हैं। दोनों में परमधाम के रसायन में ओत-प्रोत पाँच-पाँच नग जड़े हुए हैं। इन नगों से इस प्रकार किरणें उठती हैं, जैसे उनका आपस में युद्ध हो रहा है।

भावार्थ- परमधाम की प्रत्येक वस्तु में प्रेम, आनन्द, नूरमयी सौन्दर्य, सुगन्धि, और कोमलता छिपी हुई है। इसी को परमधाम का रसायन कहते हैं। रसायन का तात्पर्य है- "जीवन को आनन्दित करने वाली औषधि।" वस्तुतः ब्रह्मसृष्टियों के लिये धनी का प्रेम, सौन्दर्य, और आनन्द ही जीवन का आधार है, सर्वस्व है।

"करत जंग" आलंकारिक भाषा है। जब किरणें आपस में टकराती हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे युद्ध कर रही हैं। वहाँ तो मात्र प्रेम ही प्रेम है। मायावी युद्ध की वहाँ कल्पना भी नहीं की जा सकती।

हथेली लीकें क्यों कहूं, नरम हाथ उज्जल।

रंग पोहोंचे का क्यों कहूं, इत जुबां ना सके चल॥९१॥

श्यामा जी के दोनों हाथ बहुत ही कोमल और उज्जवल

हैं। हथेली में दृष्टिगोचर होने वाली अति सुन्दर रेखाओं का मैं कैसे वर्णन करूँ। पँजे की सुन्दरता का वर्णन करने में मेरी जिह्वा किसी प्रकार से समर्थ नहीं है।

पांच अंगुरियां पतली, जुदी जुदी पांचों जिनस।

अर्स अंग की क्यों कहूँ, उज्जल लाल रंग रस॥९२॥

प्रत्येक हाथ की पाँचों अँगुलियां पतली हैं और अलग – अलग आकार की हैं अर्थात् छोटी – बड़ी हैं। परमधाम के इन अंगों की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ , जिनमें उज्ज्वलता में लालिमा घुली हुई है तथा आनन्द और प्रेम का रस ओत – प्रोत हो रहा है।

आठ रंग के नंग की, पेहेरी जो मुंदरी।

एक कंचन एक आरसी, सोभित दसों अंगुरी॥९३॥

श्यामा जी की आठ अँगुलियों में आठ मुद्रिकायें हैं, जो आठ प्रकार के नगों की हैं तथा इनके रंग भी अलग – अलग आठ प्रकार के हैं। दोनों अँगूठों में दो अँगूठियां हैं – एक सोने की है और दूसरी में हीरा जड़ा है जो दर्पण का कार्य करता है। इस प्रकार की शोभा से उनकी दसों अँगुलियां सुशोभित हो रही हैं।

मानिक मोती लसनिएं, पाच पांने पुखराज।

गोमादिक और नीलवी, आठों अंगुरी रही बिराज॥९४॥

माणिक, मोती, लहसुनिया, पाच, पन्ना, पुखराज, गोमेद, और नीलम के नगों की आठ मुद्रिकायें हैं, जो आठ अँगुलियों में शोभायमान हैं।

अंगूठे हीरे की आरसी, दसमी जड़ित अति सार।

ए जो दरपन माहें देखत, अंबर न माए झलकार॥९५॥

हाथ के दोनों अँगूठों में अँगूठियों की शोभा है। एक शुद्ध सोने की है, तो दूसरी हीरे की है। अँगूठी में हीरा इस प्रकार जड़ा हुआ है कि श्यामा जी उसे दर्पण के रूप में प्रयोग करती हैं और उसमें अपना श्रृंगार देखती हैं। इस हीरे की झलकार आकाश में चारों ओर फैली हुई है।

नख निमूना देऊं हीरों का, सो मैं दिया न जाए।

एक नख जरे की जोत तले, कई सूरज कोट ढंपाए॥९६॥

यदि मैं श्यामा जी के नाखूनों की तुलना हीरे से करूँ, तो यह कदापि उचित नहीं होगा। उनके नाखून के एक कण की ज्योति के सामने करोड़ों सूर्यों का प्रकाश छिप जाता है (ढक जाता है)।

अब कहूँ चरन कमल की, जो अर्स रूहों के जीवन।

बसत हमेसा चरन तले, जो अरवाह अर्स के तन॥९७॥

अब मैं श्यामा जी के उन चरण कमलों की शोभा का वर्णन करती हूँ, जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के जीवन के आधार हैं। जिन आत्माओं के मूल तन परमधाम में हैं, वे हमेशा ही इन चरणों में वास करती हैं, अर्थात् उनका ध्यान हमेशा ही श्यामा जी के नूरी चरणों में बना रहता है।

चरन तली अति कोमल, रंग लाल लाँके दोए।

मिहीं रेखा माहें कई विध, ए बरनन कैसे होए॥९८॥

श्यामा जी के चरणों की तलियाँ (तलवा) बहुत ही कोमल हैं तथा दोनों चरणों की एड़ियों और पँजों के बीच की गहराई वाले भाग (लाँक) का रंग लाल है। उसमें कई

प्रकार की बारीक रेखायें हैं, जिनकी शोभा का वर्णन कर पाना किसी प्रकार से सम्भव नहीं है।

ए जो सलूकी चरन की, निपट सोभा सुन्दर।

जो कोई अरवा अर्स की, चुभ रहेत हैड़े अन्दर॥९९॥

इन चरणों की बनावट की शोभा बहुत ही सुन्दर है। यह अलौकिक शोभा परमधाम की आत्माओं के धाम हृदय में चुभ जाती है अर्थात् अखण्ड रूप से विराजमान हो जाती है।

कोई नहीं इनका निमूना, पोहोंचे अति सोभित।

टांकन घूटी काड़े एड़ियां, पांउ तली अति झलकत॥१००॥

दोनों चरणों के पँजों की शोभा बहुत अधिक है। इस संसार में इनकी सुन्दरता की उपमा अन्य किसी भी

वस्तु में नहीं दी जा सकती। दोनों चरणों के टखने , घूंटियां, काड़े, एड़ियाँ, तथा तलुए बहुत ही झलझला रहे हैं।

भावार्थ- एड़ी का ऊपरी भाग टखना कहलाता है। उसके बगल में उभरी हुई हड्डी का भाग घूँटी कहलाता है, तथा हाथों की कलाई की तरह पैर के जिस भाग में पायल आदि आभूषण पहने जाते हैं उसे काड़ा कहते हैं।

ए छब फब सब देख के, इन चरन तले बसत।

ए सुख अर्स रूहें जानहीं, जिनकी ए निसबत॥१०१॥

इस अलौकिक सौन्दर्य की सारी शोभा को देखकर ब्रह्मसृष्टियाँ श्यामा जी के चरणों के ध्यान में ही डूबी रहती हैं। उससे मिलने वाले आनन्द को मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जिनका इन चरणों से

अखण्ड सम्बन्ध होता है।

द्रष्टव्य- इस चौपाई से चितवनि की महत्ता निर्विवाद प्रमाणित होती है।

चारों जोड़े चरन के, झांझर घूंघर कड़ी।

कांबिए नंग अर्स के, जानों के चारों जोड़े जड़ी॥१०२॥

श्यामा जी के दोनों चरण कमलों में चार - चार आभूषण- झांझरी, घूंघरी, कांबी, और कड़ी जगमगा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे परमधाम के नूरमयी नगों से ही ये सारे आभूषण जड़े गये हैं।

नंग नीले पीले झांझरी, और मोती मानिक पांने जरी।

निरमल नाके कंचन, रंग लाल लिए घूंघरी॥१०३॥

झांझरी के अन्दर जरी में मोती, माणिक, पन्ना, तथा नीले-पीले रंग के अन्य बहुत से नग जड़े हुए हैं। घुंघरियों का रंग लाल है। उनमें कञ्चन के बहुत ही सुन्दर कुण्डे लगे हुए हैं।

भावार्थ- झांझरी पैरों में पहने जाने वाली पायल होती है। घूंघरी छोटी पायल जैसी होती है। इसमें ऊपर जंजीर होती है, जिसमें तरह-तरह की चित्रकारी की गयी होती है। नीचे घुंघरियां लटक रही होती हैं।

गांठे वाले रसायन सों, अर्स के पांचों नंग।

घूंघरी नाकों बीच पीपर, फुमक करत जवेरों जंग॥१०४॥

आनन्द, प्रेम, सुगन्धि, कोमलता, और नूरमयी-सौन्दर्य रसायन हैं। सभी घुंघरियां इनसे ओत-प्रोत हैं। इसी प्रकार परमधाम के पाँचों नग - हीरा, माणिक,

मोती, नीलम और पुखराज- भी घुंघरियों में जड़े हुए हैं। घुंघरियों और कुण्डों के बीच में पीपल के पत्ते जैसी शोभा है। इनमें लगे हुए फुम्मकों की ज्योति जवाहरातों के नगों से होड़ (युद्ध) करती हुई प्रतीत हो रही है, अर्थात् दोनों की ज्योतियाँ आपस में टकरा रही हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह प्रश्न होता है कि इन पाँच नगों की ही इतनी महत्ता क्यों है कि उन्हें परमधाम के नग कहा गया है, क्या परमधाम में और नग नहीं हैं?

यह बात बहुत पहले ही कही जा चुकी है कि परमधाम में प्रत्येक वस्तु "अनन्त" की संख्या में है। वहाँ किसी भी वस्तु को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है। इसी प्रकार परमधाम में जवाहरात और उनके नग भी अनन्त हैं, किन्तु इस मायावी जगत में इन पाँच नगों को विशिष्ट माना जाता है। यही कारण है कि अतिविशिष्टता वाले इन

नगों को परमधाम के श्रृंगार में भी प्राथमिकता दी गयी है।

हीरे लसनिएं हेम में, कड़ी जोत झलकत।

नीलवी कुन्दन कांबिए, जानों जोत एही अतंत॥१०५॥

कड़ी स्वर्ण की बनी है, जिसमें हीरे और लहसुनियाँ के नग जड़े हुए हैं। इनकी ज्योति झलकार कर रही है। शुद्ध स्वर्णमयी (कुन्दनमयी) कांबी में नीलम के नग जड़े हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इनकी नूरी ज्योति अनन्त है (सबसे अच्छी है)।

भावार्थ- कांबी जंजीर की तरह होती है, जिसमें अनेक कड़ियाँ जुड़ी होती हैं। एक-एक कड़ी में अनेक प्रकार के नग जड़े होते हैं। कांबी की प्रत्येक जंजीर के मनकों में पुतलियाँ बनी होती है। कड़ी अन्दर से पोली होती है और इसमें कई प्रकार के नग जड़े होते हैं।

बोलत बानी माधुरी, चलत होत रनकार।

खुसबोए तेज नरमाई, जोत को नाही पार॥१०६॥

जब श्यामा जी चलती हैं, तो इन आभूषणों से अति मधुर शब्दों की मन्द-मन्द ध्वनि निकला करती है। इन सभी आभूषणों में सुगन्धि और कोमलता भरी हुई है। इनके तेज और ज्योति की कोई सीमा नहीं है।

अंगुरिं अनवट बिछिया, पांने मानिक मोती सार।

स्वर मीठे बाजत चलते, करत हैं ठमकार॥१०७॥

श्यामा जी के दोनों चरण कमलों के अँगूठों में अनवट तथा अँगुलियों में बिछिया की शोभा आयी है। इनमें विशेष रूप से पन्ना, माणिक, तथा मोती के नग जड़े हुए हैं। जब श्यामा जी चलती हैं, तो इन आभूषणों से बहुत ही मीठे स्वर बजा करते हैं।

नख अंगूठे अंगुरियां, अंबर न माए झलकार।

ढांपत कोटक सूरज, और सीतलता सुखकार॥१०८॥

चरणों के अँगूठों तथा अँगुलियों के नाखूनों में इतना तेज है कि उसकी झलकार से आकाश परिपूर्ण हो रहा है। इनके तेज के सामने करोड़ों सूर्यों का प्रकाश फीका पड़ जाता है (छिप जाता है), किन्तु यह दाहकारक नहीं है, बल्कि शीतल और आनन्ददायक हैं।

एक नख के तेज सों, ढांपत कई कोट सूर।

जो कहूं कोटान कोटक, तो न आवे एक नख के नूर॥१०९॥

उनके एक नख के तेज के सामने करोड़ों सूर्य छिप जाते हैं। यदि मैं करोड़ों सूर्यों के तेज की तुलना श्यामा जी के केवल एक नख के नूर से करूँ, तो भी यह उचित नहीं होगा।

कोई भांत तरह जो अर्स की, पेट पांसे उर अंग सब।

हाथ पांउं कंठ मुख की, किन बिध कहूं ए छब॥११०॥

श्यामा जी की परमधाम में कुछ इस प्रकार की शोभा है कि किसी तरह से भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके पेट, पसलियाँ, हृदय कमल, तथा अन्य सभी अंग सौन्दर्य के साक्षात् स्वरूप हैं। उनके हस्तकमल, पैर, गले, तथा मुखारविन्द की अनन्त शोभा का वर्णन करने का सामर्थ्य यहाँ के शब्दों में नहीं है।

कोनी कलाई अंगुरी, पेट पांसे उर खभे।

हाथ पांउं पीठ मुख छब, हक नूर के अंग सबे॥१११॥

श्यामा जी की कोहनी, कलाई, अँगुलियां, पेट, पसलियाँ, वक्षस्थल, दोनों कन्धे, हाथ, पैर, पीठ, और मुख आदि सभी अंग श्री राज जी के नूर के अंग हैं,

इसलिये इनकी शोभा शब्दों से परे है।

मैं सोभा बरनों इन जुबां, ले मसाला इत का।

सो क्यों पोहोंचे इन सांई को, जो बीच अर्स बका॥११२॥

मैं श्यामा जी की इस अलौकिक शोभा का वर्णन यहाँ की ही उपमा देकर यहाँ की जिह्वा से कर रही हूँ। परमधाम में विराजमान श्यामा जी के अखण्ड स्वरूप के वर्णन में आने वाले इस संसार के झूठे शब्द भला वहाँ कैसे पहुँच सकते हैं। यह स्पष्ट है कि इस संसार के शब्दों द्वारा उस अखण्ड शोभा का वर्णन कदापि सम्भव नहीं है।

बीड़ी सोभित मुख में, मोरत लाल तंबोल।

सोभा इन सूरत की, नहीं पटंतर तौल॥११३॥

जब श्यामा जी अपने मुख में पानों का बीड़ा चबाती हैं, तो उसकी लालिमा से उनका मुखारविन्द इतना सुन्दर दिखता है कि उनके सौन्दर्य की तुलना किसी से भी नहीं हो सकती।

भावार्थ- परमधाम के वहदत में किसी भी प्रक्रिया से प्रेम या सौन्दर्य का घटना-बढ़ना सम्भव नहीं है। यह कथन यहाँ के भावों के अनुसार कहा गया है।

सुच्छम वय उनमद अंगे, सोभा लेत किसोर।

बका वय कबूं न बदले, प्रेम सनेह भर जोर॥११४॥

श्यामा जी की अवस्था त्रिगुणातीत है और परिवर्तन से रहित है। वे सर्वदा किशोरावस्था में ही शोभायमान रहती हैं। अखण्ड परमधाम में कभी भी अवस्था नहीं बदला करती। उनका अंग-अंग प्रेम की मस्ती से भरपूर रहता

है।

भावार्थ- सूक्ष्म का विपरीत शब्द स्थूल होता है। इस नश्वर जगत की अवस्था हमेशा ही बदलती रहती है, इसलिये परमधाम की अवस्था को सूक्ष्म कहने का तात्पर्य एकरस रहने वाली अपरिवर्तनीय अवस्था से है। किशोर अवस्था सौन्दर्य के वास्तविक स्वरूप को दर्शाने वाली होती है। इस प्रकार परमधाम में श्री राजश्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, खूब खुशालियाँ, तथा पशु-पक्षी सर्वदा किशोर अवस्था में ही रहते हैं। अक्षर ब्रह्म को बाल स्वरूप कहना बहुत बड़ी भ्रान्ति है।

नाम लेत इन सरूप को, सुपन देह उड़ जाए।

जो लों रूह ना इस्क, तोलों केहेत बनाए॥११५॥

श्यामा जी की इस अलौकिक शोभा का नाम मात्र भी

चिन्तन शरीर की स्मृति (आभास) को समाप्त कर देता है। जब तक आत्मा में प्रियतम का प्रेम नहीं आता, तभी तक शोभा-श्रृंगार को शब्दों के माध्यम से कहा-सुना जाता है।

भावार्थ- इस चौपाई में नाम लेने का तात्पर्य "श्यामा जी" कहने से नहीं है, बल्कि श्यामा जी की शोभा में थोड़ा भी खो जाने से है। "सुपन देह उड़ जाए" का भाव यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि यहाँ शरीर छूटने की बात कही गयी है। यहाँ आशय यह है कि उस अनन्त शोभा की एक झलक में खो जाने पर हमें ऐसा आभास होता है कि हम हैं ही नहीं।

प्रेम (इश्क) शब्दातीत है। उस अवस्था में शोभा-श्रृंगार का वर्णन करना सम्भव नहीं होता। यहाँ यह संशय हो सकता है कि क्या श्री महामति जी के अन्दर इश्क नहीं

था, जो उन्होंने युगल स्वरूप की शोभा का वर्णन किया?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि श्री महामति जी के अन्दर तो इश्क के सागर स्वयं अक्षरातीत ही विराजमान हैं और स्वयं अपने हुक्म द्वारा शोभा-श्रृंगार का वर्णन करवा रहे हैं, किन्तु यह कथन उन सुन्दरसाथ के लिये सिखापन है जो युगल स्वरूप के श्रृंगार वर्णन को ही इश्क में डूब जाना मान लेते हैं और अपने को कृतार्थ मान बैठते हैं।

कोटान कोट बेर इन मुख पर, निरख निरख बलि जाऊँ।

ए सुख कहूँ मैं तिन आगे, अपनी रूह अर्स की पाऊँ॥११६॥

श्यामा जी के मुख की इस अलौकिक शोभा को देख-देखकर मैं करोड़ों बार बलिहारी जाती हूँ (न्योछावर

होती हूँ)। उनके दर्शन से मिलने वाले सुख को मैं केवल परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों से ही कहना चाहूँगी।

भावार्थ- इस चौपाई में श्यामा जी के मुखारविन्द की शोभा के दर्शन से मिलने वाले सुख को केवल ब्रह्मसृष्टियों से ही कहने का कारण यह है कि मूल सम्बन्ध न होने से जीव सृष्टि युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार और चितवनि के महत्व को नहीं जानती। वह प्रेम लक्षणा भक्ति के नाम पर केवल बाह्य दिखावे एवं कर्मकाण्ड को ही सब कुछ माने रहती है।

मुख छबि अति बिराजत, सोभित सब सिनगार।

देख अंगूठे आरसी, भूखन करत झलकार॥११७॥

श्यामा जी के मुख की सुन्दरता बहुत अधिक सुशोभित हो रही है। उनके सम्पूर्ण श्रृंगार की शोभा भी अलौकिक

है। जब श्यामा जी अँगूठे में लगे हीरे के दर्पण में अपना श्रृंगार देखती हैं, तो सभी आभूषण और अधिक झलकार करने लगते हैं।

भावार्थ- परमधाम की सभी वस्तुएँ श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के आशिक हैं। श्यामा जी द्वारा धारण किये गये वस्त्र-आभूषण भी चेतन (आत्म-स्वरूप) हैं। इसलिये जब वे अपना श्रृंगार देखती हैं, तो आभूषण भी श्यामा जी को रिझाने के लिये मचल उठते हैं और अधिक शोभा से झलकार करने लगते हैं।

भौं भृकुटी नैन मुख नासिका, हरवटी अधुर गाल कान।
हाथ पांउं उर कण्ठ हँसैं, सब नाचत मिलन सुभान॥११८॥
उस समय श्यामा जी की दोनों भौंहें, भृकुटी (दोनों भौंहों के बीच का स्थान), नेत्र, मुख, नासिका, तुड्डी,

होंठ, गाल, कान, हाथ-पैर, हृदय, और गला हँसने लगते हैं। सभी राज जी से मिलने के लिये प्रसन्नता से नाच उठते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि माशूक (श्री राज जी) से मिलने के लिये आशिक (श्यामा जी) के एक-एक अंग में कितनी प्रसन्नता और उमंग भरी होती है। वस्तुतः परमधाम का एक-एक कण आशिक और माशूक के रूप में लीलामग्न है।

तेज जोत प्रकास में, सोभा सुंदरता अनेक।

कहा कहूं मुखारबिंद की, नेक नेक से नेक॥११९॥

श्यामा जी के नूरमयी तेज से निकलने वाली ज्योति के प्रकाश में उनकी शोभा और सुन्दरता अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती है। मैं उनके मुखारविन्द की अनन्त

शोभा का कैसे वर्णन करूँ। मैंने तो थोड़े से भी थोड़ा (कम से कम) अंश मात्र ही वर्णन किया है।

भावार्थ- तेज से ज्योति एवं ज्योति से प्रकाश का प्रकटीकरण होता है। इस सम्बन्ध में अन्यत्र भी कहा गया है- "तेज जोत प्रकास जो नूर, सब ठौरों सीतल सत सूर।" इसी प्रकार सौन्दर्य से सुन्दरता प्रकट होती है, जो शोभा के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

श्रवन कण्ठ हाथ पांउं के, भूखन सोभित अपार।

एक भूखन नकस कई रंग, रुह कहा करे दिल विचार॥१२०॥

श्यामा जी के दोनों कानों, गले, तथा हाथ-पैरों के आभूषणों की शोभा अपार है। एक-एक आभूषण के एक ही चित्र में अनेक प्रकार के रंग हैं। आत्मा उसकी शोभा के बारे में भला अपने दिल में कितना विचार कर सकती

है।

नेक सिनगार कह्या इन जुबां, क्यों बरनवाए सुख ए।

ए सोभा ना आवे सब्द में, नेक कह्या वास्ते रूहों के॥१२१॥

मैंने तो यहाँ की जिह्वा से श्यामा जी के श्रृंगार का अति अल्प अंश (बहुत थोड़ा सा) ही वर्णन किया है। श्यामा जी की शोभा और उसके दीदार से मिलने वाले सुख का वर्णन यहाँ के शब्दों में नहीं हो सकता। परमधाम की आत्माओं के लिये मैंने थोड़ा सा वर्णन कर दिया है।

भावार्थ— यह सम्पूर्ण वर्णन श्री महामति जी ने हक की "मैं" लेकर किया है। दिल में अक्षरातीत के विराजमान हुए बिना कोई भी अपनी शक्ति से उनकी शोभा का वर्णन नहीं कर सकता।

मीठी जुबां स्वर बान मुख, बोलत लिए अति प्रेम।

पिउ सों बातें मुख हंसैं, लिए करें मरजादा नेम॥१२२॥

जब श्यामा जी अपने प्राणवल्लभ श्री राज जी से बातें करती हैं, तो उनके मुख पर मुस्कराहट (मन्द-मन्द हँसी) छायी रहती है। वे बोलते समय अपने हृदय में बहुत प्रेम लिये होती हैं। उनके मुख से निकलने वाले शब्दों के स्वर बहुत ही मीठे होते हैं, किन्तु उनकी यह वार्ता मर्यादा के अनुकूल होती है।

भावार्थ- संसार में सामान्यतः नारी वर्ग में अनावश्यक रूप से अत्यधिक बातें करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। यह स्थिति उबाऊ और कष्टकारी होती है। श्यामा जी तो अक्षरातीत की आनन्द शक्ति हैं। उनकी वार्ता में कदापि वाचालता नहीं आती। यही मर्यादा का नियम है। वाणी का स्वरूप सत्य, प्रिय, और हितकारी होना चाहिए।

कटुता और अनावश्यक वाचालता से भरी वाणी हृदय के लिये दुःखदायी होती है।

सामी सैन देत सुख चैन की, उतपन अंग अतंत।

कोमल हिरदे अति विचार, क्यों कहूं नरमाई सिफत॥१२३॥

श्यामा जी के नेत्रों से मिलने वाले प्रेम के संकेतों से श्री राज जी सहित सखियों के हृदय में बहुत ही (अनन्त) सुख-चैन की अनुभूति होती है। श्यामा जी के हृदय और विचारों में बहुत ही कोमलता है। उनकी कोमलता की महिमा का वर्णन करने के लिये इस संसार में कोई भी शब्द नहीं है।

चातुरी गति की क्यों कहूं, सब बोले चाले सुध होत।

अव्वल इस्क सब खूबियां, हक के अंग की जोत॥१२४॥

श्यामा जी जब अपने नूरी चरण कमल धरती पर रखती हैं, तो बहुत ही कोमलतापूर्वक रखती हैं। उनकी चाल में प्रेम भरी चतुराई होती है। इस प्रेममयी लीला की सुध तो बोलने से ही हो सकती है। अक्षरातीत के दिल में ज्योति रूपी जो प्रेम (इश्क) का सागर लहरा रहा है, उसी का प्रकट रूप यह प्रेममयी लीला है।

भावार्थ— परमधाम की धरती भी आत्मा का स्वरूप है और इश्कमयी है। उसका स्वरूप सखियों की तरह कोमल है। वह आशिक के रूप में यही चाहती है कि श्यामा जी के नूरी चरण कमल किस प्रकार मेरे ऊपर पड़ें। इधर, श्यामा जी सोचती हैं कि मैं अपनी माशूक धरती के ऊपर कितनी कोमलता से पाँव रखूँ। इस प्रकार वे बहुत ही सावधानी से कोमलतापूर्वक अपने चरण कमल धरती पर रखती हैं। इसी को चलने की

चतुराई कहा गया है, यानि श्यामा जी हार नहीं मानना चाहतीं, क्योंकि उनके पाँवों के पड़ने से कहीं उनके प्रेम में कमी न दिखे। दोनों का मौन प्रेम चल रहा है। धरती अपने को अधिक से अधिक कोमल बनाना चाहती है, तो श्यामा जी भी अपने चरणों को अत्यधिक कोमलता से रखना चाहती हैं। यदि वे दोनों अपने मुख से कुछ कहते, तब तो किसी को सुध होती। यह भेद महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर स्वयं धाम धनी ने खोला है, तब इसकी सुध हुई है।

यहाँ यह संशय होता है कि क्या परमधाम में सखियों को इसका ज्ञान नहीं था?

इसके उत्तर में यही कहा जायेगा कि परमधाम में जो एकदिली है, वह श्री राज जी को रिझाने के लिये है। वहाँ सभी धाम धनी को रिझाते हैं, इसलिये सभी स्वयं को

आशिक मानते हैं। सभी के दिल का प्रेम बराबर है, इसलिये कोई भी स्वयं को माशूक मानने के लिये तैयार नहीं है। इश्क रब्द का मूलतः यही कारण है। अक्षरातीत के हृदय में इश्क का गंजानगंज सागर लहरा रहा है, जिसे इस चौपाई में दिल (अंग) की ज्योति कहा गया है। वही मूल इश्क (मारिफत) है, जिसका प्रकट रूप श्यामा जी, सखियों, खूब-खुशालियों, पक्षियों, और पच्चीस पक्षों के रूप में लीला कर रहा है। यह सभी श्री राज जी के आशिक हैं और उन्हीं के स्वरूप हैं। श्री राज जी के इश्क की यही विशेषता (खूबी) है कि वे ही स्वयं सभी रूपों में लीला कर रहे हैं, लेकिन लीला स्वरूप अपने मूल स्वरूप (श्री राज जी) को रिझाते हुए भी उनकी पूर्ण पहचान नहीं कर पा रहे हैं। यह सारी पहचान इस ब्रह्मवाणी द्वारा ही सम्भव हो सकी है।

मुख मीठी अति रसना, चुभ रहेत रूह के माहें।

सो जानें रूहें अर्स की, न आवे केहेनी में क्याहें॥१२५॥

श्यामा जी के मुखारविन्द से बहुत ही मीठी वाणी का झरना बहता है, अर्थात् वे बहुत ही मधुर बोलती हैं। अमृत से भी अधिक मीठे उनके शब्द आत्मा के हृदय में अंकित हो (चुभ) जाते हैं। इस आनन्द को मात्र परमधाम की आत्मायें ही जानती हैं। इसे शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं है।

क्यों कहूं गति चलन की, जो स्यामाजी पांउं भरत।

नाहीं निमूना इनका, जो गति स्यामा जी चलत॥१२६॥

श्यामा जी अपनी प्रेम भरी अदा से चलते समय जिस प्रकार अपने कदमों को धरती पर रखती हैं, उस शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता और उनकी इस चाल

की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती।

बलि बलि जाऊं चाल गति की, भूखन तेज करे झलकार।

गिरदवाए मिलावा रूहन का, सब सोभा साज सिनगार॥१२७॥

मैं श्यामा जी की उस प्रेम भरी मस्त चाल पर बलिहारी जाती हूँ, जिससे उनके आभूषणों का तेज और अधिक झलकार करने लगता है। उनके चारों ओर सखियों का समूह होता है, जो सम्पूर्ण शोभा और श्रृंगार से युक्त होता है।

सोभा बड़ी सब रूहों की, सब के वस्तर भूखन।

जोत न माए आकास में, यों घेर चली रोसन॥१२८॥

सभी सखियों की शोभा बहुत अधिक है। उनके वस्त्रों तथा आभूषणों की ज्योति इतनी अधिक है कि वह

आकाश में नहीं समाती, अर्थात् चारों ओर फैली हुई है। इस प्रकार सभी सखियाँ श्यामा जी को घेरकर चलती हैं, अर्थात् सखियों से घिरी हुई श्यामा जी चलती हैं।

अर्स मिलावा ले चली, अपने संग सुभान।

किया चाहया सब दिल का, आगूं आए लिए मेहेरबान॥१२९॥

परमधाम में श्यामा जी सभी सखियों को अपने साथ लेकर श्री राज जी के पास आती हैं। धाम धनी आगे आकर उनकी अगवानी (स्वागत) करते हैं और उनके दिल की सारी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं।

भावार्थ— परमधाम की लीला में यह प्रसंग श्यामा जी का सखियों सहित तीसरी भूमिका के आसमानी रंग के मन्दिर से चलकर २८ थम्भ के चौक से होते हुए चबूतरे की सीढ़ियों पर श्री राज जी के पास जाने का है, किन्तु

इस जागनी लीला में इसका अर्थ इस प्रकार होगा—

श्यामा जी अपनी रसना रूपी वाणी के द्वारा सभी सखियों की सुरताओं को परमधाम के मूल मिलावा में ले जाती हैं। जो सुन्दरसाथ अपने दिल में धनी की शोभा को बसाते हैं, श्री राज जी उनके धाम दिल में आकर प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं और उनकी सारी आत्मिक इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी की ये चौपाइयाँ ध्यान देने योग्य हैं—

एही लैलत कदर की फजर, उग्या बका दिन रोसन।

हक खिलवत जाहेर करी, अर्स पोहोंचे हादी मोमिन॥

सागर ६/१४०

मेंहेदी हदां कर दई, घर इमाम बतायी राह।

पोहोंचे अर्स मेयराज को, हंस मिलियां रूहें खुदाए॥

सनंध ४२/२७

मैं लिख्या है तुमको, एक बार करो मोहे साद।

दस बार जी जी कहूं, कर कर तुमको याद।।

सिनगार २१/२३

ए सोभा जुगल किसोर की, चौथा सागर सुख।

जो हक तोहे हिंमत देवहीं, तो पी प्याले हो सनमुख।।१३०।।

हे मेरी आत्मा! यह चौथा सागर युगल किशोर श्री राजश्यामा जी की शोभा के सुख का है। यदि धाम धनी अपनी मेहर से तुझे अन्तःप्रेरणा (हिम्मत) देते हैं, तो तू उनके सम्मुख होकर अर्थात् उनका दर्शन कर उनकी शोभा के अमृत रूपी रस के प्याले को पी।

जुगल के सुख केते कहूं, जो देत खिलवत कर हेत।

सो सुख इन नेहेरन सों, धनी फेर फेर तोको देत॥१३१॥

मेरी आत्मा! युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी आपस में बहुत लाड-प्यार से एक-दूसरे को जो सुख देते हैं, उनका वर्णन मैं यहाँ के शब्दों से कैसे करूँ। उसी सुख को धाम धनी अपनी ब्रह्मवाणी रूपी नहरों (खिलवत, परिक्रमा, सागर, और सिनगार) द्वारा तुम्हें बार-बार दे रहे हैं।

भावार्थ- प्रेम का सुख ही खिलवत का सुख है, जिसमें आशिक और माशूक (श्री राजश्यामा जी) एक-दूसरे के दिल में पूर्णतया बसे होते हैं। आत्माओं के धाम हृदय में परमधाम की चार किताबों (खिलवत, परिक्रमा, सागर, और सिनगार) द्वारा यह रस प्रवाहित होता है, इसलिए इन किताबों की उपमा नहरों से दी गयी है जिसकी लहरों

(चौपाइयों) में छिपे आनन्द का रसपान ब्रह्मात्मायें किया करती हैं।

ए बानी सब सुपन में, और सुपने में करी सिफत।

सो क्यों पोहोंचे सोभा जुगल को, सुपन कौन निसबत॥१३२॥

युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का वर्णन करने वाली यह सम्पूर्ण ब्रह्मवाणी इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में कही गयी है। स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड के नश्वर पदार्थों से उपमा देकर ही युगल स्वरूप की महिमा दर्शायी गयी है। ऐसी स्थिति में इस वर्णन को युगल स्वरूप की वास्तविक शोभा का वर्णन नहीं माना जा सकता। इस मायावी जगत से परमधाम का भला क्या सम्बन्ध हो सकता है।

सब्द न पोहोंचे सुभान को, तो क्यों रहों चौप कर।

दिल कान जुबां ले चलत, हक तरफ बांए नजर॥१३३॥

यद्यपि यहाँ के शब्द श्री राज जी तक नहीं पहुँचते, फिर भी मैं चुप क्यों रहूँ। मेरा दिल धनी के दीदार का प्यासा है। मेरे कान (आत्मिक) उनकी मधुर वाणी सुनना चाहते हैं, तो मेरी जिह्वा (आत्मिक) उनसे बातें करना चाहती है, इसलिये मेरी आत्मा युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की ओर ही अपनी दृष्टि रखती है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "युगल स्वरूप" श्री राजश्यामा जी की ओर अपनी आत्मिक दृष्टि रखने की बात कही गयी है, अकेले श्री राज जी या केवल श्री श्यामा जी की ओर नहीं, क्योंकि चितवनि में हमारा आत्मिक स्वरूप जो युगल स्वरूप के सम्मुख होगा, उसके दायीं ओर श्यामा जी होंगी तथा बायीं ओर राज

जी होंगे।

एते दिन ढांपे रहे, किन कही ना हकीकत।

जो अजुं न बोलत दुनी में, तो जाहेर होए ना हक सूरत॥१३४॥

आज दिन तक किसी ने भी युगल स्वरूप (हकीकत) की शोभा-श्रृंगार का वर्णन नहीं किया था, इसलिये सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रति सारा संसार अनभिज्ञ ही रहा। यदि मैं अब भी धाम धनी की शोभा का वर्णन नहीं करती, तो यह शोभा संसार में नहीं फैल पाती (जाहिर न हो पाती)।

ए द्वार दुनी में क्यों खोलिए, ए जो गैब हक खिलवत।

सो द्वार खोले मैं हुकमें, अर्स बका हक मारफत॥१३५॥

अक्षरातीत के मूल मिलावा की इन छिपी हुई गुह्य बातों

के भेद भला इस संसार में क्यों कहें, किन्तु धाम धनी का ऐसा हुक्म था जिसके कारण मैंने उनकी मैं लेकर अखण्ड परमधाम और श्री राज जी के दिल की गुह्यतम (मारिफत की) बातों को जाहिर किया।

भावार्थ- इस चौपाई में "खिलवत" का तात्पर्य मूल मिलावा से इसलिये माना गया है कि इस सागर ग्रन्थ में युगल स्वरूप तथा सखियों की शोभा का वर्णन किया गया है।

"मारफत" (विज्ञान) का तात्पर्य ऐसे ज्ञान से है, जिसके द्वारा श्री राज जी के उस स्वरूप की पूर्ण पहचान होती है, जो परमधाम में भी नहीं हो सकी थी।

दुनियां से ढांपे रहे, अर्स बका एते दिन।

रेहेत अब भी ढांपिया, जो करे ना रूह रोसन॥१३६॥

आज तक संसार के लोगों को अखण्ड परमधाम का ज्ञान नहीं था। यदि मेरी आत्मा के द्वारा इस ज्ञान का उजाला नहीं किया जाता, तो इस परमधाम के बारे में अब भी कोई नहीं जान सकता था।

ए खोले बड़ा सुख होत है, मेरी रूह और रूहन।

इनसे हैयाती पावहीं, चौदे तबक त्रैगुन॥१३७॥

परमधाम के ज्ञान का दरवाजा सभी के लिये खुल जाने से मुझ सहित अन्य सभी आत्माओं को बहुत ही आनन्द हो रहा है। इस अलौकिक ज्ञान के द्वारा ही ब्रह्मा, विष्णु, और शिव सहित चौदह लोकों के सभी प्राणी शाश्वत आनन्द की प्राप्ति करेंगे।

भावार्थ— यद्यपि भगवान विष्णु और शिव अक्षर ब्रह्म की सुरता कहलाते हैं और इन्हें योगमाया का सुख भी प्राप्त

है, किन्तु इन्हें अक्षरातीत की पहचान नहीं है। तारतम ज्ञान द्वारा अक्षरातीत की पहचान हो जाने पर इनके अखण्ड आनन्द का स्वरूप कुछ और ही होगा। चौथे चरण में यही बात दर्शायी गयी है।

कियामत सरत पोहोंचे बिना, तो ढांपे रहे एते दिन।

हकें आखिर अपने कौल पर, किए जाहेर आगूं रूहन॥१३८॥

कियामत का समय आने से पहले परमधाम का यह ज्ञान जाहिर नहीं हो सका था। धाम धनी ने कियामत के समय परमधाम के अलौकिक ज्ञान के अवतरण करने का जो वचन दिया था, उसे अपने समय पर ब्रह्मसृष्टियों के बीच प्रकट कर दिया।

भावार्थ— तफ्सीर-ए-हुसैनी पारा २७ पृष्ठ ४४६ में संकेत में यह वर्णन है कि कियामत के समय अर्श-ए-

अजीम का गुह्य ज्ञान अवतरित होगा।

ए जो कहे मैं सरूप, जुगल किसोर अनूप।

दई साहेदी महंमद रुहअल्ला, किए जाहेर अर्स सरूप॥१३९॥

मैंने परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की अलौकिक शोभा का जो वर्णन कर उसे सुन्दरसाथ में जाहिर किया है, उसकी साक्षी मुहम्मद साहिब ने कुरआन में दी है तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने भी उसका वर्णन किया है।

भावार्थ- कुरआन की व्याख्या तफसीर-ए-हुसैनी में पारा २८ सूरे नज्म आयत १ पृष्ठ ४५६ में परब्रह्म के स्वरूप के बारे में संकेत किया गया है, उसमें मुहम्मद साहिब कहते हैं कि मैंने दिल की आँखों से शब -ए- मेअराज में दो बार नूर में खुदा तआला को देखा। सूरे नूर

पृष्ठ ११३ – अल्लाह का नाम ही नूर है।

पारा १७ पृष्ठ ५३६ – सातवें आसमान से भी परे सदरतुल मुंतहा (सतस्वरूप), बैतुल मामूर (अक्षर ब्रह्म के रंगमहल), हौज कौसर, व नहर उल रहमत (मेहर का सागर) को देखा। हजरत जिबरील सदरतुल मुंतहा से आगे नहीं जा सके। अल्लाह ने कहा – मेरे करीब आ जाओ। यहाँ तक कि जहाँ अल्लाह बैठे थे, वहाँ तक वे पहुँच गये। उन दोनों के बीच में धनुष के दो कोनों के बराबर की दूरी थी।

एही लैलत कदर की फजर, ऊग्या बका दिन रोसन।

हक खिलवत जाहेर करी, अर्स पोहोंचे हादी मोमिन॥१४०॥

कियामत के समय परमधाम के ज्ञान का अवतरण ही लैल-तुल-कद्र की रात्रि में उजाला होना कहा गया है ,

जिसमें दिन के उजाले के समान परमधाम का ज्ञान फैल जायेगा। इस समय परमधाम की खिल्वत जाहिर होने से श्यामा जी सहित ब्रह्मसृष्टियाँ चितवनि (ध्यान) द्वारा यहीं बैठे-बैठे परमधाम का इस प्रकार साक्षात्कार करेंगी, जैसे वे परमधाम में ही हों।

भावार्थ- बृहत्सदाशिव संहिता में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि परब्रह्म के आवेश से युक्त अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि अवतरित होगी, जिससे ब्रह्मप्रियाओं को जाग्रत करने वाला ज्ञान प्रकट होगा-

चिदावेशवती बुद्धिरक्षरस्य महात्मनः

प्रबोधाय प्रियाणाम् भविष्यति भारताजिरे।

महामत कहे अपनी रूह को, और अर्स रूहन।

इन सुख सागर में झीलते, आओ अपने वतन॥१४१॥

श्री महामति जी अपनी आत्मा एवं परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि आप सभी युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार रूपी इस आनन्द के सागर में स्नान कीजिए और अपने निजधाम लौटिए।

भावार्थ- इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है कि इस संसार में यदि अपनी आत्मा को जाग्रत करना है और परमधाम के आनन्द की अनुभूति करनी है, तो युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा साधन नहीं है।

प्रकरण ॥६॥ चौपाई ॥४९०॥

चौसठ थंभ चौक खिलवत का बेवरा

इस प्रकरण में मूल मिलावा की शोभा का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इन विध साथ जी जागिए, बताए देऊं रे जीवन।

स्याम स्यामा जी साथ जी, जित बैठे चौक वतन॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरे जीवन स्वरूप हे सुन्दरसाथ जी! मैं आपको जीने की कला बता रहा हूँ। परमधाम के मूल मिलावा में युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी और आपके मूल तन विराजमान हैं। उनकी शोभा को अपने धाम हृदय में बसाकर अपनी आत्मा को जाग्रत कीजिए।

भावार्थ— चार चौरस हवेलियों के बाद चार गोल हवेलियाँ आती हैं। मूल मिलावा चार चौरस हवेलियों के

बाद पाँचवीं गोल हवेली के रूप में है , इसलिये मूल मिलावा को चौक के रूप में वर्णित किया गया है। वास्तविक जीवन की कला तो मूल मिलावा के ध्यान में ही छिपी है।

याद करो सोई साइत, जो हँसने मांग्या खेल।

सो खेल खुसाली लेय के, उठो कीजे केलि॥२॥

हे साथ जी! आप उस घड़ी को याद कीजिए, जब आपने धाम धनी से यह हँसी का खेल माँगा था। अब इस खेल के आनन्द को लेकर जाग्रत होइए और धाम धनी से प्रेम लीला का आनन्द लीजिए।

भावार्थ— यह जिज्ञासा हो सकती है कि इस चौपाई में कहाँ जाग्रत होने की बात कही गयी है— परात्म में या इस संसार में?

वस्तुतः इस चौपाई में दोनों जगह की जाग्रति के लिये सम्बोधन है। यह निर्विवाद सत्य है कि इस संसार में मात्र आत्मा की ही जागनी होगी और वह भी आगे-पीछे, जबकि परात्म में जागनी सामूहिक ही होगी क्योंकि वहाँ वहदत की भूमिका है।

सुरत एकै राखिए, मूल मिलावे माहें।

स्याम स्यामाजी साथजी, तले भोम बैठे हैं जाहें॥३॥

हमें अपनी सुरता (ध्यान) प्रथम भूमिका के उस मूल मिलावा में रखनी चाहिये, जहाँ युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी और सुन्दरसाथ बैठे हुए हैं।

चौसठ थंभ चबूतरा, इत कठेड़ा बिराजत।

तले गिलम ऊपर चन्द्रवा, चौसठ थंभों भर इत॥४॥

गोल चबूतरे की किनार पर चौंसठ थम्भ आये हैं, जिनके बीच में कठेड़े की शोभा है। चबूतरे की सतह पर एक हाथ मोटी मखमली गिलम (कालीन) बिछी हुई है और चौंसठ थम्भों के ऊपर चन्द्रवा झलकार कर रहा है।

कठेड़ा किनार पर, चबूतरे गिरदवाए।

सोले थंभों लगता, ए जुगत अति सोभाए॥५॥

चबूतरे की किनार पर चारों ओर कठेड़े की शोभा है, किन्तु चारों दिशाओं में ३ – ३ सीढ़ियों के होने से वहाँ कठेड़ा नहीं है। बाकी चारों खाँचों में सोल –सोलह थम्भों से लगकर कठेड़ा आया है। इस प्रकार की बनावट बहुत शोभा दे रही है।

चार द्वार चारों तरफों, और कठेड़ा सब पर।

चौसठ थंभों के बीच में, गिलम बिछाई भर कर॥६॥

चबूतरे की चारों दिशाओं में चार मेहराबी द्वार हैं, जहाँ से ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। सीढ़ियों की जगह छोड़कर बाकी जगह में थम्भों के मध्य कठेड़ा शोभायमान है। चौंसठ थम्भों वाले इस चबूतरे की सम्पूर्ण जगह पर अति कोमल गलीचा बिछा हुआ है।

कहूं चौसठ थंभों का बेवरा, चार धातु बारे नंग।

बने चारों तरफों जुदे जुदे, भए सोले जिनसों रंग॥७॥

अब चौंसठ थम्भों का विवरण बताती हूँ। इन चौंसठ थम्भों में सोलह-सोलह थम्भों के चार भाग (खाँचे) आये हैं। इनमें प्रत्येक भाग में चार थम्भ धातुओं के हैं तथा बारह थम्भ नगों के हैं। इस कारण प्रत्येक भाग में

रंग भी सोलह प्रकार के हो गये हैं।

चारों तरफों एक एक रंग के, तैसी तरफों चार।

नए नए रंग एक दूजे संग, चारों तरफों चौसठ सुमार॥८॥

चारों भागों में एक-एक रंग (नग या धात) का एक-एक थम्भ ही आया है। इस प्रकार प्रत्येक भाग के १६ थम्भ अलग-अलग १६ रंगों के हैं। इस कारण प्रत्येक भाग में अलग-अलग (नये-नये) रंग के थम्भ एक-दूसरे के साथ (क्रमशः) जगमगा रहे हैं। इस प्रकार चारों भागों में ६४ थम्भों की शोभा है, जिनमें अलग-अलग रंग के प्रत्येक नग या धात चार बार आये हैं।

ए चार नाम कहे धात के, हेम कंचन चांदी नूर।

ए चार रंग का बेवरा, लिए खड़े जहूर॥९॥

जिन धातुओं के थम्भ आये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं— स्वर्ण (हेम), कञ्चन, चाँदी, और नूर (लोहा)। इनके रंग भी अलग-अलग शोभा से युक्त हैं।

भावार्थ— स्वर्ण (हेम) का रंग कुछ पीलापन लिये होता है, किन्तु जब उसे साढ़े सोलह बार अग्नि में तपाया जाता है तो उसका रंग लालिमा से भरपूर हो जाता है और उसे कञ्चन कहा जाता है। इस प्रकार चाँदी का रंग श्वेत तथा लोहे का रंग भूरा होता है।

और बारे जवेरों का बेवरा, पाच पांने हीरे पुखराज।

मानिक मोती गोमादिक, रहे पिरोजे बिराज॥१०॥

बारह जवाहरातों का विवरण इस प्रकार है— पाच, पन्ना, हीरा, पुखराज, माणिक, मोती, गोमेद, और पिरोजा।

नीलवी और लसनियां, और परवाली लाल।

और रंग कपूरिया, ए रंग बारे इन मिसाल॥११॥

नीलम, लहसुनिया, प्रवाल, और कर्पूरिया हैं। इनमें प्रवाल का रंग लाल आया है तथा कर्पूरिया का रंग पूर्णतया श्वेत है।

भावार्थ- प्रवाल तथा कर्पूरिया के अतिरिक्त अन्य जवाहरातों के रंग इस प्रकार हैं- हरा (पाच), आसमानी (पन्ना), श्वेत (हीरा), पीला (पुखराज), लाल (माणिक), श्वेत (मोती), हल्का कत्थई (गोमेद), हल्का नीला (पिरोजा), नीला (नीलम), और लहसुन के रंग का (लहसुनिया)।

चार द्वार चार रंग के, आठ थंभ भए जो इन।

पाच मानिक और नीलवी, द्वार पुखराज चौथा रोसन॥१२॥

चबूतरे की चारों दिशाओं के चार द्वारों के थम्भों के रंग इस प्रकार हैं— पूर्व दिशा में पाच के दो थम्भ, पश्चिम में नीलम के दो थम्भ, उत्तर दिशा में पुखराज के दो थम्भ, तथा दक्षिण में द्वार के दोनों थम्भ माणिक के आये हैं। इस प्रकार चार रंग के कुल आठ थम्भ हुए।

और थंभ दोए पाच के, दोऊ तरफों नीलवी संग।

द्वार नीलवी संग दोए पाच के, करें साम सामी जंग॥१३॥

पूर्व दिशा में दरवाजे के दो थम्भ जो पाच के आये हैं, उनके अगल-बगल के दोनों थम्भ नीलम के हैं। इसी प्रकार पश्चिम के दरवाजे में आये हुए नीलम के दोनों थम्भों के बगल में पाच के दो थम्भ आये हुए हैं। इनके रंगों की ज्योति आमने-सामने टकराती है।

भावार्थ— पूर्व दिशा में आये हुए पाच के दोनों थम्भ

पश्चिम दिशा में आये हुए पाच के दोनों थम्भों के समान हैं। इनकी ज्योति जब आमने-सामने मिलती है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें युद्ध चल रहा है। यही स्थिति नीलवी, पुखराज, माणिक, तथा अन्य थम्भों की भी है।

दो थंभ द्वार मानिक के, दोए पुखराज तिन पास।

दोए थंभ द्वार पुखराज के, ता संग मानिक करे प्रकास॥१४॥

दक्षिण दिशा में दरवाजे के दोनों थम्भ माणिक (लाल रंग) के हैं। उनके पास के (बगल के) दोनों थम्भ पुखराज (पीले रंग) के हैं। इसी प्रकार उत्तर की दिशा में दो थम्भ पुखराज के हैं और उनके बगल के दोनों थम्भ माणिक के हैं।

थंभ बारे भए इन बिध, साम सामी एक एक।

यों बारे बने साम सामी, तरफ चारों इन विवेक॥१५॥

इस प्रकार इन थम्भों को छोड़कर सभी चारों भागों में बारह-बारह थम्भ बचते हैं। ये सभी बारह थम्भ एक-एक भाग में एक-एक रंग के आमने-सामने आये हैं। इस प्रकार चारों ओर इन अड़तालीस थम्भों की विचित्र शोभा आयी है।

हीरा लसनियां गोमादिक, मोती पाने परवाल।

हेम चांदी थंभ नूर के, थंभ कंचन अति लाल॥१६॥

यदि पूर्व या पश्चिम से इन थम्भों को देखा जाये , तो उनका क्रम इस प्रकार होता है- हीरा, लहसुनिया, गोमेद, मोती, पन्ना, प्रवाल, स्वर्ण, चाँदी, लोहा, और अत्यधिक लालिमा से युक्त कञ्चन के थम्भ।

पिरोजा और कपूरिया, याके आठ थंभ रंग दोए।

गिन छोड़े दोए द्वार से, बने हर रंग चार चार सोए॥१७॥

इसके पश्चात् पिरोजा और कर्पूरिया के थम्भ शोभा देते हैं। इन दो रंगों वाले कुल आठ थम्भ हैं, जो प्रत्येक खाँचे (भाग) में दो-दो (१ पिरोजा, १ कर्पूरिया) के हिसाब से आये हैं। ये १२ थम्भ पूर्व व पश्चिम के दरवाजों के पास में हीरे से शुरु होकर उत्तर व दक्षिण के दरवाजों के पास में पिरोजा और कर्पूरिया पर खत्म होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक रंग के आमने-सामने चार-चार थम्भ आयेंगे।

ए सोले थंभों का बेवरा, थंभ चार चार एक रंग के।

सो चारों तरफों साम सामी, बने मिसल चौसठ ए॥१८॥

इस प्रकार सोलह थम्भों का यह संक्षिप्त विवरण है। एक-एक रंग के कुल चार-चार थम्भ हैं और चारों भागों

में आमने-सामने शोभा देते हैं। इन चौसठ थम्भों की शोभा इस प्रकार की आयी है।

चारों तरफों चंद्रवा, चौसठ थंभों के बीच।

जोत करे सब जवेरों, जेता तले दुलीच॥१९॥

चौंसठ थम्भों के बीच की सम्पूर्ण ऊपरी जगह की छत पर चन्द्रवा आया हुआ है। चबूतरे की सतह पर जो गिलम (दुलीचा) बिछी है, उसके ऊपर चन्द्रवा में जड़े हुए जवाहरातों की ज्योति फैली हुई है।

भावार्थ- चौंसठ थम्भों के बीच में मेहरावें आयी हुई हैं। उन मेहरावों के ऊपर छत की तरह चन्द्रवा की शोभा आयी है। उसमें अनेक प्रकार के जवाहरात जड़े हुए हैं।

माहें बिरिख बेली कई कटाव, कई फूल पात नकस।

देख जवेर जुगत कई चंद्रवा, जानों के अति सरस॥२०॥

चन्द्रवा के अन्दर जवाहरातों से अनेक प्रकार के वृक्षों, लताओं, बेल-बूटों, फूलों, तथा पत्तियों आदि के चित्र अंकित हैं। उनकी यह शोभा बहुत ही सुन्दर दिखायी पड़ रही है।

इन चौक बिछाई गिलम, ता पर सिंघासन।

चारों तरफों झलकत, जोत लेहेरी उठत किरन॥२१॥

चबूतरे के ऊपर मखमली (पशमी) गिलम बिछी हुई है। उसके ऊपर मध्य में सिंहासन रखा हुआ है। उसकी झलकार चारों ओर फैल रही है। नूरमयी सिंहासन से निकलने वाली ज्योतिर्मयी लहरों से प्रकाश की किरणें उठ रही हैं।

झलकत सुन्दर गिलम, अति सोभित सिंघासन।

यों जोत जमी जवेरन की, बीच जुगल जोत रोसन॥२२॥

बिछी हुई सुन्दर गिलम अपनी नूरमयी आभा से झलकार कर रही है। उस पर रखा हुआ सिंहासन भी बहुत अधिक सुशोभित हो रहा है। वहाँ की धरती (चबूतरे की सतह) जवाहरातों की है, जिससे उठने वाली नूरमयी ज्योति के बीच युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की ज्योति प्रकाशित हो रही है।

लाल तकिए ऊपर सोभित, धरे बराबर एक दोर।

नरमों में अति नरम हैं, पसम भरे अति जोर॥२३॥

गिलम के ऊपर कठेड़े से लगते हुए लाल रंग के तकिए सुशोभित हो रहे हैं। वे समान ऊँचाई में थम्भों के बीच में रखे हुए हैं। वे मखमली कोमलता से भरे हैं और इतने

कोमल हैं कि उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण में "कोमल से भी अधिक कोमल" कहने का भाव यह है कि उनकी कोमलता शब्दातीत है।

जेता एक कठेड़ा, सब में सुन्दर तकिए।

तिन तकियों साथ भराए के, बैठे एक दिली ले॥२४॥

दो थम्भों के बीच में कठेड़े की जो माप आयी है, उसी माप के बराबर के सुन्दर-सुन्दर तकिये सभी थम्भों के बीच में आये हैं। उन तकियों के साथ लगकर सभी सुन्दरसाथ एकदिली के भाव से सम्पूर्ण गिलम पर भरकर बैठे हैं।

भावार्थ- कठेड़े के साथ लगे हुए तकियों के सहारे बैठने का जो अनुभव सुन्दरसाथ को होता है, वही अनुभव

आगे बैठे हुए बिना तकिये वाले सुन्दरसाथ को भी होता है क्योंकि वहाँ एकदिली है। इस चौपाई के चौथे चरण में यही बात दर्शायी गयी है।

जिन बिध बैठियां बीच में, याही बिध गिरदवाए।

तरफ चारों लग कठेड़े, बीच बैठा साथ भराए॥२५॥

जिस प्रकार सखियाँ सिंहासन के पास बीच में बैठी हुई हैं, उसी प्रकार कठेड़े के साथ लगकर चारों ओर बैठी हुई हैं। सारा सुन्दरसाथ कठेड़े और सिंहासन के बीच की जगह में भरकर बैठा हुआ है।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण से यह भाव निकलता है कि सुन्दरसाथ अनार के दानों की तरह इस प्रकार बैठा है कि उसमें कहीं भी आने-जाने की कोई जगह नहीं है।

किरना उठें नई नई, सिंघासन की जोत।

कई तरंग इन जोत के, नूर नंगों से होत॥२६॥

नूरमयी सिंहासन की ज्योति से नई-नई किरणें उठ रही हैं। सिंहासन में जड़े हुए नूरमयी नंगों से ज्योति की अनेक प्रकार की तरंगें प्रवाहित होती रहती हैं।

पाइए इन तखत के, उत्तम रंग कंचन।

छे डांडे छे पाइयों पर, अति सुन्दर सिंघासन॥२७॥

इस सिंहासन के पाए बहुत ही श्रेष्ठ कञ्चन रंग के आए हैं। छः डाण्डों और छः पायों पर अति सुन्दर सिंहासन स्थित है।

भावार्थ- सिंहासन में तीन पाये आगे तथा तीन पीछे आये हैं। इन्हीं पायों के ऊपर डाण्डों की शोभा है , जिनसे जुड़कर सम्पूर्ण सिंहासन की बनावट आयी है।

दस रंग डांडों देखत, नए नए सोभित जे।

हर तरफों रंग जुदे जुदे, दसों दिस देखत ए॥२८॥

हर डाण्डे में दस पहल हैं। प्रत्येक पहल का रंग अलग-अलग है। इन दस पहलों की दसों दिशाओं में डाण्डे के अलग-अलग प्रकार के नए-नए रंग दिखायी देते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में डाण्डे के प्रत्येक पहल के सामने की दिशा ही उसकी दिशा मानी जाती है। यहाँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊपर, और नीचे की इन दस दिशाओं से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

एक तरफ देखत एक रंग, तरफ दूजी दूजा रंग।

यों दसो दिस रंग देखत, तिन रंग रंग कई तरंग॥२९॥

डाण्डे के एक पहल की ओर एक रंग दिखायी पड़ता है,

तो दूसरी ओर दूसरा रंग दिखायी पड़ता है। इस प्रकार दसों दिशाओं में अलग-अलग रंग दिखायी पड़ते हैं। इनमें प्रत्येक रंग में से कई अन्य रंगों की तरंगें निकलती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का भाव यह है कि डाण्डे के किसी भी पहल के किसी भी रंग से अनेक प्रकार के नूरमयी रंगों का प्रवाह होता रहता है, जैसे- यदि किसी पहल का रंग पीला है, तो उससे लाल, हरे, नीले, आदि अनेक रंगों की तरंगें निकलती हुई दिखायी देती हैं।

तीन डांडे जो पीछले, दो तकिए बीच तिन।

कई रंग बिरिख बेली बूटियां, ए कैसे होए बरनन॥३०॥

सिंहासन में जो पीछे के तीन डाण्डे आये हैं, उनके बीच

में दो तकिए रखे हुए हैं। इन नूरमयी तकियों में अनेक प्रकार के वृक्षों, लताओं, तथा बेल-बूटों की शोभा आयी है, जिनका वर्णन करना सम्भव नहीं है।

चारों किनारे चढ़ती, दोरी बेली चढ़ती चार।

चारों तरफों फूल चढ़ते, करत अति झलकार॥३१॥

सिंहासन के चारों किनारों पर बेलों की बहुत ही सुन्दर चार-चार पँक्तियां आयी हुई हैं। इनमें जड़े हुए फूल बहुत अधिक झलकार कर रहे हैं।

तिन डांडों पर छत्रियां, अति सोभित हैं दोए।

माहें कई दोरी बेली कांगरी, क्यों कहूं सोभा सोए॥३२॥

इन छः डाण्डों के आधार पर दो छत्रियाँ आयी हैं, जिनकी शोभा बहुत अधिक है। इन छत्रियों में लताओं

तथा काँगरी की अनेकों पँक्तियां आयी हैं, जिनकी अलौकिक शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

भावार्थ- वस्तुतः दोनों छत्रियाँ सिंहासन की उस छत में आयी हैं, जो छः डाण्डों के आधार में स्थित हैं। यह तथ्य आगे की चौपाई में स्पष्ट कर दिया गया है।

दोए कलस दोए छत्रियों, छे कलस ऊपर डांडन।

आठों के अवकास में, करत जंग रोसन॥३३॥

दोनों छत्रियों के ऊपर दो कलशों की शोभा है तथा छः डाण्डों पर भी छः कलश आये हैं। इस प्रकार कुल आठ कलश हैं। इन आठों कलश के बीच की खाली जगह में नूरमयी किरणें जब आपस में टकराती हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे युद्ध कर रही हैं।

नकस फूल कटाव कई, कई तेज जोत जुगत।

देख देख के देखिए, नैनां क्योंए न होए तृपित॥३४॥

इन कलशों में अनेक प्रकार के फूलों और बेल-बूटों की शोभा है, जिनमें अनेक प्रकार की ज्योतियों और तेज का प्रकटीकरण हो रहा है। इन कलशों की अद्वितीय शोभा को बारम्बार देखने पर भी नेत्रों में तृप्ति नहीं होती।

चाकले दोऊ पसमी, जोत जवेर नरम अपार।

बैठे सुन्दर सरूप दोऊ, देख देख जाऊं बलिहार॥३५॥

सिंहासन के ऊपर बैठने के लिये दो मखमली चाकले (आसनी) हैं, जिनमें जड़े हुए जवाहरातों की ज्योति जगमग-जगमग करती रहती है। इन जवाहरातों की कोमलता भी अनन्त है। इन चाकलों पर विराजमान युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के अति सुन्दर स्वरूप

को देख-देखकर मैं बार-बार बलिहारी जाती हूँ
(न्योछावर होती हूँ)।

जरे जिमी की रोसनी, भराए रही आसमान।

क्यों कहूँ जोत तखत की, जित बैठे बका सुभान॥३६॥

जब परमधाम की धरती के एक कण की ज्योति
(रोशनी) सम्पूर्ण आकाश में फैल जाती है, तो सिंहासन
की उस नूरमयी ज्योति का मैं कैसे वर्णन करूँ, जिस पर
स्वयं श्री राजश्यामा जी विराजमान हैं।

बरनन करूँ मैं इन जुबां, रंग नंग इतके नाम।

ए सब्द तित पोहोंचे नहीं, पर कहे बिना भाजे न हाम॥३७॥

मैं इस संसार के नामों के आधार पर ही यहाँ की जिह्वा
से मूल मिलावा के नगों और रंगों का वर्णन करती हूँ।

यद्यपि मेरे द्वारा कहे हुए ये शब्द परमधाम की शोभा का यथार्थ वर्णन नहीं कर पाते हैं, किन्तु यदि मैं इतना भी न कहूँ तो मेरे हृदय में जो प्रियतम की शोभा का वर्णन करने की प्रबल चाहना है, वह पूरी नहीं हो सकती।

ए जवेर कई भांत के, सोभित भांत रूप कई।

सो पल पल रूप प्रकासहीं, यों सकल जोत एक मई॥३८॥

परमधाम में अनेक (अनन्त) प्रकार के जवाहरात हैं, जो अनेक प्रकार की बनावट में शोभायमान हो रहे हैं। उनका रूप पल-पल बदलता रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम श्री राज जी के नूर से ही अनेक रूपों में दृष्टिगोचर हो रहा है।

भावार्थ— परमधाम के जवाहरातों को इस संसार के जड़ जवाहरात नहीं समझना चाहिए। वे सभी चेतन हैं,

नूरमयी हैं, और श्री राज जी के अभिन्न अंग हैं।

गिलम जोत फूल बेलियां, जोत ऊपर की आवे उतर।

जोतें जोत सब मिल रहीं, ए रंग जुदे कहूं क्यों कर॥३९॥

गिलम पर बने हुए फूलों तथा लताओं आदि से नूरी ज्योति छिटक रही है। चन्द्रवा तथा थम्भों से भी नूरानी ज्योति गिलम पर पड़ रही है। इस प्रकार सभी ज्योतियाँ आपस में एकरूप हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में इनके रंगों का अलग-अलग रूपों में वर्णन करना कैसे सम्भव है।

भावार्थ- जिस प्रकार लाल रंग (माणिक) के थम्भ से लाल और हरे (पाच) रंग के थम्भ से हरी ज्योति निकल रही है, उसी प्रकार चन्द्रवा और गिलम की लताओं और फूलों से हरे तथा लाल रंग की ज्योति छिटक रही होती है। किन्तु यदि सभी प्रकार की ज्योतियाँ आपस में

मिलकर एकरूप हो जायें, तो उनका अलग-अलग वर्णन कैसे किया जा सकता है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है। वस्तुतः स्वलीला अद्वैत में किसी भी वस्तु को दूसरे से अलग मानना सम्भव ही नहीं है।

ए मूल मिलावा अपना, नजर दीजे इत।

पलक न पीछी फेरिए, ज्यों इस्क अंग उपजत॥४०॥

हे साथ जी! यह अपना मूल मिलावा है, जहाँ धाम धनी के चरणों में हमारे मूल तन विराजमान हैं। अपनी आत्मिक दृष्टि से इसकी शोभा देखिये और अपनी पलकों को कभी भी बन्द मत कीजिए, अर्थात् अपने और धनी के बीच अन्य किसी भी सांसारिक वस्तु को न आने दीजिए। यदि आप ऐसा करते हैं तो निश्चित ही आपके हृदय में प्रेम पैदा हो जायेगा।

भावार्थ- जिस प्रकार आँखों की पलकें बन्द कर लेने पर दिखायी देने वाली वस्तु भी दिखनी बन्द हो जाती है, उसी प्रकार यदि हमारे हृदय में धनी के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की चाहत है तो हमारा ध्यान धनी से हट सकता है और हमें धनी के दीदार से मिलने वाले आनन्द से भी वंचित होना पड़ सकता है। इस चौपाई में यही बात सिखापन के रूप में बतायी गयी है। इश्क पाने का यही सर्वोत्तम मार्ग है कि हम इश्क के सागर श्री राज जी की शोभा को हमेशा ही अपलक नेत्रों से निहारा (देखा) करें।

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम लेय के, विलसिए संग खसम॥४१॥

मूल मिलावा में हमारी आत्मा का मूल स्वरूप विराजमान है, जिसे परात्म कहते हैं। हमें ध्यान

(चितवनि) में अपने इस माया के नश्वर रूप को भुलाकर परात्म को ही अपना स्वरूप समझना चाहिए और उसी भाव से युगल स्वरूप की शोभा को आत्मा के धाम हृदय में बसाना चाहिए। ऐसा करके ही हम आनन्द का रसपान कर सकते हैं।

महामत कहे ए मोमिनोँ, करुं मूल सरूप बरनन।

मेहेर करी मासूक ने, लीजो रूह के अन्तस्करन॥४२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! माशूक श्री राज जी ने मेरे ऊपर अपार मेहर की है, जिससे अब मेरी आत्मा मूल मिलावा में विराजमान श्री राजश्यामा जी के शोभा-श्रृंगार का वर्णन कर रही है। आप सभी इस श्रृंगार वर्णन को अपनी आत्मा के धाम हृदय में धारण करें।

प्रकरण ॥७॥ चौपाई ॥५३२॥

श्री राज जी को सिनगार दूसरो – मंगला चरण

इस प्रकरण में श्री राज जी की शोभा का वर्णन किया गया है।

अर्स तुमारा मेरा दिल है, तुम आए करो आराम।

सेज बिछाई रूच रूच के, एही तुमारा विश्राम॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे धाम धनी! मेरा दिल (हृदय) ही आपका परमधाम है। इसमें विराजमान होकर आप आराम कीजिए। मैंने बहुत ही प्रेममयी भावों में भरकर आपके लिये अच्छी तरह से इस सेज (शैय्या) को बिछाया है। इसलिये आप मेरे धाम हृदय की सेज पर पधारकर विश्राम कीजिए।

भावार्थ- आशिक (आत्मा) अपने माशूक (श्री राज जी) को अपने धाम हृदय में बसाकर प्रेम करना चाहती

है, इसी में दोनों का आनन्द छिपा हुआ है। यद्यपि अक्षरातीत अनन्त आनन्द के मूल स्रोत हैं, किन्तु प्रेम लीला में ही उनका आनन्द फलीभूत होता है। इसे ही आराम या विश्राम करना कहा गया है। कलश हिन्दुस्तानी का यह कथन "सुख देऊं सुख लेऊं, सुखें जगाऊं साथ" इसी ओर संकेत करता है। अपने हृदय में धाम धनी को विराजमान करने के लिये जो सेज्या (सेज) तैयार की गयी है, उसमें तारतम ज्ञान का पलंग है, ईमान (अटूट आस्था व विश्वास) का बिछौना है, समर्पण का तकिया है, तो प्रेम की मधुरता एवं सुगन्धि से भरपूर फूलों से उसे सुसज्जित किया गया है।

अर्स कहा दिल मोमिन, अर्स में सब बिसात।

निमख न्यारी क्यों होए सके, रूह निसबत हक जात॥२॥

ब्रह्मसृष्टियों का दिल ही धनी का अर्थ (परमधाम) होता है और परमधाम में लीला रूपी सारी सामग्री (२५ पक्ष) हैं। अक्षरातीत की अँगरूपा होने से धनी से उसका अनादि काल से ही अखण्ड सम्बन्ध है। ऐसी स्थिति में वह अपने प्राण वल्लभ से एक पल के लिये भी कैसे अलग हो सकती है, कदापि नहीं।

इस्क सुराही ले हाथ में, पिलाओ आठों जाम।

अपनी अंगना जो अर्स की, ताए दीजे अपनों ताम॥३॥

मेरे प्राण प्रियतम! आप अपने हाथ में प्रेम (इश्क) की सुराही लेकर हमारे हृदय रूपी प्यालों में आठों पहर उड़ेलिये, ताकि हम उसका रसपान कर सकें। हम आपकी परमधाम की अँगनायें हैं, इसलिये हमारे आहार (इश्क) को हमें दीजिए।

भावार्थ- धाम धनी का दिल इश्क की सुराही है और ब्रह्मसृष्टियों का दिल प्याला है। अक्षरातीत ही अपना प्रेम सभी सखियों के दिल के अन्दर उड़ेलते हैं, जिसे इस चौपाई में दर्शाया गया है।

इलम दिया आए अपना, भेजी साहेदी अल्ला कलाम।

रुहें त्रिखावन्ती हक की, सो चाहें धनी प्रेम काम॥४॥

हे धनी! आपने स्वयं ही मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर ब्रह्मवाणी का अवतरण किया। इसकी साक्षी भी आपने ११०० वर्ष पहले मुहम्मद साहिब के द्वारा कुरआन के रूप में भिजवा दी थी। ब्रह्मसृष्टियाँ तो अपने प्रियतम अक्षरातीत के दीदार की प्यासी हैं। वे तो मात्र आपके अलौकिक प्रेम की इच्छुक हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "प्रेम काम" शब्द

प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ होता है- दिव्य प्रेम। यहाँ "काम" शब्द का प्रयोग वैकारिक (माया जनित) प्रेम के लिये नहीं है, बल्कि आत्मा का परब्रह्म के साथ निर्विकार प्रेम के सन्दर्भ में किया गया है। "काम" का तात्पर्य इच्छा, चाहना, या कामना करने से है। आत्मा परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की कामना नहीं करती, इसी प्रकार सच्चिदानन्द परब्रह्म भी अपनी अङ्गरूपा अङ्गनाओं को एक पल के लिये भी अलग नहीं करते, इसलिये इनके इस अखण्ड प्रेम को "प्रेम काम" कहकर सम्बोधित किया गया है।

फुरमान ल्याया दूसरा, जाको सुकजी नाम।

दई तारतम ग्वाही ब्रह्मसृष्ट की, जो उतरी अव्वल से धाम॥५॥

परब्रह्म के आदेश से साक्षी के रूप में अवतरित दूसरा

ग्रन्थ श्रीमद्भागवत् है, जिसे शुकदेव जी लेकर आये। उन्होंने माया का खेल देखने के लिये परमधाम से ब्रज-रास में अवतरित होने वाली ब्रह्मसृष्टियों के पुनः आने तथा तारतम ज्ञान के प्रकटन की साक्षी दी।

भावार्थ- श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध में परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के साथ अक्षरातीत की होने वाली ब्रह्मलीला का वर्णन है। इसे ब्रज लीला एवं रास लीला के नाम से चित्रित किया गया है।

खिलवत खाना अर्स का, बैठे बीच तखत स्यामा स्याम।

मस्ती दीजे अपनी, ज्यों गलित होऊं याही ठाम॥६॥

परमधाम के मूल मिलावा में सिंहासन पर आप युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी विराजमान हैं। आपसे मेरी एकमात्र चाहना यही है कि आप अपने प्रेम की ऐसी

मस्ती (रसधारा) दीजिए, जिससे मैं इस संसार में रहते हुए भी आपकी शोभा-श्रृंगार में डूबी रहूँ।

भावार्थ- इस चौपाई में "याही ठाम" का तात्पर्य इस ब्रह्माण्ड से है, परमधाम से नहीं, क्योंकि "गलित गात्र" होने का प्रसंग इस संसार में ही होता है। परमधाम में तो एकदिली है, जहाँ प्रेम की अवस्था एकरस होती है।

तुम लिख्या फुरमान में, हक अर्स मोमिन कलूब।

सो सुकन पालो अपना, तुम हो मेरे मेहेबूब॥७॥

आपने कुरआन में यह बात लिखी है कि ब्रह्मसृष्टियों का दिल ही अक्षरातीत का धाम होता है। आप मेरे प्रियतम हैं। आपने जो कुरआन में वचन दिया है (लिखवाया है), उसका पालन कीजिए अर्थात् मेरे धाम हृदय में आकर विराजमान हो जाइए।

भावार्थ- कुरआन के सूरा २ मोमनीन पारा ९ आयत १८६ में यह वर्णित है कि ब्रह्मसृष्टियों (मोमिनों) के धाम हृदय में सच्चिदानन्द परब्रह्म (अल्लाह तआला) का निवास होता है।

धाम धनी के आदेश से ही उनके जोश (जिबरील) द्वारा कुरआन अवतरित हुआ है, इसलिये यहाँ यह बात कही गयी है कि आपने कुरआन में ऐसी बात लिखी (लिखवायी) है।

और भी लिख्या समनून को, हक दोस्ती में पातसाह।

सो कौल पालो अपना, मैं देखूं मेहेबूब की राह॥८॥

कुरआन में समनून बादशाह का प्रसंग लिखा है। उसमें आपने (अल्लाह तआला ने) समनून को यह सन्देश दिया है कि "हे अहंकारी बादशाह! तू तो झूठी माया का

बादशाह है और मैं अखण्ड से प्रेम करने वालों का बादशाह (स्वामी) हूँ।"

मेरे प्रियतम! मेरे धाम हृदय में आ जाइए। मैं आपकी बाट देख रही हूँ। कुरआन में लिखवाये हुए अपने इन वचनों को पूरा कीजिए।

भावार्थ- कुरआन के पा० १ सू० २ आ० १ से २८६ में यह प्रसंग आया है कि समनून एक अत्याचारी बादशाह था। वह अपने समय के पैगम्बर तालूत से द्वेष रखता था। जब समनून ने सुना कि तालूत सबको स्वर्ग ले जाने की बात करते हैं तो उसने अपने धन के मद में आकर एक कल्पित (कृत्रिम) स्वर्ग बनवाया तथा सारी प्रजा को यह सन्देश दिया कि मैं स्वयं स्वर्ग का निर्माण करने में सक्षम हूँ और सभी को उसमें ले जाऊँगा। आप सभी तालूत से कोई भी सम्बन्ध न रखें।

अपने बनवाये हुए स्वर्ग में जब वह प्रवेश करने लगा तो जैसे ही उसका एक पैर अन्दर और एक पैर स्वर्ग के बाहर था, अजराईल (मृत्यु) ने उसके प्राण हर लिये।

इस कथानक में यही बात दर्शायी गयी है कि अल्लाह तआला ने अपने प्रेमी तालूत की लाज रखी और समनून के अहंकार को तोड़ दिया, अर्थात् धाम धनी समनून रूपी दज्जाल (अज्ञान) को मारकर ब्रह्मसृष्टियों से प्रेम करते हैं और पल-पल उनके धाम हृदय में विराजते हैं।

कहूं अबलों जाहेर ना हुई, अर्स बका हक सूरत।

हिरदे आओ तो कहूं, इत बैठो बीच तखत॥९॥

मेरे धाम धनी! आज दिन तक इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी परमधाम और आपकी शोभा-श्रृंगार का वर्णन नहीं हो सका था। अब आप मेरे धाम हृदय के सिंहासन पर

आकर विराजमान हो जाइए, ताकि मैं आपकी शोभा का वर्णन कर सकूँ।

ए वजूद न खूबी ख्वाब की, ए कदम हक बका के।
 दूँढ्या बुजरकों इसदाए से, इत जाहेर न हुए कबूँ ए॥१०॥
 प्रियतम के जिस स्वरूप का यह वर्णन होने जा रहा है, वह स्वप्न का पञ्चभूतात्मक तन नहीं है। धनी के ये नूरी चरण कमल उस अखण्ड परमधाम के हैं, जिसे इस संसार के बड़े-बड़े ज्ञानी एवं भक्तजन शुरु से ही खोजते-खोजते थक गये, किन्तु कभी भी किसी को इस शोभा-श्रृंगार का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका।

उज्जल लाल तली पाउं की, रंग रस भरे कदम।
 छब सलूकी अंग अर्स की, रूह से छूटे क्यों दम॥११॥

प्रियतम के दोनों चरणों की तलियों में उज्ज्वलता और लालिमा का मिश्रण हैं। ये दोनों चरण कमल परमधाम के प्रेम और आनन्द से भरपूर हैं। इन अंगों की शोभा – सुन्दरता परमधाम की है, जो एक पल के लिये भी आत्मा से नहीं छूट सकती।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है कि धनी के चरणों से एक पल के लिये भी आत्मा की दृष्टि अलग नहीं हो सकती, किन्तु यह प्रश्न होता है कि निद्रा, भोजन, वार्तालाप, एवं अन्य लौकिक कार्यों में निश्चित ही हमारा ध्यान धनी से हट जाता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मवाणी का यह कथन कहाँ तक उचित है?

इसका समाधान यह है कि निद्रा, भोजन, एवं वार्तालाप आदि कार्यों में हमारी इन्द्रियाँ, अन्तःकरण, एवं जीव ही भाग लेते हैं। आत्मा मात्र दृष्टा है। उसकी दृष्टि भले ही

इस मायावी खेल को देख रही होती है, किन्तु जब उसके धाम हृदय में एक बार युगल स्वरूप की छवि बस जाती है तो वह हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है तथा एक पल के लिये भी आत्मा से अलग नहीं हो पाती। सांसारिक क्रिया-कलापों में भी आत्मा से युगल स्वरूप की छवि अलग नहीं होती, जबकि जीव के अन्तःकरण को उसकी विस्मृति (भूल) हो जाती है।

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि जीव के अन्तःकरण तथा आत्मा के अन्तःकरण दोनों ही अलग-अलग हैं। चितवनि की अवस्था में आत्मा के सम्बन्ध से जीव को भी धनी की शोभा का आनन्द प्राप्त होता है, जिसके कुछ अंश का आभास अन्तःकरण को होता है, जो उसे लौकिक क्रियाओं में भुला देता है। इसके विपरीत आत्मा के अन्तःकरण में वह शोभा अखण्ड रूप

से विद्यमान रहती है और निद्रा आदि क्रियाओं में भी उससे अलग नहीं हो पाती। जब आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है, तो तारतम ज्ञान के प्रकाश तथा चितवनि से अर्श दिल की शोभा को धारण करने वाली आत्मा भला अपने प्रियतम की शोभा को कैसे भुला सकती है।

मिहीं लीकें चरणों तली, रूह के हिरदे से छूटत नाहें।

ए निसबत भई अर्स की, लिखी रूह के ताले माहें॥१२॥

धनी के चरणों की तलियों में जो महीन (बारीक) रेखायें हैं, उनकी इतनी सुन्दरता है कि आत्मा के हृदय से कभी भी अलग नहीं हो पाती। इस प्रकार का अलौकिक सौभाग्य ब्रह्मसृष्टियों को इसलिये प्राप्त है , क्योंकि परमधाम से उनकी आत्मा का अखण्ड सम्बन्ध है।

नख अंगूठे अंगुरियां, सिफत न पोहोंचे सुकन।

आसमान जिमी के बीच में, रूह याही में देखे रोसन॥१३॥

श्री राज जी के नाखूनों, अँगूठों, और अँगुलियों का सौन्दर्य इतना अधिक (अनन्त) है कि उसका वर्णन यहाँ के शब्दों से हो पाना सम्भव ही नहीं है। इनकी नूरमयी ज्योति आत्मा को परमधाम के आकाश और धरती के बीच में चारों ओर फैलती हुई दिखायी पड़ती है।

एक छोटे नख की रोसनी, ऐसा तिन का नूर।

आसमान जिमी के बीच में, जिमी जरे जरा भई सब सूर॥१४॥

एक छोटे से नाखून में इतनी अधिक ज्योति है कि उसके नूर से सम्पूर्ण धरती और आकाश प्रकाशित हो जाते हैं। वहाँ की धरती का एक-एक कण सूर्य के समान प्रकाशित होता है।

देख सलूकी अंगूठों, और अंगुरियों सलूकी।

उतरती छोटी छोटेरी, जो हिरदे में छबि फबी॥१५॥

अँगुलियों की बनावट ऐसी है कि मध्यमा अँगुली से अँगूठे तथा अनामिका अँगुली तक क्रमशः दोनों ओर आकार छोटा होता गया है। इनके अलौकिक सौन्दर्य को निहारने पर इनकी शोभा हृदय को बहुत भाती है (अच्छी लगती है)।

भावार्थ— अँगूठे से लेकर अँगुलियों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं— तर्जनी, मध्यमा, कनिष्ठिका, और अनामिका। सबसे छोटी अँगुली अनामिका कहलाती है, जबकि मध्यमा अँगुली के दोनों ओर की अँगुलियां तर्जनी और कनिष्ठिका प्रायः समान होती हैं।

लाल नरम उज्जल अंगुरी, फना टांकन घूटी काड़ों।

आठों जाम रस बका, पोहोंचे रूह के तालू मों॥१६॥

दोनों चरणों की अँगुलियां बहुत ही कोमल हैं। उनका रंग लालिमा मिश्रित उज्ज्वलता लिये हुए है। चरणों के पँजों, टखनों, घूटी, तथा काड़े की शोभा अलौकिक है। इन्हीं चरणों से परमधाम के प्रेम का रस ब्रह्मसृष्टियों के तालू में अष्ट प्रहर पहुँचता रहता है, अर्थात् ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के चरण कमलों को अपने धाम हृदय में बसाकर अखण्ड प्रेम का निरन्तर रसपान करती हैं।

लाल लाकें लाल एड़ियां, पांउं तली अति उज्जल।

ए पांउं बसत जिन हैयड़े, सोई आसिक दिल॥१७॥

दोनों चरणों की एड़ियों का रंग लाल है। दोनों तलियाँ भी बहुत उज्ज्वल (स्वच्छ) हैं। एड़ी तथा तली के बीच

का गहराई वाला भाग (लाँक) भी लालिमा से भरपूर है। जिसके हृदय में धनी के इन चरणों का सौन्दर्य बस जाता है, निश्चित रूप से उन्हीं के दिल को आशिक कहलाने की शोभा मिलती है।

भावार्थ— चरण की एड़ी, लाँक, तथा तलुवों का रंग एक समान है अर्थात् लालिमा मिश्रित उज्ज्वलता लिये है। इस चौपाई में तली को उज्ज्वल कहने का अभिप्राय स्वच्छता से है, मात्र सफेदी से नहीं।

बसत सुखाले नरमाई में, आसमान लग रोसन।

ए पांउं प्यारे मासूक के, जो कोई आसिक मोमिन॥१८॥

धनी के ये चरण कमल बहुत ही कोमल हैं और सुख का भण्डार हैं। इनकी नूरी आभा आकाश तक उजाला करती है। जो भी धनी का सच्चा प्रेमी (आशिक) होता है,

उसे ये चरण कमल बहुत ही प्यारे लगते हैं।

आसिक बसत अर्स तले, या बसे अर्स के माहें।

ए खुसबोए मस्ती अर्स की, निसदिन पीवे ताहें॥१९॥

धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टियों का ध्यान हमेशा ही हृद-बेहृद से परे परमधाम की ओर रहता है। वे परमधाम के पच्चीस पक्षों तथा युगल स्वरूप की शोभा में खोयी रहती हैं। इस प्रकार उन्हें दिन-रात परमधाम के प्रेम की सुगन्धि का रस मिलता रहता है और वे उसके आनन्द में डूबी रहती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में कथित "अर्स तले" का तात्पर्य परमधाम की ओर केन्द्रित होने से है। मात्र चितवनि (आत्म-दृष्टि से देखने) से ही परमधाम के वास्तविक आनन्द का रसपान किया जा सकता है।

सुन्दर सलूकी छब सोभित, रंग रस प्यार भरे।

सोई मोमिन अर्स दिल, जित इन हकें कदम धरे॥२०॥

मात्र उसी ब्रह्मसृष्टि का दिल अर्श (परमधाम) कहा जाता है, जिसके अन्दर धनी के वे चरण कमल विराजमान हो जाते हैं जिनकी शोभा अति सुन्दर और कोमल है तथा रोम-रोम में प्रेम और आनन्द का रस भरा हुआ है।

भावार्थ- इस चौपाई के कथन से यह संशय होता है कि क्या सभी ब्रह्मसृष्टि सुन्दरसाथ का दिल धनी का अर्श नहीं होता है? यदि ऐसा ही है तो "हक नजीक सेहेरग से" कहने का क्या अर्थ है?

इसका समाधान इस प्रकार है कि जिस प्रकार जल तत्व में या लकड़ी में अग्नि छिपी रहती है, किन्तु जल को अग्नि नहीं कहा जा सकता क्योंकि दोनों में विपरीत

गुण दिखायी पड़ते हैं, उसी प्रकार सभी आत्माओं के धाम हृदय में धनी का निवास अवश्य होता है, किन्तु जब तक क्रियात्मक रूप से विरह में डूबकर धनी की शोभा को आत्मसात् नहीं किया जाता तब तक उसे अर्श दिल की संज्ञा नहीं प्राप्त हो सकती। इसके लिये अपने कौल, फैल, हाल, वजूद, तथा निस्बत को धनी के साथ जोड़ना अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि आत्मा का दिल जीव के दिल से जुड़कर प्रियतम से विमुखता का अनुभव करता रहता है।

ए सुख देत अर्स के, कोई नहीं निमूना इन।

ए सुख जानें अरवा अर्स की, निसबत हकसों जिन॥२१॥

धनी के ये चरण कमल सुन्दरसाथ को परमधाम के उन सुखों का रसपान कराते हैं, जिसकी तुलना में इस

संसार का कोई भी सुख नहीं है। मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ ही इस सुख की गरिमा को जानती हैं क्योंकि धनी के चरणों से इनका ही अखण्ड सम्बन्ध होता है।

रुहें इस्क मांगें धनी पे, पकड़ धनी के कदम।

जो छोड़े इन कदम को, सो क्यों कहिए आसिक खसम॥२२॥

ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के चरण पकड़कर अपना प्रेम (इश्क) माँगती हैं। जो धाम धनी के चरणों (ईमान) से स्वयं को दूर कर ले, उसे प्रियतम की सच्ची चाहत रखने वाली (आशिक) कहा ही नहीं जा सकता।

भावार्थ— इस चौपाई में चरण पकड़ना आलंकारिक भाषा है। इसका तात्पर्य है— प्रियतम अक्षरातीत के प्रति अटूट श्रद्धा व विश्वास रखना। यहाँ लौकिक रीति से चरण पकड़ने का कोई प्रसंग नहीं है।

नरम तली लाल उज्जल, आसिक एही जीवन।

धनी जिन छोड़ाइयो कदम, जाहेर या बातन॥२३॥

श्री राज जी के दोनों चरणों की तलियाँ (तलुवे) बहुत ही कोमल हैं। उनका रंग लालिमा तथा उज्ज्वलता का मिश्रण लिये हुए है। धनी के ये खूबसूरत चरण कमल ही तो ब्रह्मसृष्टियों के जीवन के आधार हैं, अर्थात् उनके बिना ब्रह्मसृष्टि रह ही नहीं सकती। श्री महामति जी की आत्मा यह निवेदन करती है कि हे मेरे प्रियतम! आप इन चरणों को मुझसे बाह्य या आन्तरिक किसी भी रूप से अलग न कीजिए।

भावार्थ— इस चौपाई में जीवन का तात्पर्य सर्वस्व (प्राणाधार) से है। ब्रह्मसृष्टियों के लिये धनी के चरणों से दूर रहना किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है। जिस प्रकार सागर के बिना लहरों और चन्द्रमा के बिना चाँदनी

का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार धनी के चरण कमल ही ब्रह्मात्माओं के आधार हैं। यहाँ प्रत्यक्ष (जाहिर) या परोक्ष (बातिन) का तात्पर्य इस प्रकार है—

मूल मिलावा में धनी के सम्मुख होकर बैठना ही प्रत्यक्ष रूप से धनी के चरणों को पकड़े रहना है। इसी प्रकार इस खेल में आत्माओं का हृदय (दिल) ही धनी का परमधाम है, जिसमें मूल मिलावा भी स्थित है। उसमें ही अपने प्राणवल्लभ को बसा लेना परोक्ष (बातिन) रूप से धनी के चरणों से स्वयं को जोड़े रखना है।

दूसरे शब्दों में श्रीमुखवाणी के ज्ञान द्वारा धनी पर अटूट श्रद्धा व विश्वास रखना जाहिरी (बह्य या प्रत्यक्ष) रूप से धनी के चरणों को पकड़ना है तथा विरह-प्रेम में डूबकर दिल में धनी को बसाना बातिनी (परोक्ष) रूप में धनी के चरणों को आत्मसात् करना (पकड़ना) है।

प्यारे कदम राखों छाती मिने, और राखों नैनों पर।

सिर ऊपर लिए फिरों, बैठो दिल को अर्स कर॥२४॥

मेरे प्राण प्रियतम! आप मेरे हृदय को ही अपना परमधाम बनाकर विराजमान होइए, ताकि मैं आपके चरण कमलों को अपनी छाती से चिपकाए रखूँ। मैं आपके कोमल चरणों को अपने नेत्र की पलकों पर बिठाए रखना चाहती हूँ। मेरी यह भी चाहना है कि मैं आपके चरणों को अपने सिर पर रखकर चारों ओर घूमा करूँ।

भावार्थ- जब किसी बहुत ही प्रिय वस्तु को अपनी छाती से चिपकाया जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह अन्दर प्रवेश करते हुए हृदय में आकर विराजमान हो गयी है। इस चौपाई के पहले चरण के अन्दर धनी के चरणों को छाती के अन्दर रखने का यही भाव है।

नेत्रों की पलकों पर बिठाना बहुत ही प्रेम का परिचायक

है, जो मुहाविरे की भाषा में कहा गया है। इसी प्रकार सिर पर बैठाये रखना चरणों के प्रति श्रद्धा और सम्मान को प्रदर्शित करना है।

तखत धरया हकें दिल में, राखूं दिल के बीच नैनन।

तिन नैनों बीच नैना रूह के, राखों तिन नैनों बीच तारन॥२५॥

अब प्रियतम अक्षरातीत का युगल स्वरूप सिंहासन सहित मेरे धाम हृदय में विराजमान हो गया है। मैं इस मोहिनी शोभा को अपने दिल के नेत्रों में बसाकर रखना चाहती हूँ। दिल के इन नेत्रों के बीच में मेरी आत्मा के नेत्र हैं, जिनके तारों में मैं अपने प्राणवल्लभ को बसाये रखना चाहती हूँ।

तिन तारों बीच जो पुतली, तिन पुतलियों के नैनों माहें।
 राखूं तिन नैनों बीच छिपाए के, कहूं जाने न देऊँ क्याहें॥२६॥

मेरी आत्मा के तारों में जो पुतलियाँ हैं, उन पुतलियों के नैनों के बीच में मैं अपने प्राणेश्वर को छिपाकर रखना चाहती हूँ और उन्हें कहीं भी किसी तरह से अन्यत्र नहीं जाने दूँगी।

भावार्थ— जिससे देखा जाता है, उसे नेत्र कहते हैं। इस लीला में परात्म का दिल, आत्मा तथा उसका दिल सभी क्रियाशील हैं। यद्यपि लीला रूप में इनमें भेद करना पड़ता है, किन्तु परमधाम की वहदत में मूलतः इनमें कोई भी भेद नहीं है। यह बात श्रृंगार ग्रन्थ की इन चौपाइयों से अच्छी प्रकार समझी जा सकती है—

ज्यों सूरत दिल देखत, त्यों रुह जो देखे सूरत।
 तो बेर नहीं रुह लज्जत, तेरे अंग जात निसबत॥

फरक नहीं दिल रूह के, एतो दोऊ रहे हिल मिल।

अर्स में जो रूह है, तो हकें कहया अरस दिल॥

सिनगार २२/८०,८१

दिल मोमिन अर्स तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।

केहेने को ए दिल है, है अर्से दिल असल॥

सिनगार २६/१४

सागर ग्रन्थ ८/२५,२६ में दिल के नैन, आत्मा के नैन, आत्मा के नैनों के तारों, तथा उसमें स्थित पुतलियों के नैनों का वर्णन किया गया है। इसका बातिनी भेद यह है कि आत्मा के धाम हृदय में धनी की शोभा बसायी जाती है और अनुभव किया जाता है, इसलिये उसे नेत्र की संज्ञा प्राप्त है—

ताथें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।

सूरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल॥

सागर ११/४६

आत्म-दृष्टि से देखने के कारण आत्मा को नेत्र कहा जाता है, किन्तु उसमें निहित तारा ही परात्म का स्वरूप है। जिस प्रकार तारा के बिना नेत्र का अस्तित्व सम्भव नहीं है, उसी प्रकार परात्म के बिना आत्मा का स्वरूप भी सिद्ध नहीं हो सकेगा। परमधाम में परात्म के दिल से ही सारी लीला चलती है, इसलिये परात्म के दिल को आत्मा रूपी नैन की पुतली कहा जाता है। इसी के द्वारा सम्पूर्ण लीला दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि परात्म के दिल से धनी की शोभा कदापि अलग नहीं हो सकती, किन्तु इस चौपाई में उसे न छोड़ने (अखण्ड रखने) का कथन गहन प्रेम की अभिव्यक्ति है।

जाथें चरन जुदे होंए, सो आसिक खोले क्यों नैन।

ए नैन कायम नूरजमाल के, जासों आसिक पावे सुख चैन॥२७॥

अपने नेत्रों में प्रियतम की बसी हुई शोभा को भला परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कैसे छोड़ सकती है। धनी के ये नूरी नेत्र अनवरत ही प्रेम रस की वर्षा करते हैं, जिससे आशिक ब्रह्मसृष्टियों को प्रेम के आनन्द का रस प्राप्त होता है।

भावार्थ- इस चौपाई में चरणों का तात्पर्य सम्पूर्ण श्रृंगार से है, मात्र बाह्य चरणों से ही नहीं। नेत्रों को बन्द कर लेने का भाव है- प्रियतम की शोभा को बसा लेना। जिस प्रकार हम अपने बाह्य नेत्रों को बन्द कर हृदय के आन्तरिक नेत्रों से धनी को देखते हैं और बाह्य नेत्रों को खोलते ही आन्तरिक नेत्रों से दिखना बन्द हो जाता है, उसी प्रकार का भाव इस चौपाई में व्यक्त किया गया है।

एक अंग छोड़ दूजे अंग को, क्यों आसिक लेने जाए।

ए कदम छोड़े मासूक के, सो आसिक क्यों केहेलाए॥२८॥

धनी को चाहने वाली (आशिक) ब्रह्मसृष्टि प्रियतम के एक अंग की शोभा को छोड़कर दूसरे अंगों में नहीं उलझती। वह ब्रह्मसृष्टि भला कैसे आशिक कहला सकती है जो प्रियतम के इन नूरी चरणों को छोड़कर कहीं और नजर कर ले।

भावार्थ- इस चौपाई का भाव यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के मात्र एक ही अंग की शोभा को देखती हैं। यदि ऐसा है तो सागर-श्रृंगार ग्रन्थ में श्री राज जी का नख से शिख तक सात बार श्रृंगार का वर्णन कैसे हुआ। इस चौपाई का मूल भाव यह है कि परमधाम की वहदत में सभी अंगों का सौन्दर्य बराबर है। अनन्त सौन्दर्य वाले किसी भी अंग की तरफ यदि आत्मा की

नजर जाती है, तो वह उसमें इस प्रकार डूब जाती है कि उससे निकल पाना उसके लिये सम्भव ही नहीं होता।

एक रूह लगी एक अंग को, सो क्यों पकड़े अंग दोए।

मासूक अंग दोऊ बराबर, क्यों छोड़े पकड़े अंग सोए॥२९॥

यदि कोई आत्मा धनी के किसी अंग की शोभा को देखती है, तो उसे छोड़कर वह अन्य अंगों की तरफ नहीं देख पाती। श्री राज जी के सभी अंगों की शोभा बराबर होती है, इसलिये एक को छोड़कर दूसरे को पकड़ना (देखना) सम्भव नहीं होता।

भावार्थ— इस मायावी जगत में कुछ समय के पश्चात् किसी भी वस्तु से ऊबाऊपन या नीरसता का अहसास होने लगता है, किन्तु परमधाम में ऐसा नहीं है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु में समान रूप से सौन्दर्य, प्रेम, और

आनन्द भरा हुआ है। यद्यपि आत्मायें अपने प्रियतम के नख से शिख तक सभी अंगों को देखती हैं, किन्तु नीरस भाव से एक-एक को छोड़कर नहीं, बल्कि प्रेम और सौन्दर्य के एक अथाह सागर में डुबकी लगाते हुए देखती है। इस चौपाई का मूल भाव यही है।

जो कोई अंग हलका लगे, और दूजा भारी होए।

एक अंग छोड़ दूजा लेवहीं, पर आसिक न हलका कोए॥३०॥

यदि माशूक का कोई अंग दूसरे अंग से सौन्दर्य आदि गुणों में कम हो, तब तो उसे छोड़कर दूसरे की तरफ नजर उठाने की बात सोची भी जाये। परमधाम की एकदिली में सभी अंगों की शोभा समान होती है, इसलिये आत्माओं के लिये किसी एक अंग की शोभा को छोड़कर (नीरसता के कारण) दूसरे अंग की शोभा में

लग जाने का प्रश्न ही नहीं होता।

दूजा अंग आया नहीं, तो लों एक अंग क्यों छूटत।

यों और अंग ले ना सके, एकै अंग में गलित॥३१॥

जब तक आत्मा की दृष्टि में दूसरे अंग की शोभा न आ जाये, तब तक वह पहले वाले अंग की शोभा को कैसे छोड़ सकती है। वह तो एक ही अंग के अनन्त सौन्दर्य में इस प्रकार डूब जाती है कि उसे छोड़कर दूसरे अंगों की तरफ देखने की सुध ही नहीं रहती।

जो आसिक भूखन पकड़े, सो भी छूटे न आसिक सें।

देख भूखन हक अंग के, आसिक सुख पावे यामें॥३२॥

यदि आत्मा अपने प्रियतम के अंगों में सुशोभित किसी आभूषण को देखती है, तो वह उसमें ही डूब जाती है

और उसे छोड़ नहीं पाती। धनी के अंगों में शोभायमान आभूषणों की सुन्दरता को देखकर आत्माओं को अनन्त आनन्द प्राप्त होता है।

भावार्थ- नूरी परमधाम में आभूषण भी धनी के अंगों की ही शोभा होते हैं। वे पहने या उतारे नहीं जाते। उनकी शोभा भी धनी के अंगों के समान होती है।

हकके अंग के सुख जो, सो जड़ भी छोड़े नाहें।

तो क्यों छोड़े अरवा अर्स की, हक अंग आया हिरदे माहें॥३३॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत के अंगों से मिलने वाले सुख को जब जड़ वस्तुएँ भी नहीं छोड़तीं, तो भला परमधाम की वे ब्रह्मसृष्टियाँ कैसे छोड़ सकती हैं, जिनके धाम हृदय में धनी के चरण कमल (सम्पूर्ण स्वरूप) विराजमान होते हैं।

भावार्थ- परमधाम में सर्वत्र ही चेतनता और एकदिली है, इसलिये वहाँ जड़ नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। वहाँ की हवा, धरती, दीवारें, थम्भे आदि भी प्रियतम अक्षरातीत के सौन्दर्य सागर में स्वयं को डुबो देते हैं।

हेम नंग सब चेतन, अर्स जिमी जड़ ना कोए।

दिल चाह्या होत सब चीज का, चीज एकै से सब होए॥३४॥

परमधाम में जड़ नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। वहाँ की धरती, सोना, तथा जवाहरातों के नग आदि सभी चेतन हैं। वहाँ दिल की इच्छानुसार सभी वस्तुओं का रूप प्रकट हो जाता है। धाम में एकमात्र नूर तत्व से ही सभी पदार्थों का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

भावार्थ- जिस प्रकार इस संसार में मोहतत्व से समस्त सृष्टि प्रकट होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण परमधाम के २५

पक्ष धाम धनी की मारिफत (परमसत्य) के हकीकत (सत्य) में प्रकट रूप हैं। वहाँ सोना, हीरा, और मिट्टी में मूलतः कोई भेद नहीं है।

सब रंग गुन एक चीज में, नरम जोत खुसबोए।

सब गुन रखे हक वास्ते, सुख लेवें हक का सोए॥३५॥

परमधाम की प्रत्येक वस्तु में अन्य सभी वस्तुओं के रंग और गुण छिपे होते हैं। प्रत्येक वस्तु में कोमलता, ज्योति, और सुगन्धि भरी होती है। श्री राज जी को रिझाने के लिये ही इन वस्तुओं में ये गुण होते हैं। आत्म-स्वरूप ये सभी वस्तुएँ धाम धनी के प्रेम और आनन्द का सुख लेती हैं।

भावार्थ- परमधाम की प्रत्येक वस्तु (हवा, धरती, थम्भ, दीवारें आदि) आत्मा का ही स्वरूप है। ये सभी

वस्तुएँ अपने आत्म-स्वरूप से प्राण प्रियतम अक्षरातीत को रिझाया करती हैं और उनके आनन्द में मग्न रहा करती हैं।

आसिक एक अंग अटके, तिनको एह कारन।

दोऊ अंग मासूक के, किन छोड़े लेवें किन॥३६॥

धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टियों के लिये एक ही अंग की शोभा में अटके रहने का कारण यह है कि श्री राज जी के सभी अंगों की शोभा समान है। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह होता है कि किसको पकड़ें और किसको छोड़ें, अर्थात् किसको देखें और किसको न देखें। इस चौपाई में दो अंगों का भाव तुलनात्मक रूप में है। इसका तात्पर्य सभी अंगों से है।

नूर बिना अंग कोई ना देख्या, और सब अंगों बरसत नूर।

अंबर में न समाए सके, इन अंगों का जहूर॥३७॥

श्री राज जी का ऐसा कोई भी अंग नहीं है, जो नूरमयी न हो। उनके सभी अंगों में नूर ही नूर दृष्टिगोचर होता है। उनके अंगों से इतना अधिक नूरी प्रकाश फैलता है कि वह आकाश में भी नहीं समा पाता।

एक अंग मासूक के कई रंग, तिन रंग रंग कई तरंग।

एक लेहेर पोहोंचावे उमर लग, यों छूटे न आसिक से अंग॥३८॥

माशूक श्री राज जी के एक ही अंग में अनेक प्रकार के रंग होते हैं। उन रंगों में प्रत्येक रंग की अनेक प्रकार की तरंगें (लहरें) निकलती हैं। यदि एक ही लहर के सौन्दर्य का आनन्द लिया जाये तो यहाँ की सम्पूर्ण आयु बीत जायेगी। इस प्रकार आशिक ब्रह्मसृष्टियों के दिल से धनी

के अंगों की शोभा अलग नहीं हो पाती।

जो कदी मेहेर करें मासूक, तो दूजा अंग देवें दिल आन।

तो सुख लेवे सब अंग को, जो सब सुख देवे सुभान॥३९॥

जब कभी राज जी मेहर करते हैं, तो आत्मा के दिल में अपने दूसरे अंग की शोभा अवतरित कर देते हैं। इस प्रकार धाम धनी जब अपने सभी अंगों का सुख देना चाहते हैं, तो वह आत्मा अपने प्रियतम के सभी अंगों का सुख प्राप्त कर लेती है।

भावार्थ- इस चौपाई से यह स्पष्ट है कि श्री राज जी के एक अंग या सभी अंगों के दीदार का सुख उनकी मेहर एवं हुक्म (कृपा तथा आदेश) पर ही निर्भर करता है।

जो कदी आसिक खोले नैन को, पेहेले हाथों पकड़े दोऊ पाए।
ए नैन अंग नूरजमाल के, सो इन आसिक से क्यों जाए॥४०॥

जब कभी ब्रह्मसृष्टि अपने आत्मिक नेत्रों से प्रियतम को देखती है, तो सबसे पहले अपने दोनों हाथों से धनी के दोनों चरणों को पकड़ती है। धनी के नेत्र तो प्रेम के सागर हैं, भला आत्मा उनका दीदार क्यों नहीं करेगी।

भावार्थ— धनी के दोनों चरणों को पकड़ना भावात्मक और आलंकारिक अभिव्यक्ति है। चितवनि की प्रक्रिया में प्रायः ऐसा किया जाता है, किन्तु स्वलीला अद्वैत परमधाम में चरणों में प्रणाम करने की प्रवृत्ति नहीं होती। इस चौपाई में नेत्रों को खोलने की बात कही गयी है तथा इसी प्रकरण की सताइसवीं चौपाई में भी नेत्रों को खोलने की बात कही गयी है, किन्तु दोनों कथनों में बहुत अन्तर है। इस प्रकरण की चौपाई २७ में बाह्य नेत्रों को बन्द

करने और आत्मिक नेत्रों को खोलने का प्रसंग है, तो चौपाई ४० में मात्र आत्मिक नेत्रों को खोलकर दीदार करने का प्रसंग है।

॥ मंगला चरण सम्पूर्ण ॥

इजार जो नीली लाहि की, नेफा लाल अतलस।

नेफे बेल मोहोरी कांगरी, क्यों कहूं नंग जरी अर्स॥४१॥

श्री राज जी की इजार हरे रंग की है और उसका नेफा लाल रेशम का बना हुआ है। नेफे पर लताओं और मोहरी में काँगरी की शोभा है। उसमें स्वर्णमयी तारों से जड़े हुए परमधाम के नूरमयी नगों की शोभा का मैं वर्णन कैसे करूँ।

भावार्थ— लाल और नीले रंग को मिलाने पर हरा रंग उत्पन्न होता है। यद्यपि इजार का रंग नीला है, किन्तु

उसमें लाल रंग की आभा पड़ने से हरा रंग दृष्टिगोचर होने लगता है। पायजामे की डोरी (नाड़ा) डालने की जगह को नेफा कहते हैं।

काड़ों पर पीड़ी तले, मिहीं चूड़ी सोभित इजार।

जोत करे माहें दावन, झांई उठे झलकार॥४२॥

पैरों की पिण्डली के नीचे वाले भाग (काड़े) में इजार की मोहरी आयी है, जिसमें महीन चुन्नटें शोभा दे रही हैं। सफेद जामे के अन्दर से इजार की ज्योति झलकार कर रही है और उसकी झलक स्पष्ट रूप से नजर आ रही है।

भावार्थ— यद्यपि "झांई" का अर्थ प्रतिबिम्ब भी होता है, किन्तु यहाँ पर झलक मिलने से भाव है, क्योंकि प्रतिबिम्ब दर्पण और जल आदि में बनता है। पारदर्शी कपड़े के अन्दर अंग या वस्त्र की झलक ही दिखायी देती

है।

इजार बंध नंग कई रंग, और कई कांगरी बेल माहें।

फूल पात कई नकस, सब्द न पोहोंचे ताहें॥४३॥

पायजामे को बाँधने वाली डोरी (इजारबन्द) में अनेक रंग के नग जड़े हुए हैं। इसमें अनेक प्रकार की काँगरी और बेलों की शोभा है, जिसमें अनेक प्रकार के फूलों और पत्तियों की नक्शकारी (चित्रांकन) है। इसकी शोभा का वर्णन करने के लिये संसार के शब्दों में सामर्थ्य नहीं है।

कई रंग नंग माहें रेसम, रंग नंग धागा न सूझत।

हाथ को कछू लगे नहीं, नरम जोत अतंत॥४४॥

इस रेशमी इजारबन्द में अनेक प्रकार के रंग हैं तथा

बहुत से नग भी जड़े हुए हैं। इस नूरमयी नाड़े की शोभा ऐसी है कि इसके रंगों, नगों, तथा धागे का पता ही नहीं चल पाता। हाथ से छूने पर हाथ में भी नग या धागा नहीं आ पाता। इसकी कोमलता तथा ज्योति अनन्त है।

अतंत नाड़ी फुन्दन, जोत को नहीं पार।

एही जानों भूल अपनी, सोभा ल्याइए माहें सुमार॥४५॥

नाड़े के फुन्दनों से ऐसी अनन्त ज्योति प्रकट हो रही है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। इसकी शोभा को सीमाबद्ध करना बहुत बड़ी भूल है।

रंग नीला कह्या इजार का, कई रंग नंग इन मों।

तेज जोत जो झलकत, और कछू लगे ना हाथ कों॥४६॥

इजार का रंग नीला कहा गया है। इसके अन्दर अनेक

प्रकार के रंगों के नग झलकते रहते हैं। इसमें तेज और ज्योति की झिलमिलाहट होती रहती है, किन्तु हाथ से छूने पर हाथ में कुछ भी नहीं आता।

सब अंग पीछे कहूंगी, पेहेले कहूँ पाग बांधी जे।

सिफत न पोहोंचे अंग को, तो भी कह्या चाहे रूह ए॥४७॥

धाम धनी के सभी अंगों की शोभा का वर्णन मैं बाद में करूँगी। सबसे पहले मैं उस पाग की शोभा का वर्णन करने जा रही हूँ, जो श्री राज जी ने अपने सिर पर बाँध रखी है। यद्यपि यहाँ के शब्दों से प्रियतम अक्षरातीत के किसी भी अंग की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता, फिर भी मेरी आत्मा उसका वर्णन करना चाहती है।

हाथों पाग बांधी तो कहिए, जो हुकमें न होवे ए।

कई कोट पाग बनें पल में, जिन समें दिल चाहे जे॥४८॥

अपने हाथों से पाग बाँधने की बात तो तब कही जाये, जब हुक्म से ऐसा न होता हो। धाम धनी अपने दिल में जब भी चाहते हैं, उसी समय एक पल के अन्दर पाग के करोड़ों रूप बन जाते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह प्रश्न होता है कि श्री राज जी पाग अपने हाथों से बाँधते हैं या पाग के रूप स्वतः ही बनते रहते हैं?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि ये दोनों ही बातें परमधाम में होती है। लीला रूप में धाम धनी अपने हाथों से पाग बाँधते हैं, तथा उनकी, श्यामा जी की, और सखियों की इच्छानुसार भी पाग या सभी श्रृंगार पल भर में करोड़ों रूप धारण कर लेते हैं।

पर हकें बांधी पाग रुच के, नरम हाथों पेच फिराए।

आसिक देखे बांधते, अतंत रुह सुख पाए॥४९॥

लेकिन श्री राज जी ने अपने कोमल हाथों से पेंच (लपेट) फिराते हुए बहुत ही रुचि से पाग बाँधी है, ताकि उनको पाग बाँधते हुए देखकर सखियों को अनन्त आनन्द हो सके।

इन विध सब सिनगार, कहियत इन जुबांए।

तो कहा फना का सब्द, बका को पोहोंचत नाहें॥५०॥

इस प्रकार श्री राज जी का सम्पूर्ण श्रृंगार ही अलौकिक है, जो इस जिह्वा से कहा जा रहा है। वैसे तो इस नश्वर संसार के शब्दों से परमधाम की शोभा का वास्तविक वर्णन सम्भव ही नहीं है।

चौप किए भी ना बने, जाको ए ताम दिया खसम।

ताथें ज्यों त्यों कहा चाहिए, सो कहावत हक हुकम॥५१॥

जब धाम धनी ने मेरे हृदय में अपना सम्पूर्ण श्रृंगार अवतरित कर ही दिया है, तो मेरे लिये चुप रहना सम्भव नहीं है। इसलिये जितना वर्णन होना सम्भव है, वह मुझे कहना पड़ रहा है। इस प्रकार श्री राज जी ही अपने हुकम (आदेश) से मेरे द्वारा कहलवा रहे हैं।

भावार्थ- यद्यपि युगल स्वरूप का साक्षात्कार अनेक ब्रह्ममुनियों ने किया है, किन्तु उसके वर्णन की शोभा मात्र महामति जी को ही मिली है। मूल स्वरूप के आदेश के बिना ब्रह्मवाणी का अवतरण कदापि सम्भव नहीं है। "साहेब के हुकमें ए बानी, गावत हैं महामत" (किरंतन ५९/८) का यह कथन इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

बांधी पाग समार के, हाथ नरम उज्जल लाल।

इन पाग की सोभा क्यों कहूं, मेरा साहेब नूरजमाल॥५२॥

श्री राज जी के हस्तकमल बहुत ही कोमल हैं तथा उज्ज्वलता और लालिमा के मिश्रित रंग से सुशोभित हैं। इन मनोहर हाथों से उन्होंने अपनी पाग को बहुत ही अच्छी तरह से बाँधा है। अपने प्रियतम अक्षरातीत की इस सुन्दर पाग की शोभा का वर्णन भला मैं कैसे कर सकती हूँ।

लाल पाग बांधी लटकती, कछू ए छबि कही न जाए।

पेच दिए कई विध के, हिरदे सों चित्त ल्याए॥५३॥

धाम धनी के सिर पर लाल रंग की बँधी हुई पाग इस प्रकार दिख रही है कि उसकी इस अलौकिक शोभा का वर्णन शब्दों में होना सम्भव ही नहीं है। उन्होंने अपनी

अँगनाओं के लिये अपने हृदय में बहुत ही प्रेम भरकर
अनेक प्रकार के पेंचों से इस पाग को बाँधा है।

पाग बनाई कोई भांत की, बीच में कटाव फूल।

बीच बेली बीच कांगरी, रूह देख देख होए सनकूल॥५४॥

पाग की बनावट ही कुछ इस प्रकार की है कि उसमें
बीच-बीच में बेल-बूटे हैं जिनमें फूलों, लताओं, तथा
काँगरी की शोभा आयी है। इस दिव्य शोभा को देख-
देख कर मेरी आत्मा आनन्दित होती है।

जो आधा फूल एक पेच में, आवे दूजे पेच का मिल।

यों बनी बेल फूल पाग की, देख देख जाऊं बल बल॥५५॥

यदि किसी लपेट (पेंच) में फूल का आधा हिस्सा
दिखता है, तो दूसरी लपेट का आधा फूल मिलकर पूर्ण

फूल का रूप ले लेता है। इस प्रकार सम्पूर्ण पाग के अन्दर लताओं तथा फूलों की शोभा आयी हुई है। इसे देख-देखकर मैं बारम्बार बलिहारी (न्योछावर) होती हूँ।

कई रंग नंग फूल पात में, ए जिनस न आवे जुबांए।

न आवे मुख केहेनी मिने, जो रूह देखे हिरदे माहें॥५६॥

पाग के अन्दर बनी हुई लताओं की पत्तियों और फूलों में अनेक प्रकार के रंग हैं तथा अनेक प्रकार के नंग भी जड़े हुए हैं। इस शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं किया जा सकता। यदि आत्मा अपने धाम हृदय में इस शोभा को देखती भी है, तो भी इसे अपने मुख से व्यक्त नहीं कर पाती।

पाग बांधी कोई तरह की, जो तरह हक दिल में ल्याए।

बल बल जाऊं मैं तिन पर, जिन दिल पेच फिराए॥५७॥

पाग कुछ इस तरह से बाँधी गयी है कि ऐसा प्रतीत होता है, जैसे श्री राज जी ने अपने हृदय में सखियों को रिझाने की भावना से प्रेम का सागर लेकर बाँधा हो। श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि जिस दिल ने इतना प्रेम लेकर इन पेंचों से पाग बाँधी है, मैं उस पर बारम्बार न्योछावर होती हूँ।

भावार्थ- आशिक (श्री राज जी) के मन में सर्वदा यही भावना होती है कि किस तरह अपने माशूक (श्यामा जी एवं सखियों) को रिझाऊँ। उनकी हर लीला इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये होती है। इस चौपाई में भी यही भाव दर्शाया गया है।

पाग ऊपर जो दुगदुगी, ए जो बनी सब पर।

जोत हीरा पोहोंचे आकास लों, पीछे पाच रहे क्यों कर॥५८॥

पाग के ऊपर जो दुगदुगी की शोभा आयी है, उसकी बनावट सबसे न्यारी है। उसमें जड़े हुए हीरे की ज्योति इतनी अधिक है कि वह आकाश तक पहुँच रही है। ऐसी स्थिति में भला पाच ही क्यों पीछे रहे, उसकी भी नूरी ज्योति आकाश में चारों ओर फैली हुई नजर आ रही है।

मानिक तहां मिलत है, पोहोंचत तित पुखराज।

नीलवी तो तेज आसमानी, उत पांचों रहे बिराज॥५९॥

दुगदुगी में जड़े हुए माणिक की ज्योति भी आकाश में पहुँच रही है। वहीं पर पुखराज की भी ज्योति दृष्टिगोचर हो रही है। अब नीलवी का नूरी तेज पीछे क्यों रहे, वह भी आकाश में शोभायमान हो रहा है। इस प्रकार दुगदुगी

में जड़े हुए हीरे, माणिक, पुखराज, पाच, तथा नीलवी
का अलौकिक प्रकाश वहाँ पर विद्यमान है।

कांध पीछे केस नूर झलके, लिए पाग में पेच बनाए।
गौर पीठ सुध सलूकी, जुबां सके ना सिफत पोहोंचाए॥६०॥
धाम धनी के घुँघराले बालों के ऊपर ही पेंचदार पाग
की बनावट है। इन अति मनोहर बालों का नूर उनके
कन्धों के पीछे झलकार कर रहा है। श्री राज जी की गोरे
रंग की पीठ इतनी सुन्दर है कि उसकी महिमा का वर्णन
इस जिह्वा से हो पाना कदापि सम्भव नहीं है।

कण्ठ खभे दोऊ बांहोंड़ी, पेट पांसली बीच हैड़ा।
रूह मेरी इत अटके, देख छबि रंग रस भरया॥६१॥
श्री राज जी के गले, कन्धे, दोनों भुजाओं, पेट (उदर)

तथा पसलियों के बीच में स्थित हृदय कमल (छाती) की सुन्दरता अद्वितीय है। प्रेम और आनन्द के रस से भरपूर इन अंगों की शोभा को देखने में मेरी आत्म-दृष्टि अटकी रहती है।

भावार्थ- कन्धों के नीचे तथा हृदय के दोनों ओर का अस्थियों वाला भाग पसली कहलाता है। "रंग" शब्द का तात्पर्य आनन्द से होता है। श्री राज जी का नख से शिख तक का स्वरूप प्रेम और आनन्द से भरा हुआ है।

मच्छे दोऊ बाजूअ के, सलूकी अति सोभित।

रंग छब कोमल दिल की, आसिक हैड़े बसत॥६२॥

दोनों बाजुओं के डौलों की सुन्दरता बहुत अधिक सुशोभित हो रही है। श्री राज जी के अति कोमल दिल से प्रकट होने वाली आनन्दमयी छवि अँगनाओं के धाम

हृदय में अखण्ड रूप से वास करती है।

भावार्थ- काँख की दिशा वाला बाजू का भाग बहुत ही माँसल एवं सुन्दर होता है, जिसे हिन्दी में माँसपेशी (पुष्टा), पंजाबी भाषा में डौले, एवं अंग्रेजी में muscle कहते हैं।

हस्त कमल की क्यों कहूँ, पोहोंचे हथेली कई रंग।

लाल उज्जल रंग केहेत हों, इन रंग में कई तरंग॥६३॥

प्रियतम अक्षरातीत के दोनों हस्त कमलों (हाथों) की सुन्दरता का वर्णन मैं कैसे करूँ। उनके पोहोंचों और हथेलियों में कई प्रकार के रंग हैं। यद्यपि मैं समझने के लिये लालिमा-मिश्रित उज्ज्वल रंग अवश्य कहती हूँ, किन्तु इन रंगों से अनेक प्रकार के रंगों की तरंगें झलकती रहती हैं।

भावार्थ- हथेली की विपरीत दिशा का ऊपरी भाग पँजा या पहुँचा (पोहोंचा) कहलाता है।

कोनी काड़े कलाइयां, रंग नरमाई सलूक।

ऐसा सखत मेरा जीवरा, और होवे तो होए टूक टूक॥६४॥

मेरा जीव इतने कठोर हृदय का कैसे हो गया है जो प्राण प्रियतम अक्षरातीत की बाँहों की कोहनियों, काड़ों, और कलाइयों के रंग, कोमलता, एवं सौन्दर्य को देखकर भी शान्त बना हुआ है। मेरे अतिरिक्त कोई और हो, तो इस अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर ही टुकड़े-टुकड़े हो जाये अर्थात् अपने अस्तित्व को विलीन कर दे।

भावार्थ- महामति जी के जीव से अधिक निर्मल और कोमल दिल अन्य किसी का भी नहीं है, किन्तु इस चौपाई में अपने जीव को कठोर कहकर उन्होंने

सुन्दरसाथ को यह सिखापन दी है कि वे अपने विरह-प्रेम की डींगें न हाँका करे। प्रायः सुन्दरसाथ थोड़ी सी आध्यात्मिक सफलता प्राप्त हो जाने के पश्चात् अपने प्रेम के सामने दूसरों के भाव को कुछ भी नहीं समझता और अपने मुख से अपनी प्रशंसा करके स्वयं को गौरवान्वित समझता है। यह बहुत बड़ी भूल है।

ना तेहेकीक होवे रंग की, ना छबि होए तेहेकीक।

क्यों कहूं बीसों अंगुरियां, और मिंही हथेलियां लीक॥६५॥

धाम धनी के हाथों और पैरों की बीसों अँगुलियों तथा हथेलियों की पतली रेखाओं का वर्णन मैं कैसे करूँ। इनके रंग की अलौकिक सुन्दरता तथा अनन्त शोभा के माप का तो निर्णय ही नहीं हो पा रहा है।

नरम अंगुरियां पतली, लगेँ मीठी मूठ वालत।

ए कोमलता क्यों कहूं, जिन छबि अंगुरी खोलत॥६६॥

अँगुलियां कोमल और पतली हैं। जब धाम धनी अपनी मुट्ठी बन्द करते हैं, तो वे बहुत ही प्यारी (मधुर, मीठी) लगती हैं, किन्तु जब वे अपनी अँगुलियों को खोलते हैं तो उस समय अँगुलियों की सुन्दरता तथा कोमलता का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं रह जाता।

क्यों देऊं निमूना नख का, इन अंगों नख का नूर।

देत न देखाई कछुए, जो होवे कोटक सूर॥६७॥

मैं इस संसार के मन, बुद्धि, एवं जिह्वा से नखों के नूर की उपमा कैसे दूँ। यदि करोड़ों सूर्य भी धाम धनी के एक नख के सामने हों, तो उसके (नख के) तेज के सामने वे दिखायी भी नहीं पड़ेंगे अर्थात् पूर्णतया निस्तेज हो

जायेंगे।

भावार्थ- इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "इन अंगों" का तात्पर्य यहाँ के मन, बुद्धि आदि हैं, जिनके माध्यम से कहा जा रहा है। करोड़ों सूर्यों का तेज भी जब एक नख के तेज के बराबर नहीं है, तो संसार के मन-बुद्धि से यह कैसे बताया जा सकता है कि धाम धनी के नख कैसे हैं।

अब देखो पेट पांसली, और लांक चलत लेहेकत।

ए सोभा सलूकी लेऊं रूह में, तो भी उड़े न जीवरा सखत॥६८॥

हे साथ जी! अब आप धाम धनी के पेट एवं पसलियों वाले स्थान के सौन्दर्य को देखिए। चलते समय उनकी कमर बहुत ही सुशोभित होती (लहकती) है। मैं इस सौन्दर्य सागर की अपार शोभा को अपनी आत्मा के

अन्दर बसा रही हूँ, फिर भी मेरा यह जीव इतना कठोर है कि अपने अस्तित्व को अभी भी बनाए हुए है।

देख हरवटी अति सुन्दर, और लाल गाल गौर।

लांक अधुर बीच हरवटी, क्यों कहूं नूर जहूर॥६९॥

हे मेरी आत्मा! तू अपने प्राणवल्लभ की अति सुन्दर तुड्डी को देख। लालिमा से भरे गौर गालों की शोभा को देख। मैं तुड्डी तथा दोनों होंठों के बीच के नूरी सौन्दर्य का वर्णन कैसे करूँ, यह तो पूर्णतया असम्भव है।

गाल सोभा अति देत हैं, क्यों कहूं इन मुख छब।

उज्जल लाल रंग सुन्दर, क्यों कहूं सलूकी फब॥७०॥

धाम धनी के दोनों गाल बहुत ही मनोहारिणी शोभा से युक्त हैं। उनके इस मुख की शोभा का वर्णन मैं कैसे कर

सकती हूँ। दोनों गालों का रंग उज्ज्वलता में लालिमा लिये हुए अति सुन्दर है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस सुन्दर शोभा को व्यक्त कैसे करूँ।

कानन की किन विध कहूँ, जो सुने आसिक के बैन।

सो सुन देवें पड़उत्तर, ज्यों आसिक पावे सुख चैन॥७१॥

मैं श्री राज जी के उन कानों की महिमा का वर्णन कैसे करूँ, जो सखियों (आशिकों) की बातों को अति प्यार से सुनते हैं और उत्तर देते हैं। धनी के उत्तर इतने मीठे होते हैं कि उसे सुनकर ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में सुख का साम्राज्य बना रहता है।

मुख दंत लाल अधुर छब, मधुरी बोलत मुख बान।

खँच लेत अरवाह को, ए जो बानी अर्स सुभान॥७२॥

धाम धनी के मुखारविन्द, दाँतों, तथा लाल होंठों की शोभा अनन्त है। वे अपने मुख से अति मीठी वाणी बोलते हैं। प्रेम रस से भरपूर उनकी वाणी इतनी मधुर होती है कि प्रत्येक आत्मा उनकी ओर खिंची रहती है।

भावार्थ— परमधाम की वहदत (एकदिली) में श्री राज जी, श्यामा जी, तथा सखियाँ सभी एक-दूसरे के प्रति आकर्षण में बँधे होते हैं, क्योंकि श्री राज जी का दिल ही तो श्यामा जी, सखियों, एवं २५ पक्षों के रूप में लीला कर रहा है। उनके आकर्षण में रञ्जमात्र भी कभी कमी नहीं होती। धाम धनी की मधुर वाणी की महिमा को दर्शाने के लिये ही आकर्षित होने की बात कही गयी है और लीला में ऐसा होना स्वाभाविक है।

नैन अनियारे बंकी छब, चंचल चौपल रसाल।

बान बंके मारत खँच के, छाती छेद निकसत भाल॥७३॥

प्राण प्रियतम के नेत्र नुकीले तथा तिरछी दृष्टि वाले हैं। प्रेम के रस से भरपूर इन नेत्रों में स्वभावतः ही चञ्चलता एवं चौपलता है। जब धाम धनी अपनी तिरछी नजर (दृष्टि) से प्रेम के तीखे बाण छोड़ते हैं, तो वे भाले की तरह अँगनाओं के हृदय को छेदकर (चुभकर) निकल जाते हैं।

भावार्थ- नेत्रों के कोनों का नुकीला होना उनकी सुन्दरता का प्रमाण होता है। गोल तथा छोटी आँखें सुन्दर नहीं मानी जाती। विरह-प्रेम से रहित अलसाये हुए व्यक्तियों की आँखें सुस्त होती हैं, जबकि किसी के प्रेम में डूबे रहने वालों की आँखें चञ्चल एवं चमक से भरपूर आकर्षित करने वाली होती हैं। हृदय को छेदकर

निकल जाने का तात्पर्य है, ब्रह्मसृष्टियों का धनी के प्रेम में डूबकर एकरस एवं एकाकार हो जाना।

लाल तिलक निलवट दिए, अति सुन्दर सुखदाए।

असल बन्या ऐसा ही, कई नई नई जोत देखाए॥७४॥

माथे पर लाल रंग का बहुत ही सुन्दर तिलक लगा हुआ है, जो सबको आनन्द देने वाला है। वह मूलतः अंग में ही बना हुआ है अर्थात् ऊपर से लगाया हुआ नहीं है। उससे अनेक प्रकार की नई-नई नूरमयी ज्योति प्रकट होती रहती है।

नैन कान मुख नासिका, रंग रस भरे जोवन।

हाथ पांउं कण्ठ हैयड़ा, सब चढ़ते देखे रोसन॥७५॥

श्री राज जी के नेत्र, कान, मुख, नासिका, हाथ, पैर,

कण्ठ, और हृदय (छाती) आदि सभी अंगों में प्रेम तथा आनन्द का रस भरा हुआ है। इनमें नित्य यौवन विद्यमान रहता है। ये सभी अंग किशोरावस्था के अखण्ड सौन्दर्य में ही हमेशा दृष्टिगोचर होते हैं।

नख सिख बन्ध बन्ध सब अंग, मानों सब चढ़ते चंचल।

छब फब सोभा सुन्दर, तेज जोत अंग सब बल॥७६॥

श्री राज जी के सिर से पैर तक के सभी अंगों एवं उनके जोड़ों में सौन्दर्य की चढ़ती अवस्था है और वे प्रेम लीला में निरन्तर क्रियाशील रहने वाले हैं। इनकी छवि बहुत ही मनोहर है। प्रत्येक अंग अपार शोभा, सौन्दर्य, तेज, ज्योति, और शक्ति से युक्त है।

भावार्थ— इस प्रकरण की चौपाई ७३ में नेत्रों को चञ्चल कहा गया है तथा इस ७६वीं चौपाई में सभी अंगों को

चञ्चल कहा गया है। यहाँ चञ्चल कहने का तात्पर्य रजोगुण से उत्पन्न मानसिक एवं शारीरिक चञ्चलता नहीं है, बल्कि त्रिगुणातीत प्रेम की स्वाभाविक क्रियाशीलता है। तमोगुण से ग्रसित व्यक्ति आलस्य, प्रमाद, एवं नींद से ग्रसित रहता है। इस सम्बन्ध में गीता का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है – "प्रमाद आलस्य निद्राभिः तत् निबध्नाति कौन्तेय" अर्थात् तमोगुण मनुष्य को प्रमाद, आलस्य, और नींद के बन्धनों में बाँध देता है। अक्षरातीत के सभी अंगों में त्रिगुणातीत एवं निर्विकार प्रेम भरा हुआ है, इसलिये वे कभी सुस्त व्यक्ति की तरह नहीं रह सकते। उसे दर्शाने के लिये ही इन चौपाइयों में चञ्चल, चौपल आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि रास ग्रन्थ १/९ में माया के आयुधों में भी चञ्चल और चौपल शब्दों का प्रयोग

किया गया है, किन्तु इनका आशय रजोगुण से उत्पन्न होने वाली मायावी एवं वैकारिक क्रियाशीलता से है।

सुन्दर ललित कोमल, देख देख सब अंग।

तेज जोत नूर सब चढ़ते, सब देखत रस भरे रंग॥७७॥

हे मेरी आत्मा! प्रियतम् अक्षरातीत के इन सभी अंगों की शोभा को तू देख, जो बहुत ही सुन्दर, कमनीय, और सुकुमार (कोमल) हैं। इन सभी अंगों में नूरी तेज और ज्योति की वृद्धि होती रहती है। सभी प्रेम और आनन्द के रस से ओत-प्रोत दिखायी दे रहे हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में वृद्धि (चढ़ना) से तात्पर्य हास के पश्चात् होने वाली लौकिक वृद्धि नहीं है, बल्कि अखण्ड रूप से नित्य नवीन रहने वाली उस स्थिति से है, जिसमें रञ्चमात्र भी कभी हास की प्रक्रिया नहीं होती।

यही कारण है कि ब्रह्म को बृहण् भी कहते हैं, जिसका अर्थ होता है बढ़ना (नित्य वृद्धि को प्राप्त होना), अर्थात् परब्रह्म के प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द, शक्ति, ज्ञान आदि गुणों में पल-पल नित्य वृद्धि होती रहती है।

कटि कोमल दिल हैयड़ा, अति उज्जल छाती सुन्दर।

चढ़ते इस्क अंग अधिक, ऐसा चुभ्या रूह के अन्दर॥७८॥

श्री राज जी की कमर तथा हृदय बहुत ही कोमल हैं। उनका वक्षस्थल अत्यन्त सुन्दर एवं गौर वर्ण का है। मेरी आत्मा के धाम हृदय में यही दृष्टिगोचर हो रहा है कि इन सभी अंगों में अनन्त प्रेम (इश्क) लबालब (पूर्ण रूप से) भरा हुआ है।

भावार्थ- "हैयड़ा" शब्द का अर्थ हृदय और वक्षस्थल (छाती) दोनों ही होता है। हैयड़े पर हारों की शोभा के

सन्दर्भ में यह बात स्पष्ट होती है। हृदय का तात्पर्य स्थूल और सूक्ष्म (कारण शरीर) दोनों से ही है। यद्यपि परमधाम में वहदत के कारण स्थूल और सूक्ष्म में कोई भी भेद नहीं है, किन्तु इस संसार के भावों से ऐसी अभिव्यक्ति की गयी है। दिल और हृदय भी समानार्थक शब्द हैं, किन्तु इनमें भाषायी भेद है।

सौन्दर्य एवं प्रेम के वर्णन का प्रसंग होने से यहाँ "दिल" का तात्पर्य स्थूल और सूक्ष्म हृदय से, तथा "हैयड़ा" का भाव छाती से लिया जायेगा। यह विशेष ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि स्थूल हृदय की कोमलता या कठोरता सूक्ष्म हृदय के भावों पर ही निर्भर करती है। सूक्ष्म हृदय की कोमलता ही वक्षस्थल (हृदय कमल) को भी कोमल बनाती है। शेर की छाती (वक्षस्थल) को कठोर कहने का तात्पर्य हृदय को कठोर कहने से है।

इतथें रूह क्यों निकसे, जो इन मासूक की आसिक।

छोड़ छाती आगे जाए ना सके, मार डारत मुतलक॥७९॥

अपने प्राण प्रियतम के प्रेम में डूबी रहने वाली अँगनाओं की आत्म-दृष्टि इस अलौकिक शोभा को छोड़कर अन्य कहीं पर भी नहीं जा सकती। निश्चित रूप से वक्षस्थल की अद्वितीय शोभा उसे पूर्णतया वशीभूत कर लेती है और अपने अन्दर डूब जाने के लिये विवश कर देती है (आगे नहीं जाने देती)।

भावार्थ- "मार डालना" एक मुहावरा है, जिसका तात्पर्य होता है, पूर्णतया वशीभूत कर लेना। इसी प्रकार वश में करने के लिये "घायल कर देने" का मुहावरा भी प्रयोग किया जाता है।

जिन बिध की ए इजार, तापर लग बैठा दावन।

सेत रंग दावन देखिए, आगूं इजार रंग रोसन॥८०॥

इजार (चूड़ीदार पायजामे) का पहनावा इस प्रकार का है कि श्वेत रंग के जामे का घेरा (दावन) उसके ऊपर से आया हुआ है। जब उस दामन को देखा जाता है, तो उसके अन्दर (नीचे) से इजार का रंग झलकने लगता है।

भावार्थ- इजार कमर में बाँधी जाती है, जबकि जामा प्रायः कन्धे से घुटने तक आता है। ऐसी स्थिति में कमर से घुटने तक की इजार जामे के अन्दर से झलकती है। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

गौर रंग जामा उज्जल, जुड़ बैठा अंग ऊपर।

अति बिराजत इन विध, ए खूबी कहूं क्यों कर॥८१॥

श्री राज जी का स्वरूप अति गौर वर्ण का है और जामे

का रंग श्वेत वर्ण का है। उनके नूरी शरीर पर जामा जुड़ा (चिपका) हुआ सा दिखता है। इस प्रकार उसकी सुन्दरता बहुत अधिक है। किसी भी प्रकार से उसकी शोभा का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

ए जुगत जामें की क्यों कहूं, झलकत है चहुं ओर।

बाहें चोली और दावन, सोभा देत सब ठौर॥८२॥

जामें की बनावट का वर्णन मैं कैसे करूँ। उसकी नूरमयी झलकार चारों ओर फैल रही है। जामे की बाँहों, चोली, और दामन के चारों ओर अति सुन्दर शोभा आयी हुई है।

भावार्थ— जामे का जो भाग वक्षस्थल से चिपका हुआ होता है, उसे "चोली" कहते हैं। इसी प्रकार कमर से नीचे का भाग "दावन" (दामन) कहलाता है।

पीछे कटाव जो कोतकी, रंग नंग जरी झलकत।

चीन मोहोरी दोऊ हाथ की, ए सुन्दर जोत अतन्त॥८३॥

जामे की पीठ पर कोतकी के रूप में स्वर्णमयी तारों से बेल-बूटे बने हुए हैं, जिनमें अनेक रंग के नग झलकार कर रहे हैं। जामे के दोनों हाथों की मोहोरी में चुन्नटें बनी हुई हैं, जिससे निकलने वाली नूरी ज्योति की सुन्दरता अनन्त है।

द्रष्टव्य- जामे की बाँह में कलाई के पास घेरे की जो परिधि होती है, उसे "मोहोरी" कहते हैं। कोतकी एक प्रकार की बनावट है, जो त्रिभुज, पान के पत्ते, और कमल के फूल आदि की आकृति में बेल -बूटों से सुसज्जित करके बनायी जाती है।

बेल नकस दोऊ बगलों, और बेल गिरवान बन्ध।

चूड़ी समारी बाहन की, क्यों कहूं सोभा सनन्ध॥८४॥

वक्षस्थल के दोनों ओर बाँहों से लगते हुए स्थान पर बेलों की नक्शकारी है। इसके अतिरिक्त तनियों के बाँधे जाने वाले स्थान (गिरवान बन्ध) पर भी सुन्दर-सुन्दर बेलों की चित्रकारी है। दोनों बाँहों में चुन्नटें बहुत ही सुन्दर ढंग से बनी हैं। इनकी वास्तविक शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

छोटी बड़ी न जाड़ी पतली, सबे बनी एक रास।

उतरती मिहीं मिहीं से, जुबां क्या कहे खूबी खास॥८५॥

जामें की चुन्नटें न तो बड़ी हैं और न छोटी, न कोई पतली हैं और न कोई मोटी, बल्कि सभी समान आकार में बनी हुई हैं। ये ऊपर से नीचे तक बहुत ही थोड़ी-

थोड़ी दूरी पर आयी हैं। उनकी इस विचित्र प्रकार की विशेषता को यहाँ की जिह्वा (वाणी) से कैसे कहा जाये।

पीला पटुका कमरें, रंग नंग छेड़े किनार।

बेल पात फूल नकस, होत आकास उद्धोत कार॥८६॥

कमर में पीला पटुका बँधा हुआ है। उसके पल्ले एवं किनार पर अनेक रंगों के नग जड़े हुए हैं। इस पटुके में अनेक प्रकार की लताओं, पत्तियों, तथा फूलों की चित्रकारी (नक्शकारी) है, जिसकी ज्योति आकाश में चारों ओर फैल रही है।

लाल नीले सेत स्याम रंग, किनार बेल कटाव।

सात रंग छेड़ों मिने, क्यों कहूं जुगत जड़ाव॥८७॥

पटुके के किनारे की बनी हुई बेलों की नक्शकारी में

चार प्रकार के रंगों का प्रयोग हुआ है। वे रंग हैं— लाल, नीला, श्वेत, और काला। इसी प्रकार पल्लों में सात प्रकार के रंगों का समायोजन है। नगों से जड़ित इस प्रकार की बनावट की शोभा का मैं वर्णन कैसे करूँ।

पाच पाने मोती नीलवी, हीरे पोखरे मानिक नंग।

बेल कटाव कई नकस, कहूँ गरभित केते रंग॥८८॥

पटुके में बेल—बूटों की अनेक प्रकार की चित्रकारी है, जिसमें पाच, पन्ना, मोती, नीलम, हीरा, पुखराज, और माणिक के नग जड़े हुए हैं। इनके अन्दर से इतने प्रकार के रंग निकलते हैं, जिनका वर्णन मैं कैसे करूँ।

जामें में झाँई झलकत, हरे रंग इजार।

लाल बन्ध और फुन्दन, कई रंग नंग अपार॥८९॥

श्वेत रंग के जामे में हरे रंग की इजार की झाँई (आभास) झलकती है। लाल रंग के इजारबन्द (डोरी) और फुन्दन में कई रंगों के अपार नग जड़े हुए हैं।

भावार्थ- आभास और प्रतिभास (प्रतिबिम्ब) में अन्तर है। आभास का भाव झाँई से है, जो किसी महीन पारदर्शी कपड़े और जल आदि के अन्दर देखा जाता है। जल में आभास और प्रतिभास दोनों की प्रक्रिया होती है।

कहूं अंगों का बेवरा, जुदे जुदे भूखन।

ए जो जवेर अर्स के, कहूं पेहेले भूखन चरन॥९०॥

अब मैं धाम धनी के अंगों में सुशोभित आभूषणों का अलग-अलग विवरण देती हूँ। परमधाम के ये आभूषण नूरमयी जवाहरातों के हैं। अब सबसे पहले मैं चरणों के आभूषणों का वर्णन करती हूँ।

चारों जोड़े चरन के, नरमाई सुगन्ध सुखकार।

बानी मधुरी बोलत, सोभा और झलकार॥९१॥

धाम धनी के दोनों चरणों में चार आभूषण जगमगा रहे हैं— १. झांझरी, २. घूंघरी, ३. कांबी, ४. कड़ा। इनमें कोमलता और सुगन्धि भरी हुई है तथा ये हृदय को अपार आनन्द देने वाले हैं। इनसे बहुत ही मधुर आवाज निकलती है। इनकी शोभा और झलकार अलौकिक है।

भूखन मेरे धनी के, किन विध कहूं जो ए।

के कहूं खूबी नरमाई की, के कहूं अम्बार तेज के॥९२॥

मैं अपने प्राणवल्लभ के आभूषणों की विशेषता का वर्णन कैसे करूँ। उनकी कोमलता अलौकिक है तथा वे नूरमयी तेज की राशि के रूप में दिखायी देते हैं। उनकी इस प्रकार की विशेषताओं का वर्णन कैसे सम्भव है।

एक नंग के कई रंग, सोभे झन बाजे झांझर।

पांच नंग रंग एक के, अति मीठी बोले घूंघर॥९३॥

झांझरी से झन-झन की अति मधुर आवाज निकलती है। उसके एक-एक नंग के अन्दर कई प्रकार के रंग होते हैं। इसी प्रकार घूंघरी बहुत ही मीठी आवाज करती है और एक-एक घूंघर में अनेक रंगों के पाँच-पाँच नंग जड़े हुए हैं।

नाके वाले जवेर के, माहें नरम जोत गुन दोए।

तीसरी बानी माधुरी, चौथा गुन खुसबोए॥९४॥

घुंघरियों के कुण्डों में जवाहरात जड़े हैं। इनमें कई गुण हैं। पहला गुण तो यह है कि ये बहुत ही कोमल हैं। दूसरा गुण है ज्योति। तीसरा विशेष गुण यह है कि ये बहुत ही मधुर आवाज करते हैं। चौथा गुण है, सुगन्धि से भरा

होना।

सोई पांच रंग एक नंग में, तिनकी बनी जो कड़ी।

देत देखाई रंग नंग जुदे, जानों किन घड़ के जड़ी॥९५॥

इसी प्रकार नगों से जड़ित कड़ी की शोभा आयी है। इसके एक-एक नग में पाँच-पाँच रंग आये हैं। प्रत्येक नग में रंग अलग-अलग दिखायी पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे किसी ने घड़ करके जड़ दिया है।

कांबी एक जवेर की, तामें झीने रंग नंग दस।

दिल चाहे भूखन सब बने, सो हक भूखन ए अर्स॥९६॥

जवाहरातों से बनी हुई कांबी है, जिसमें दस रंग के बारीक-बारीक नग आये हुए हैं। परमधाम के इन आभूषणों की विशेषता यह है कि ये सभी धाम धनी के

दिल की इच्छानुसार ही बने होते हैं (दिखायी देते हैं)।

मैं देखे जवेर अर्स के, ज्यों हेम भूखन होत इत।

कई रंग नंग मिलाए के, बहु बिध भूखन जड़ित॥९७॥

मैंने परमधाम के जवाहरातों को देखा और यहाँ के सोने में नग जड़ित आभूषणों से तुलना करने का प्रयास किया। इस संसार में तो भिन्न-भिन्न प्रकार के रंगों वाले नगों को सोने में जोड़कर अनेक प्रकार के आभूषण बनाये जाते हैं, किन्तु परमधाम में ऐसा नहीं होता।

भावार्थ- इस संसार में एक नग का एक ही रंग होता है, जैसे- हीरे का सफेद, माणिक का लाल, पुखराज का पीला, नीलम का नीला, एवं पाच का हरा।

किन जड़े घड़े ना समारे, भूखन आवत दिल चाहे।

अर्स जवेर कंचन ज्यों, जानों असल ऐसे ही बनाए॥९८॥

परमधाम के इन आभूषणों को किसी ने भी सोने में नग जड़कर या गढ़कर नहीं बनाया है। ये सभी आभूषण तो दिल की इच्छानुसार शोभा देते हैं (प्रकट हो जाते हैं)। इन्हें देखने से ऐसा लगता है कि जैसे किसी ने परमधाम के जवाहरातों को सोने में जड़कर वास्तव में बना दिया है।

दस रंग के जवेर की, माहें कई नकस मुंदरी।

दोए अंगूठी अंगूठों, आठों जिनस आठ अंगुरी॥९९॥

दोनों हाथों में दस रंग के जवाहरातों की दस मुद्रिकायें हैं, जिनके अन्दर कई प्रकार की नक्शकारी की गयी है। दोनों अँगूठों में दो अँगूठियां हैं और शेष आठ अँगुलियों में

आठ मुद्रिकायें (अँगूठियां) हैं।

ए नरम अंगुरियां अतन्त, नख सोभित तेज अपार।

ए देखो भूल अकल की, सोभा ल्याइए माहें सुमार॥१००॥

इन अँगुलियों की कोमलता अनन्त है। इनके नखों में अपार तेज सुशोभित हो रहा है। इनकी अनन्त शोभा को सीमाबद्ध करके वर्णन करना बुद्धि की बहुत बड़ी भूल मानी जायेगी।

पोहोंचे और हथेलियां, केहे न सकों सलूकी ए।

छबि देख रंग हाथन की, बल बल जाऊं इनके॥१०१॥

दोनों हाथों के पँजे और हथेलियाँ इतनी सुन्दर हैं कि उनके अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन कर पाना मेरे लिये कदापि सम्भव नहीं है। हाथों के रंग की शोभा देखकर मैं

बारम्बार न्योछावर होती हूँ।

कड़ियां दोऊ काड़ो सोहे, सोभा तेज धरत।

लाल नंग नीले आसमानी, जोत अवकास भरत॥१०२॥

दोनों हाथ के कड़ों में कड़ियाँ सुशोभित हो रही हैं। इनका तेज अलौकिक शोभा को धारण कर रहा है। इनमें जड़े हुए लाल, नीले, और आसमानी रंग के नगों की ज्योति आकाश में फैल रही है।

पोहोंची पांचों नंग की, जुबां केहे न सके जिनस।

पाच पांने मोती नीलवी, लरें हीरे अति सरस॥१०३॥

धाम धनी ने अपने दोनों हाथों में जो पोहोंची पहन रखी है, उसमें अति सुन्दर ये पाँच नग जड़े हुए हैं— १-पाच, २-पन्ना, ३-मोती, ४-नीलम, ५-हीरा। इन पोहोंचियों

की शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं कहा जा सकता।
इन नगों से निकलने वाली किरणें आपस में टकराती
(लड़ती) रहती हैं।

बाजूबन्ध की क्यों कहूं, जो बिराजे बाजू पर।

कई मिहीं नकस कटाव, जोत भरी जिमी अम्बर॥१०४॥

दोनों बाजुओं पर बाजूबन्ध विराजमान हैं, जिनकी
शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। इनके अन्दर
बेल-बूटों की बारीक चित्रकारी की गयी है। इन दोनों
बाजूबन्धों से उठने वाली नूरी ज्योति धरती से लेकर
आकाश तक फैली हुई है।

एक नंग एक रंग का, एक रंगे नंग अनेक।

इन बिध के अर्स भूखन, सो कहां लो कहूं विवेक॥१०५॥

परमधाम के आभूषण इस प्रकार के हैं कि उनमें कहीं तो एक रंग का एक ही नग है, तो कहीं पर एक रंग के अनेक नग आये हैं। इन सबका विवरण मैं कहाँ तक कहूँ।

पाँच रंग जरी फुन्दन, सोभा लेत अतंत।

पाँच रंग जवेर झलके, फुन्दन सोहे लटकत॥१०६॥

पाँच रंग की जरी (धातु की तार) में लटकते हुए फुन्दन शोभायमान हो रहे हैं। इन फुन्दनों में पाँच रंग के जवाहरात झलकार कर रहे हैं। इनकी शोभा अनन्त है।

नरम जोत खुसबोए, दिल चाही सोभाए।

कई विध सुख लेवे हक के, सुख भूखन कहे न जाए॥१०७॥

इन आभूषणों में कोमलता है, नूरी ज्योति है, और ये सुगन्धि से भरपूर हैं। धाम धनी के दिल की इच्छानुसार

ये शोभा देते हैं। आभूषणों के सुख का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। ये धाम धनी से अनेक प्रकार का सुख प्राप्त करते हैं।

भावार्थ- आभूषण भी आत्म-स्वरूप और चेतन हैं। इन्हें इस संसार के जड़ आभूषणों जैसा नहीं समझना चाहिए। ब्रह्माङ्गनाओं की तरह ये भी धनी के प्रेम का आनन्द प्राप्त करते हैं। आभूषणों की दिल चाही शोभा का तात्पर्य केवल श्री राज जी के दिल से ही नहीं है, बल्कि श्यामा जी एवं सखियों के भी दिल की इच्छानुसार वस्त्रों और आभूषणों की शोभा दृष्टिगोचर होती है। सिनगार २१/१९५ का यह कथन इस सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण है—

अर्स में भी रूहें लेत है, जैसी खाहिस जिन।

रूह जैसा देख्या चाहे, तिन तैसा होत दरसन॥

बीच हार मानिक का, और हीरों हार उज्जल।

पाच मोती और नीलवी, लसनियां अति निरमल॥१०८॥

श्री राज जी के गले में छः हार हैं, जिनके मध्य में मानिक का हार है। हीरों का हार बहुत ही उज्ज्वल है। इनके अतिरिक्त पाच, मोती, नीलम, और लहसुनिया के हार जगमगा रहे हैं। ये सभी हार बहुत ही स्वच्छ रंग के हैं।

और निरमल मांहें दुगदुगी, तामें नंग करत अति बल।

बीच हीरा छे गिरदवाए, जोत आकास किया उज्जल॥१०९॥

प्रत्येक हार में जगमगाती हुई दुगदुगी की शोभा आयी है। प्रत्येक दुगदुगी के बीच में हीरा है और उसे घेरकर सभी में छः-छः नग आये हैं। इन नगों की सुन्दरता बहुत अधिक है। हीरों की ज्योति से सम्पूर्ण आकाश उज्ज्वल

ज्योति से भरा रहता है।

गौर गलस्थल धनी के, उज्जल लाल सुरंग।

झाँई उठे इन नूर में, करन फूल के नंग॥११०॥

धनी के गले का भाग बहुत ही गोरे रंग का है। वह उज्ज्वलता में गहरी लालिमा लिये हुए है। श्री राज जी ने अपने कानों में जो कर्णफूल धारण कर रखा है, उसमें जड़े हुए नगों की झाँई (आभास) गले से उठने वाले नूर में दृष्टिगोचर होती है।

निरख नासिका धनी की, लटके मोती पर लाल।

लेत अमी रस अधुर पर, रस अमृत रंग गुलाल॥१११॥

हे मेरी आत्मा! तू धनी की इस मनोहर नासिका को देख। उसमें सुशोभित बुलाक के मोती के ऊपर लाल रंग

का एक नग लटक रहा है। श्री राज जी के होंठों का रंग लाल है और उसमें प्रेम का अमृतमयी रस भरा हुआ है। अधरों को स्पर्श करने वाला यह नग प्रेम के उस अमृतरस का निरन्तर पान करता रहता है।

करन फूल की क्यों कहूँ, उठत किरन कई रंग।

तिन नंग रंग कई भासत, रंग रंग में कई तरंग॥११२॥

कानों में धारण किये हुए कर्णफूलों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। इनसे उठने वाली किरणों से अनेक प्रकार के रंग प्रकट होते हैं। कर्णफूल में जड़े हुए नगों से कई प्रकार के रंग दृष्टिगोचर होते हैं और प्रत्येक रंग से अनेक प्रकार की तरंगें निकलती हैं।

करत मानिक माहें लालक, हीरे मोती सेत उजास।

और पाच करत है नीलक, लेत लेहेरी जोत आकास॥११३॥

कर्णफूल में जड़े हुए माणिक के नग से लाल रंग का प्रकाश निकलता है, तो हीरे और मोती से श्वेत रंग का उज्ज्वल प्रकाश फैलता है। पाच से हरे रंग का प्रकाश फूटता है (प्रस्फुटित होता है)। उससे निकलने वाली ज्योति की लहरें आकाश में फैल रही हैं।

तेज भी मानिक तित मिले, पोहोंचत तित पुखराज।

नीलवी तो तेज आसमानी, रहे रंग नंग पांचों बिराज॥११४॥

उस प्रकाश में माणिक का लाल प्रकाश मिल जाता है, तो पुखराज का पीला प्रकाश भी सम्मिलित हो जाता है। नीलम से निकलने वाला आसमानी रंग का तेज भी उसी में शामिल हो जाता है। इस प्रकार पाँचों नगों से निकलने

वाला पाँच रंगों का प्रकाश आकाश में एकसाथ दिखायी पड़ता है।

पाँच फूल कलंगी पर, उपरा ऊपर लटकत।

कोई ऐसी कुदरत नूर की, लेहेरी आकास में झलकत॥११५॥

पाग में कलंगी आयी है, जिसमें पाँच फूल एक-दूसरे के ऊपर लटक रहे हैं। इन फूलों से निकलने वाले नूर की कुछ ऐसी शोभा है कि उसकी लहरें आकाश में झलकार कर रही हैं।

एता इन कलंगी मिने, एकै हीरे का नूर।

आसमान जिमी के बीच में, मानों कोटक ऊगे बका सूर॥११६॥

कलंगी में जड़े हुए एक हीरे का नूर ही इतना अधिक है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे धरती और आकाश के बीच

में करोड़ों की संख्या में अखण्ड सूर्य उग आये हों।

जंग जवेर करत हैं, आसमान देखिए जब।

लरत बीच आकास में, नजरोँ आवत है तब॥११७॥

हे साथ जी! यदि आप परमधाम के नूरी आकाश की ओर देखें, तो ऐसा लगता है कि जवाहरातों से उठने वाली प्रकाश की किरणें आपस में युद्ध सी करती हुई (टकराती हुई) दिखायी देती हैं।

कहे महामत अरवा अर्स से, जो कोई आई होए उतर।

सो इन सरूप के चरन लेय के, चलिए अपने घर॥११८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम से जो भी ब्रह्मसृष्टि इस खेल में आयी है, वह धाम धनी के चरणों को अपने हृदय में बसाकर अपने धाम में वापस चले।

भावार्थ- प्रियतम के चरणों को अपने धाम हृदय में बसाने का तात्पर्य है- नख से शिख तक सम्पूर्ण श्रृंगार को बसाना। इसके बिना आत्म-जाग्रति की कल्पना करना मात्र हवाई महल बनाना है।

परमधाम में अनादि काल से प्रेम और आनन्द की लीला चलती रही है, किन्तु इस ब्रह्मवाणी के अवतरण से पहले किसी को भी इश्क (प्रेम), वहदत, निस्बत, और खिल्वत की मारिफत (सर्वोपरि शाश्वत सत्य) का बोध नहीं था। इस जागनी ब्रह्माण्ड का सर्वोपरि लक्ष्य मारिफत तक पहुँचना है, जो न तो कभी पहले सम्भव था और न कभी भविष्य में (अन्य ब्रह्माण्ड में) हो सकेगा।

इसलिये, इस जागनी लीला में सबका ध्येय यही होना चाहिए कि हम युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में

बसायें और परात्म में जाग्रत होने से पहले धनी के दिल में डुबकी लगाकर मारिफत के अनमोल मोतियों को अवश्य चुन लें।

प्रकरण ॥८॥ चौपाई ॥६५०॥

श्री ठकुरानीजी का सिनगार दूसरा – मंगला चरन

इस प्रकरण में श्यामा जी के दूसरे श्रृंगार का वर्णन किया गया है।

बरनन करुं बड़ी रूह की, जो हक नूर का अंग।

रूहें नूर इन अंग के, जो हमेसा सब संग॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि अब मैं श्री श्यामा जी की शोभा का वर्णन कर रही हूँ, जो श्री राज जी के नूर की अँगस्वरूपा हैं। इनके नूर की अँगरूपा ही ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, जो लीला में हमेशा उनके साथ रहती हैं।

भावार्थ- श्यामा जी को श्री राज जी के नूर का अंग कहने का तात्पर्य केवल बाह्य स्वरूप (चेतन ज्योति) का अंग होना नहीं है। नूर के विशिष्ट अर्थ हैं, जो इस ग्रन्थ के प्रकरण एक की व्याख्या में दिये गये हैं। श्री राज जी

का नख से शिख तक अन्दर-बाहर सम्पूर्ण स्वरूप नूरमयी है जिसमें प्रेम, आनन्द, कान्ति, आह्लाद, सौन्दर्य आदि सभी गुण विद्यमान हैं। लीला रूप में इसी स्वरूप का प्रकटीकरण दूसरे स्वरूप में हुआ है, जिन्हें श्यामा जी कहते हैं। इसी प्रकार श्यामा जी का प्रकटीकरण ब्रह्मसृष्टियों के रूप में हुआ है, जो हूबहू उन्हीं की स्वरूपा हैं। यही कारण है कि श्यामा जी को बड़ी रूह कहकर सम्बोधित किया गया है, अन्यथा परमधाम की वहदत में कोई भी छोटा-बड़ा नहीं है। यहाँ तक कि वहाँ पर अंश-अंशी भाव की भी कल्पना नहीं की जा सकती।

परमधाम में सबका सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द आदि समान हैं। मात्र लीला के लिये ही श्री राज जी से सभी रूपों का प्रकटीकरण है। इसे ही ऋत् अर्थात् परमसत्य (मारिफत) का वास्तविक सत्य (हकीकत) में

प्रकटीकरण कहते हैं। हमारी मानवीय बुद्धि में समझ में आने के लिये ही श्यामा जी एवं ब्रह्मसृष्टियों के स्वरूप का चित्रण अँगना भाव में किया गया है। मूलतः सभी एक स्वरूप हैं। धाम धनी का यह कथन "तुम मेरे तन हो, तुमसों इश्क जो मेरे दिल" यही सिद्ध करता है।

अक्षरातीत को संसार के सभी ग्रन्थों में पुरुष रूप में ही चित्रित किया गया है, किन्तु प्रेम की लीला विपरीत स्वरूप के साथ ही सम्पादित होती है, जिसके कारण श्यामा जी एवं ब्रह्मसृष्टियों को अँगना रूप में दर्शाया गया है। यद्यपि प्रेम का वास्तविक स्वरूप स्त्री-पुरुष के रूप की परिधि से परे होता है, किन्तु कालमाया, योगमाया, एवं परमधाम में प्रेम तत्व को दर्शाने के लिये विपरीत रूपों का ही सहारा लिया जाता है।

हक जात अंग अर्स का, क्यों कर बरनन होए।

इन सरूप को सुपन भोम का, सब्द न पोहोंचे कोए॥२॥

श्यामा जी तथा सखियों का स्वरूप परमधाम का है। उनकी शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है। इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड के शब्दों में तो इनकी शोभा का यथार्थ वर्णन करने की शक्ति ही नहीं है।

किन देख्या सुन्या न तरफ पाई, तो क्यों दुनियां सुन्या जाए।

जो अरवा होसी अर्स की, सो सुन के सुख पाए॥३॥

तारतम ज्ञान के न होने से आज तक संसार में किसी को परमधाम का साक्षात्कार नहीं हो सका था। यहाँ तक कि किसी ने उसके बारे में सुना भी नहीं था। उन्हें यह भी पता नहीं चल सका कि परमधाम किधर है। ऐसी स्थिति में यह अलौकिक ज्ञान संसार के सामान्य लोगों

के बीच कैसे सुना जा सकता था। एकमात्र जो परमधाम की आत्मा होगी, वह ही इस अलौकिक ज्ञान को सुनकर आनन्दित होगी।

भावार्थ- सृष्टि के प्रारम्भिक ऋषियों से लेकर आज दिन तक स्वलीला अद्वैत परमधाम का ज्ञान किसी को भी नहीं था। किसी ने वैकुण्ठ-निराकार को परमधाम माना, तो किसी ने अव्याकृत-सबलिक को। कोई विरला ही हुआ जो केवल और सत्स्वरूप तक अपनी गति बना सका। अक्षरातीत के परमधाम का साक्षात्कार तो असम्भव सी बात रही है। आज के वैज्ञानिक युग में भी करोड़ों निहारिकाओं (आकाशगंगाओं) वाले इस शून्य से परे की बात सोची नहीं जाती। ऐसी स्थिति में परमधाम कहाँ है, इसका निर्णय होना तारतम ज्ञान के बिना कदापि सम्भव नहीं है।

मेरी रूह चाहे बरनन करूं, होए ना बिना अर्स इलम।

वस्तर भूखन अर्स के, इत पोहोंचे ना सुपन का दम॥४॥

मेरी आत्मा श्यामा जी के श्रृंगार का वर्णन करना चाहती है, किन्तु परब्रह्म के दिये हुए ज्ञान के बिना यह सम्भव नहीं है। परमधाम के नूरी वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा का वर्णन करने की शक्ति यहाँ की बुद्धि एवं शब्दों में नहीं है।

पेहेने उतारे इन जिमी, नाहीं अर्स में चल विचल।

इत नकल कोई है नहीं, अर्स वाहेदत सदा असल॥५॥

परमधाम में वस्त्रों और आभूषणों को पहनने या उतारने की प्रक्रिया नहीं है। वहाँ न तो कोई वस्तु चलायमान है, और न अचल है अर्थात् जड़ता के कारण स्थिर है। परमधाम की वहदत में सर्वदा अक्षरातीत का नूरी स्वरूप

ही सर्वत्र क्रीड़ा कर रहा है। इस संसार की तरह परमधाम में कृत्रिम या प्रतिबिम्ब (नकल) जैसी कोई वस्तु नहीं है।

भावार्थ- परमधाम की कोई भी वस्तु न तो रूप से परिवर्तनशील है और न जड़ हवा की तरह चलायमान, अपितु प्रत्येक पदार्थ अखण्ड स्वरूप वाला है। उसमें जीर्णता या जड़ता की कल्पना भी नहीं है। इस संसार के थम्भों, दीवारों, और वृक्षों की तरह उनमें एक ही जगह स्थावर और जड़ की तरह बने रहने की स्थिति नहीं है, बल्कि एक-एक कण चेतन, प्रेममयी, और आनन्दमयी है। इसे ही चल-विचल कहा गया है। परमधाम में नकल न होने की बात का तात्पर्य यह है कि वहाँ पर कोई भी बनावटी वस्तु नहीं है।

घट बढ़ अर्स में है नहीं, मिटे न कबूं रोसन।

तिन सरूप को इन मुख, क्यों कर होए बरनन॥६॥

परमधाम में कोई भी वस्तु न तो घटती है और न बढ़ती है, न तो कभी नष्ट होती है और न कभी उत्पन्न होती है। ऐसे सच्चिदानन्दमय पदार्थों का इस मुख से कैसे वर्णन किया जा सकता है।

भावार्थ— इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "रोसन" शब्द का अर्थ प्रकाशित होने से है, जिसका तात्पर्य है— उत्पन्न होना (प्रकाश में आना)।

स्वप्न की बुद्धि, मन, शब्दों आदि के द्वारा परमधाम का यथार्थ वर्णन सम्भव नहीं है। इसी बात को दर्शाने के लिये इस चौपाई में "इन मुख" शब्द का प्रयोग हुआ है। यद्यपि महामति जी के धाम हृदय में जाग्रत बुद्धि तथा निज बुद्धि दोनों ही विराजमान हैं किन्तु प्रस्तुतीकरण तो

यहाँ के साधनों से ही हो रहा है, इसलिये यथार्थ वर्णन में असमर्थता दर्शायी गयी है।

एक पेहेर दूजा उतारना, तब तो घट बढ़ होए।

जब जैसा जित चित्त चाहे, तब तित तैसा बनत सोए॥७॥

परमधाम में कोई वस्त्र या आभूषण यदि पहना जाये और उतारा जाये, तब तो घटने-बढ़ने की बात हो सकती है। वहाँ तो दिल में जब भी जैसी इच्छा होती है, उसी पल वैसा ही श्रृंगार (पहले से ही) दिखायी देने लगता है।

अर्स अरवा चाहे दिल में, सो होए माहें पल एक।

जिन अंग जैसा वस्तर, होए खिन में कई अनेक॥८॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ अपने दिल में जो भी इच्छा

करती हैं, वह पल भर में ही पूर्ण हो जाती है। जिस अंग में जिस प्रकार के वस्त्र की इच्छा होती है, वह अति अल्प समय में पूर्ण हो जाती है। यहाँ तक कि एक पल में अनेक वस्त्र बदल जाते हैं।

भावार्थ- यथार्थ सत्य तो यह है कि परमधाम में इच्छा होते ही वस्त्र का श्रृंगार बदला हुआ दिखायी देता है। इच्छा होने के बाद वस्त्रों के बदलने में नाम मात्र का (१/१०००००० सेकेण्ड) भी समय नहीं लग सकता, क्योंकि परमधाम में वस्त्र और इच्छा करने वाली आत्माएँ भी एक ही स्वरूप हैं। एक पल में कई वस्त्र बदलने की बात तो मानवीय बुद्धि के द्वारा समझ में आ जाने के लिये कही गयी है।

सुन्दर सरूप सोभा लिए, सिनगार वस्तर भूखन।

रस रंग छबि सलूकी, चाहे रूह के अन्तस्करन॥९॥

श्यामा जी का स्वरूप अति सुन्दर शोभा लिये हुए है।
उनका श्रृंगार, वस्त्र-आभूषण, प्रेम (रस) एवं आनन्द से
भरपूर उनकी शोभा-सुन्दरता सखियों के दिल की
इच्छानुसार दिखायी देती है।

वस्तर भूखन अंग अर्स के, सो सबे हैं चेतन।

सब सुख देवें रूह को, तो क्यों न देवें नैन श्रवन॥१०॥

श्यामा जी के वस्त्र एवं आभूषण भी परमधाम के अंग हैं।
ये सभी चेतन स्वरूप हैं। जब ये मेरी आत्मा को हर
प्रकार का आनन्द देते हैं, तो श्यामा जी के नेत्र और
कान क्यों नहीं देंगे।

नया सिनगार साजत, तब तो नया पेहेन्या कह्या जात।

नया पुराना अर्स में नहीं, पर पोहोंचे न इतकी बात॥११॥

यदि श्रृंगार किसी नये रूप में शोभा देता है, तब तो नया पहनने की बात कही जा सकती है। परमधाम में तो नया या पुराना नाम की कोई बात ही नहीं है। इस संसार की कोई भी उपमा परमधाम के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकती।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब नया श्रृंगार होता ही नहीं है, तो एक पल में अनेक श्रृंगार बदल जाने की बात पहले क्यों कही गयी है?

इसका समाधान यह है कि परमधाम में सभी श्रृंगार दिल की इच्छानुसार स्वतः ही बदलते रहते हैं। उनमें पहले वाले को उतारकर किसी दूसरे को यदि पहना जाये, तब उस श्रृंगार को नया कहा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

जो सिफत बड़ी चित्त लीजिए, बड़ी अकल सो जान।

फना बका को क्या कहें, तार्थें पोहोंचत नहीं जुबान॥१२॥

श्यामा जी की जिस शोभा की इतनी महिमा है, उसे अपने हृदय में बसाने वाला बड़ी बुद्धि का स्वामी कहा जाता है। इस नश्वर संसार का शरीर अखण्ड परमधाम का वर्णन कैसे करे। यही कारण है कि यहाँ की जिह्वा से निकले हुए शब्द परमधाम तक नहीं पहुँच पा रहे हैं।

तो भी रूह मेरी ना रहे, हक बरनन किया चाहे।

हक इलम आया मुझ पे, सो या बिन रह्यो न जाए॥१३॥

तो भी मेरी आत्मा वर्णन किये बिना रह नहीं पा रही है। वह धाम धनी के युगल स्वरूप का वर्णन करना चाहती है। मेरे धाम हृदय में श्री राज जी का दिया हुआ निज बुद्धि का ज्ञान विराजमान है, इसलिये युगल स्वरूप की

शोभा-श्रृंगार का वर्णन किये बिना मुझसे नहीं रहा जाता।

ना तो बैठ झूठी जिमी में, ए बका बरनन क्यों होए।

इलम हुकम खैंचे रूह को, अकल जुबां कहे सोए॥१४॥

अन्यथा इस संसार में रहकर अखण्ड परमधाम का वर्णन कैसे हो सकता है। धाम धनी का हुकम और निज बुद्धि का ज्ञान मेरी आत्मा को वर्णन करने के लिये प्रेरित कर रहा है, जिससे मेरी बुद्धि और वाणी श्रृंगार का वर्णन कर रही है।

यासों रूह सुख पावत, अर्स रूहें पावें आराम।

कहूं सिखाई रूहअल्ला की, ले साहेदी अल्ला कलाम॥१५॥

इस प्रकार युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का वर्णन

करने पर ही मेरी आत्मा को सुख प्राप्त होता है। परमधाम की अन्य ब्रह्मसृष्टियाँ भी इस श्रृंगार को आत्मसात् करके आनन्द प्राप्त करेंगी। श्यामा जी मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर यह श्रृंगार-वर्णन स्वयं ही करवा रही हैं। मैं उन्हीं का कहा हुआ कथन कह रही हूँ। इस प्रकार के श्रृंगार के अवतरण के सम्बन्ध में तारतम वाणी में साक्षियाँ भी हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "अल्ला कलाम" का तात्पर्य कुरआन से कदापि नहीं है, बल्कि तारतम वाणी (तारतम ज्ञान) से है। कुरआन में श्यामा जी के श्रृंगार का कोई भी स्पष्ट वर्णन नहीं है, इसलिये उसकी साक्षी लेने का प्रश्न ही नहीं है।

धाम धनी ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (श्यामा जी) को तारतम ज्ञान दिया। उस ज्ञान के प्रकाश में श्री

इन्द्रावती जी की आत्मा ने हृद्भा में स्वयं को विरह की ज्वाला में झोंक दिया। परिणाम स्वरूप, युगल स्वरूप उनके धाम हृदय में विराजमान हुए और ब्रह्मवाणी का अवतरण शुरू हुआ। इसी क्रम में सागर ग्रन्थ की यह वाणी भी उतरी, जिसमें युगल स्वरूप की शोभा का वर्णन हुआ। इसे ही श्यामा जी का सिखापन कहा गया है।

हक इलम सिर लेय के, वरनन करूँ हक जात।

रूह मेरी सुख पावहीं, हिरदे बसो दिन रात॥१६॥

श्री राज जी के दिये हुए तारतम ज्ञान को शिरोधार्य कर मैं श्यामा जी की शोभा का वर्णन कर रही हूँ। हे श्यामा जी! आप मेरे धाम हृदय में दिन-रात निरन्तर ही वास कीजिए, ताकि मुझे आत्मिक आनन्द प्राप्त हो।

मोमिन दिल अर्स कहा, सो अर्स बसे जित हक।

निसबत मेहेर जोस हुकम, और इस्क इलम बेसक॥१७॥

ब्रह्मसृष्टियों का दिल (हृदय) ही परमधाम कहा जाता है, और परमधाम वह है जहाँ अक्षरातीत श्री राज जी का निवास होता है। जिनके धाम हृदय में श्री राज जी का वास होता है, वहाँ निस्बत के सभी सुख, मेहर, जोश, हुक्म, इश्क, और बेशक इल्म भी अवश्य होता है।

भावार्थ- इस चौपाई में निस्बत के सुख का भाव यह है उसे हमेशा यही अनुभव होता है कि धाम धनी पल-पल मेरे साथ हैं। वे मेरी प्राणनली से भी अधिक निकट हैं। उसके साथ धनी के जोश की लीला होती है। उसके दिल में वही इच्छा होती है जो श्री राज जी चाहते हैं और वह अवश्य पूर्ण होती है। उसका संकल्प कभी भी अधूरा नहीं जाता। इसे ही हुक्म कहते हैं।

बेशक इल्म (संशय रहित ज्ञान) का तात्पर्य श्रीमुखवाणी का मात्र पढ़ा हुआ ज्ञान नहीं है, बल्कि हकीकत और मारिफत के उस ज्ञान की प्राप्ति है, जो प्रायः पढ़ने-लिखने या सीखने-सिखाने से प्राप्त नहीं होता। इसे ही सागर २३/४३ में इस प्रकार कहा गया है—

महामत कहे ए मोमिनो, ए ऐसी कुंजी इलम।

ए मेहर देखो मेहबूब की, तुमको पढ़ाए आप खसम॥

ए बरकत हक अर्स में, तो दिल अर्स कह्या मोमिन।

तो बरनन होए अर्स का, जो यों दिल होए रोसन॥१८॥

यह सारी शोभा श्री राज जी के परमधाम में ही होती है। यही कारण है कि ब्रह्मसृष्टियों के दिल को धनी का अर्थ (परमधाम) कहते हैं। यदि इस प्रकार से किसी का दिल

परमधाम हो जाये, तभी उसके दिल से धनी की कृपा (मेहर) द्वारा परमधाम का वर्णन सम्भव है।

भावार्थ- इस चौपाई का यह स्पष्ट आशय है कि अपने धाम हृदय में अक्षरातीत के विराजमान हुए बिना मानवीय बुद्धि से परमधाम का वर्णन कदापि सम्भव नहीं है। जिसका हृदय धाम कहलाने की शोभा प्राप्त कर लेता है, उसमें धनी के आदेश व कृपा (हुक्म और मेहर) के साथ संशय रहित ज्ञान अवतरित हो जाता है।

बारीक बातें अर्स की, सो जानें अर्स के तन।

जीवत लेसी सो सुख, जिनका टूट्या अन्तस्करन॥१९॥

परमधाम की ये सूक्ष्म (रहस्यमयी) बातें हैं और इसे मात्र ब्रह्माँगनायें ही जानती हैं। इस संसार में शरीर रहते हुए इस सुख का रसास्वादन वही कर सकता है,

जिसका हृदय संसार से टूट चुका होता है।

भावार्थ- संसार की तृष्णाओं से रहित हो जाना ही संसार से दिल का टूटना है। ये तीन तृष्णायें इस प्रकार हैं-

१. लोकेषणा- संसार में प्रतिष्ठा की इच्छा।
२. वित्तेषणा- लौकिक सुख-सम्पत्ति की इच्छा।
३. दारेषणा- पारिवारिक सम्बन्धियों या शिष्यों की संख्या बढ़ाने का मोह।

इन तृष्णाओं को त्यागने पर ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार आदि से निवृत्त हुआ जा सकता है। इसके लिये युगल स्वरूप के ध्यान के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। जिस प्रकार कमरे में दीपक जलाते ही कक्ष का सारा अन्धकार क्षण भर में भाग जाता है, उसी प्रकार जो प्रेमपूर्वक अपने हृदय में अक्षरातीत के

युगल स्वरूप का ध्यान करता है उसके हृदय से तृष्णायें छूमन्तर (समाप्त) हो जाती हैं और मायावी विकार पास भी नहीं फटकते। एकमात्र ऐसे ही दिल को धनी का पूर्वोक्त सुख प्राप्त होता है।

छाती मेरी कोमल, और कोमल तुमारे चरन।

बासा करो तिन पर, तुमसों निसबत अर्स तन॥२०॥

हे मेरे धाम धनी! मेरी छाती (वक्षस्थल) कोमल है और आपके चरण कमल भी बहुत कोमल हैं। परमधाम के हमारे मूल तनों से आपका अखण्ड सम्बन्ध है, इसलिये अपने चरणों को मेरे वक्षस्थल पर विराजमान कर दीजिए।

भावार्थ— इस प्रकरण की चौपाई २०, २१, और २२ में तीन प्रकार की छाती का वर्णन है—

१- आत्मिक शरीर की छाती।

२- हृदय कमल रूपी छाती।

३- आत्मा रूपी छाती।

प्रेम जगत में बहुत ही प्रिय वस्तु को अपनी छाती से लगाने की परम्परा है। एक ब्रह्माँगना के लिये धनी के चरणों से अधिक प्रिय वस्तु और क्या हो सकती है। जीव के इस पञ्चभौतिक तन से परे आत्मा का जो भावमय शरीर है, उसकी छाती पर धनी के चरणों को रखने की बात अपने प्रेम की गुह्य अभिव्यक्ति है। यद्यपि इस अभिव्यक्ति को इस पञ्चभौतिक तन से पूर्णतया अलग नहीं किया जा सकता, किन्तु लक्ष्य आत्मिक शरीर के लिये ही होता है।

तारतम ज्ञान का प्रकाश पाकर जीव भी स्वयं को अक्षरातीत की अर्धांगिनी मानने लगता है और अपने

दिल में धनी की शोभा को बसाने का प्रयास करता है। इस प्रकार आत्मा का अखण्ड सम्बन्ध तो धनी से होता ही है, किन्तु जीव के दिल को भी अब अर्श कहलाने की शोभा प्राप्त होने लगती है, क्योंकि आत्मा जीव के ऊपर ही बैठकर खेल को देख रही होती है। परमधाम के मूल सम्बन्ध से आत्मा के धाम दिल में आनन्द की जो अनुभूति होती है, उसका कुछ अंश जीव भी प्राप्त कर लेता है। प्रेम के द्वारा वह इस स्तर पर भी पहुँच सकता है कि श्यामा जी तथा सखियों को छोड़कर सम्पूर्ण पच्चीस पक्ष तथा श्री राज जी का दीदार करने का सौभाग्य प्राप्त कर ले। "बदले आप देखावत, प्यारी निसबत रखे छिपाए" (सागर १४/२३) का कथन यही सिद्ध करता है।

इसी प्रकार प्रकरण ९ की चौपाई २० में धनी के चरणों को अपने वक्षस्थल पर रखने का भाव जीव और आत्मा दोनों के दिल के लिये सम्भव है। श्रृंगार २०/११०,१२० तथा २६/१२,१३ का कथन यही सिद्ध करता है—

ना तो हक आदमी के दिल को, अर्स कहे क्यों कर।
 पर ए आसिक मासूक की वाहेदत, बिना आसिक न कोई कादर॥
 तो पाया खिताब अरस का, ना तो दिल आदमी अर्स क्यों होए।
 ए हक हादी मोमिन बातून, और बूझे जो होवे कोए॥
 अर्स दिल मोमिन तो कह्या, जो हक सो रूह निसबत।
 ना तो अर्स दिल आदमी का, क्यों कहया जाए ख्वाब में इत॥
 रूह तन की असल अर्स में, अर्स ख्वाब नहीं तफावत।
 तो कह्या सेहेरग से नजीक, बीच हक अर्स दुनी बीच इत॥

मेरी छाती दिल की कोमल, तिन पर राखो नरम कदम।

इतहीं सेज बिछाए देऊं, जुदे करो जिन दम॥२१॥

मेरे प्राणेश्वर! मेरे दिल की छाती बहुत कोमल है। मैंने उसे सेज्या के रूप में आपके लिये प्रस्तुत किया है। मेरी एकमात्र यही चाहना है कि अपने अति कोमल चरणों को इस पर रख दीजिए और एक पल के लिये भी इससे अलग न कीजिए।

रूह छाती इनसे कोमल, तिनसे पाँउं कोमल।

इत सुख देऊँ मासूक को, सुख यों लेऊँ नेहेचल॥२२॥

इसके अतिरिक्त मेरी आत्मा की छाती दिल की छाती से भी अधिक कोमल है, किन्तु आपके चरण कमल तो आत्मा की छाती से भी अधिक कोमल हैं। अपने इन चरणों को मेरी आत्मा की छाती पर रख दीजिए, ताकि मैं

आपको सुख दे सकूँ और आपसे परमधाम का अखण्ड आनन्द ले सकूँ।

भावार्थ— आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है। उसी भाव को लेकर आत्मा की छाती का यहाँ वर्णन किया गया है। यद्यपि अक्षरातीत सर्वसुख के दाता हैं और पूर्ण सामर्थ्यवान हैं, फिर भी प्रेम लीला में सुख लेने-देने की बात वैसे ही कहनी पड़ती है जैसे किसी के निर्विकार मधुर आलिंगन में दोनों को ही सुख की अनुभूति होती है।

मेरी रूह नैन की पुतली, बीच राखूँ तिन तारन।

खिन एक न्यारी जिन करो, ए चरन बसैं निस दिन॥२३॥

हे धाम धनी! मेरी आत्मा तो परात्म रूपी नैन की पुतली है। उस पुतली के अन्दर स्थित तारा रूपी दिल में

मैं आपके चरणों को बसाकर रखना चाहती हूँ। मेरी एकमात्र यही चाहना है कि आपके चरण कमल दिन रात निरन्तर मेरे हृदय में वास करें और आप अपने चरणों को एक पल के लिये भी मेरे दिल से अलग न करें।

भावार्थ- जिस प्रकार परमधाम में परात्म (नैन) के दिल से प्रेम और आनन्द की लीला सम्पादित होती है, उसी प्रकार इस खेल में आत्मा (पुतली) के दिल से सारी लीला जुड़ी हुई है, जिसे "तारन" (तारा) कहा गया है। इसी आत्मा के धाम हृदय में धनी के स्वरूप को बसाने की बात सर्वत्र कही गयी है।

चरन तली अति कोमल, मेरी रूह के नैन कोमल।

निस दिन राखों इन पर, जिन आवने देऊं बीच पल॥२४॥

आपके चरणों की तली बहुत ही कोमल है। इसी प्रकार

मेरी आत्मा के नेत्र (दिल) भी बहुत कोमल हैं। मैं इन नैनों (दिल) में आपके चरणों को दिन –रात बसाकर रखूँगी और कभी भी पलकों को झपकने नहीं दूँगी।

भावार्थ— पलकों के बन्द होते ही जिस प्रकार दीदार की प्रक्रिया बन्द हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा के धाम हृदय रूपी सिंहासन पर जब युगल स्वरूप विराजमान हों और आत्मिक-दृष्टि से दीदार हो रहा हो, तो उसमें बाधा न पड़ने (पलकों के न झपकने) की बात यहाँ की गयी है। आत्मा का दिल ही किस प्रकार नेत्र या तारा है, यह आगे की चौपाई से स्पष्ट हो जायेगा।

या रूह नैन की पुतली, तिन नैनों बीच तारन।

इत रहे सेज्या निस दिन, धरो उज्जल दोऊ चरन॥२५॥

हे प्राणवल्लभ! मेरी यह आत्मा परात्म रूपी नैन की

पुतली है। उस आत्मा रूपी पुतली के तारों (दिल) में आपके लिये दिन-रात (निरन्तर) सेज्या बिछी हुई है। हे धाम धनी! अपने इन दोनों उज्ज्वल चरणों को इस सेज्या पर रख दीजिए।

भावार्थ- जिस प्रकार नेत्र से देखने की प्रक्रिया होती है, उसी प्रकार दिल से प्रेम की लीला सम्पादित होती है। यही कारण है कि दिल को नेत्र की संज्ञा भी प्राप्त होती है। चौपाई २४ में यही बात दर्शायी गयी है। उसे ही चौपाई २५ में परात्म रूपी नैन का तारा कहा गया है। इस प्रकार संक्षेप में नैन (परात्म) पुतली (आत्मा) और तारा (दिल) है।

मेरा दिल तुमारा अर्स है, माहें बहुबिध की मोहोलात।
कई सेज हिंडोले तखत, रूह नए नए रंगों बिछात॥२६॥

मेरा दिल ही तो आपका वह परमधाम है, जिसमें अनेक प्रकार के महलों की शोभा है। इन महलों में अनेक (अनन्त) सेज्याएँ बिछी हुई हैं, हिण्डोले लटक रहे हैं, तथा सिंहासन भी रखे हुए हैं। यह सम्पूर्ण सामग्री मेरी आत्मा ने आपको रिझाने के लिये ही अलग-अलग नये-नये रंगों में सजा रखी है।

आसा पूरो सुख देओ, नए नए कराऊं सिनगार।

दयो पूरी मस्ती ना बेहोसी, सुख लेऊं सब अंग समार॥२७॥

मेरे प्राण प्रियतम! आप मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर मेरी इस इच्छा को पूर्ण कीजिए और प्रेम का आनन्द दीजिए। मैं आपको नये-नये श्रृंगारों से सजाना चाहती हूँ। आप मुझे प्रेम की पूरी मस्ती (आनन्द) में डुबो दीजिए, किन्तु उसमें मुझे बेसुध (बेहोश) मत

कीजिए, क्योंकि मैं अपने सभी अंगों से अच्छी प्रकार सुख लेना चाहती हूँ।

भावार्थ- आठों सागर अक्षरातीत के दिल से प्रकट हुए हैं। परात्म अक्षरातीत का तन है। उसे धनी के दिल का अंग भी कहा जाता है। अतः आठों सागरों के रस का प्रवाह परात्म के दिल में होना स्वाभाविक है। इस प्रकार इस संसार में आत्मा के धाम हृदय में अक्षरातीत के युगल स्वरूप के विराजमान हो जाने पर, उन्हीं सागरों के भावों में भावित होकर रिझाना ही नये-नये भावों से धनी का श्रृंगार कराना है।

जब आत्मा नूर सागर के भावों में भावित होती है, तो वह देखती है कि किस प्रकार युगल स्वरूप के नख से शिखर तक एक-एक रोम में करोड़ों सूर्यों का अलौकिक तेज समाया हुआ है, जिसकी दिव्य छटा चारों ओर फैल

रही है।

नूरी सौन्दर्य की इस अनन्त राशि को देखकर वह स्वयं को भी इसी श्रृंगार में पाती है। वह कभी स्वयं को देखती है, तो कभी श्यामा जी को देखती है। उसे लगता है कि उसके और श्यामा जी के श्रृंगार में रञ्जमात्र भी अन्तर नहीं है। उसके श्रृंगार में भी नख से शिख तक करोड़ों सूर्यों की आभा समायी हुई है। नीर सागर (रूहों की शोभा) और क्षीर सागर (वहदत) के भावों में इस प्रकार धनी का श्रृंगार कराया जाता है।

दधि सागर के भावों में डूबकर वह युगल स्वरूप के नख से शिख तक के एक-एक अंग में डूब जाती है। वह प्रत्येक अंग की शोभा में जैसा-जैसा भाव लेती है, वैसा-वैसा ही श्रृंगार दिखने लगता है।

इन्हीं भावों में डूबी हुई वह मधु सागर में गोता लगाने

लगती है। उसे अनुभव होता है कि यही तो मेरा प्राणवल्लभ है, जो मुझे अपने इश्क से सींचा करता है। यह मुझसे एक पल भी अलग न था और न कभी होगा। यह तो यहाँ भी है और वहाँ भी है।

अब वह रस सागर के भावों में भावित होकर स्वयं को उनका ही स्वरूप मानने लगती है। उसे यह लगता है जैसे प्रेम और आनन्द के सागर स्वरूप अपने प्राण प्रियतम से वह लहरों की भांति क्रीड़ा कर रही है। सागर में असंख्य लहरें उठती हैं और उसी में समा जाती हैं। दोनों एक ही स्वरूप हैं, अंग-अंगी हैं। वह उनके दिल का ही साक्षात् स्वरूप है।

धनी की शोभा को निरखते-निरखते वह उनके दिल में डूब जाती है, जहाँ उसे अनन्त इश्क, निस्बत, वहदत, सौन्दर्य, इल्म आदि का रस मिलने लगता है। पुनः उसे

आभास मिलने लगता है कि अरे! वह तो कभी धाम धनी से अलग थी ही नहीं। मैं तो वह ही हूँ। वह मैं है। वह मुझमें है, मैं उसमें हूँ। इसके पश्चात् केवल रह जाता है—
तू.....तू.....तू।

यही है नये-नये श्रृंगारों से सजाना।

आत्मा अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप की शोभा को जितना आत्मसात् करेगी, जीव का दिल भी उतना आनन्दित होगा। उसके मन, चित्त आदि में ब्रह्मानन्द की अलौकिक शान्ति छायी रहेगी। उसकी वाणी, इन्द्रियों, तथा मुखमण्डल पर एक अलौकिक तेज छाया रहेगा। इसे ही सभी अंगों से धनी का सुख लेना कहा गया है।

अर्स तुमारा मुझ दिल, माहें अर्स की सब बिसात।

खाना पीना सुख सिनगार, माहें सब न्यामत हक जात॥२८॥

मेरा दिल ही तो आपका वह परमधाम है, जिसमें निजधाम की लीला रूपी सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है। परमधाम में श्री राजश्यामा जी और सखियों के बीच होने वाली प्रेम लीला तथा श्रृंगार का जो सुख है, वह सारी आध्यात्मिक सम्पदा (नेमत) प्रतिबिम्बित रूप से मेरे अर्श दिल में भी अवश्य है।

भावार्थ- खाने-पीने का भाव भोजन के अन्तर्गत ही आता है। परमधाम के सभी पक्ष तथा अष्ट प्रहर की सारी लीला परात्म के दिल में निहित है। परात्म का प्रतिबिम्ब ही आत्मा है। अतः स्वाभाविक है कि आत्मा के जाग्रत होने पर परात्म के दिल की सारी स्थिति आत्मा के दिल में भी हो जायेगी। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है। सागर ११/४४ का यह कथन भी इसी बात की पुष्टि करता है-

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाय।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछू अन्तराए॥

सब गुझ तुमारे दिल का, जिन मेरा दिल किया रोसन।

जेता मता बीच अर्स के, सब आया दिल मोमिन॥२९॥

मेरे धाम हृदय में आपके विराजमान हो जाने से आपके दिल की सारी गुह्य (मारिफत, परमसत्य) बातें भी मुझे मालूम हो गयीं, जिससे मेरा दिल अब उस अनमोल ज्ञान से प्रकाशित हो गया है। इस प्रकार मेरे तन से ब्रह्मवाणी का अवतरण होने से परमधाम का वह सम्पूर्ण ज्ञान ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में भी आ गया है।

तो कह्या अर्स दिल मोमिन, हक बैठें उठें खेलाए।

सुख बका हक अर्स रूहें, सिफत क्यों कहे दिल जुबांए॥३०॥

ब्रह्मसृष्टियों के धाम हृदय में अक्षरातीत विराजमान होकर उठते-बैठते हैं और प्रेममयी क्रीड़ा करते हैं। परमधाम की इन ब्रह्मसृष्टियों के जिस दिल में अक्षरातीत के अखण्ड सुखों का इस संसार में ही अनुभव होता है, उसकी महिमा का वर्णन इस जिह्वा से कैसे हो सकता है।

भावार्थ- इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "बैठें उठें खेलाए" का मूल भाव प्रेम की उस आनन्दमयी लीला के प्रतिबिम्बित होने से है, जो धाम धनी परमधाम में किया करते हैं। यहाँ उठने-बैठने की लौकिक क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं है।

पर दिल के जो अंग हैं, धनी अर्स तुमारा सोए।

तुमें देखें कहे बातें सुने, लेवे तुमारी बानी की खुसबोए॥३१॥

हे धाम धनी! आपके दिल के जो अंग हैं, उनका दिल

ही आपका अर्श है अर्थात् उनमें आपका निवास है। वे ही आपका दीदार करते हैं, अपनी प्रेम भरी बातें कहते हैं, और आपकी सुनते हैं। आपकी वाणी का अमृत रस (सुगन्धि) भी वे ही लेते हैं।

भावार्थ— श्यामा जी, सखियाँ, महालक्ष्मी, तथा आठों सागर सभी राज जी के दिल के अंग हैं। इनके ही धाम हृदय में श्री राज जी विराजमान होकर लीला करते हैं।

"सो सुरत धनी को ले आवेस, नंद घर कियो प्रवेस।" प्रगट वाणी ३७/२९ का यह कथन यही सिद्ध करता है कि अक्षर ब्रह्म की आत्मा के अन्दर अक्षरातीत के उसी आवेश ने लीला की है, जिसने इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्यामा जी एवं इन्द्रावती जी की आत्मा में लीला की है। इस प्रकार अक्षर ब्रह्म भी श्री राज जी के अंग माने जायेंगे, यहाँ तक कि परमधाम का एक-एक कण श्री

राज जी के दिल का अंग है। इस सम्बन्ध में सागर
१/४३ का यह कथन देखने योग्य है—

जो कछुए चीज अर्स में, सो सब वाहेदत मांहें।

जरा एक बिना वाहेदत, सो तो कछुए नाहें॥

पिए तुमारी सुराही का, कई स्वाद फूल सराब।

ऐसी लेऊं मस्ती मेहेबूब की, ज्यों उड़ जावे ख्वाब॥३२॥

आपका दिल प्रेम (इश्क) की सुराही है। मेरी एकमात्र
यही इच्छा है कि मैं अपने दिल में आपके प्रेम का
रसपान करूँ, जिससे मुझे इल्म, निस्बत, वहदत, और
आपकी शोभा-श्रृंगार आदि अनेक प्रकार के आनन्द
मिलें। मैं आपके ऐसे अलौकिक आनन्द में डूब जाऊँ कि
यह सारा ब्रह्माण्ड ही मुझे झूठा लगने लगे।

एक स्वाद दिल देखे तुमको, सुने तुमारी बानी की मिठास।
 लेऊं खुसबोए बोलूँ तुमसों, और क्यों कहूँ दुलहा विलास॥३३॥
 मेरे प्राणवल्लभ! मैं तो केवल इतना ही चाहती हूँ कि एक
 बार आपको अपने धाम दिल में बिठाकर जी भरकर
 दीदार कर लूँ तथा अमृत से भी अनन्त गुना मीठी
 आपकी वाणी को सुनूँ और मैं भी अपने दिल की कुछ
 कह लूँ। यदि मुझे इस प्रकार के आनन्द का रसपान
 करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, तो उसका वर्णन
 करने के लिये मेरे पास कोई शब्द नहीं है।

जेता सुख तुमारे अर्स में, सो सब हमारे दिल।
 ए सुख रूह मेरी लेवहीं, जो दिए इन अर्स में मिल॥३४॥
 जितना सुख आपके परमधाम में है, उतना सुख हमारे
 दिल में भी है। आप मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर

परमधाम के अनन्त सुखों को दे रहे हैं और मेरी आत्मा उसका रसपान कर रही है।

भावार्थ- परमधाम में एकदिली (वहदत) होने के कारण परात्म के दिल को वहाँ के सभी सुख प्राप्त हैं। इस प्रकार उसके प्रतिबिम्ब स्वरूप आत्मा के दिल में उन सभी सुखों का रसास्वादन होना स्वभाविक है, किन्तु उसके लिये आत्म-जाग्रति अनिवार्य है। इसके बिना यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सकता।

रूह बरनन करे क्या होए, जोलों स्वाद न ले निसबत।

इस्क इलम जोस हुकम, ए सब मेहेरें पाइए न्यामत॥३५॥

जब तक आत्मा अपने मूल सम्बन्ध के इस लक्ष्य को प्राप्त न कर ले, तब तक इन बातों को कहने से क्या लाभ है, कुछ भी नहीं। धनी का प्रेम (इश्क), ज्ञान

(इल्म), जोश, और आदेश (हुक्म) आदि आध्यात्मिक सम्पदायें (नेमतें) मात्र धनी की मेहर (कृपा) से ही प्राप्त होती हैं।

भावार्थ- प्रियतम का दीदार और उनसे वार्ता आदि का सुख लेना ही मूल सम्बन्ध (निस्बत) का स्वाद लेना है।

दिल के अंगों बिना हक के, इत स्वाद लीजे क्यों कर।

देखे सुने बोले बिना, तो क्या अर्स नाम धरया धनी बिगर॥३६॥

इश्क, इल्म, जोश, हुक्म आदि धाम धनी के दिल के अंग हैं। इनके बिना इस संसार में निस्बत का स्वाद नहीं लिया जा सकता, अर्थात् इनके बिना अपने प्रियतम का दीदार एवं मधुर वार्तालाप असम्भव है। यदि अपने दिल में धनी को बसाया (बिठाया) नहीं, उनका दीदार नहीं किया, उनकी मधुर बातें सुनी नहीं, तथा उनसे स्वयं

बातें नहीं की, तो इस दिल को अर्श कहलाने का क्या अधिकार है, कुछ भी नहीं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि मात्र सुन्दरसाथ के समूह में सम्मिलित हो जाने से अपने दिल को परमधाम कहने का अधिकार नहीं मिल जाता। इसके लिये अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप को अनिवार्य रूप से बिठाना होगा। इसके बिना आत्म-जाग्रति की बातें करना मात्र दिवास्वप्न या हवाई महल के समान है।

"हक इलम जित पोहोंच्या, तित अर्स हुआ दिल हक" के आधार पर केवल बौद्धिक ज्ञान से अपनी आत्म-जाग्रति की पूर्णता मानना उचित नहीं, वस्तुतः यह अधूरी जागनी है। अगली चौपाई भी इसी बात को दर्शा रही है।

जो मासूक सेज न आइया, देख्या सुन्या न कही बात।

सुख अंग न लियो इन सेज को, ताए निरफल गई जो रात॥३७॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में जिसने भी अपने अर्श दिल की सेज्या पर अपने धाम धनी को विराजमान कर उनका दीदार नहीं किया, उनकी प्रेम भरी बातें सुनी नहीं, अपने विरह-प्रेम की बातें कही नहीं, और किसी भी प्रकार से दिल में बसाने का सुख नहीं लिया, उसका इस खेल में आना ही व्यर्थ है, ऐसा मानना चाहिए।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "रात" का तात्पर्य खेल के तीसरे हिस्से (लैल-तुल-कद्र के तीसरे तकरार) जागनी ब्रह्माण्ड से है। माया में ब्रह्मसृष्टियों के आने को रात्रि की संज्ञा दी गयी है। इस चौपाई में बहुत जोर देकर यह बात दर्शायी गयी है कि सुन्दरसाथ का सर्वोपरि लक्ष्य है- युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में

विराजमान करना। जो इस तरफ अपने कदम नहीं बढ़ाते, निःसन्देह वे संसार के सबसे भाग्यहीन व्यक्ति हैं।

अर्स तुमारा मुझ दिल, माहें अर्स की सब बिसात।

सब न्यामतें इनमें, अर्स बका हक जात॥३८॥

मेरे प्राण प्रियतम! मेरा हृदय ही तो आपका वह परमधाम है, जिसमें वहाँ की लीला रूपी सारी सामग्री विराजमान है। इसमें आप युगल स्वरूप सहित सभी अँगनायें, एवं इश्क, वहदत, निस्बत आदि के सुख सहित सभी नेमतें (आध्यात्मिक सम्पदायें) भी विद्यमान हैं।

पेहेले बरनन करुं सिर राखड़ी, पीछे बरनन करुं सब अंग।

अखंड सिनगार अर्स को, मेरी रूह हमेसा संग॥३९॥

सबसे पहले मैं श्यामा जी के सिर पर विराजमान राखड़ी का वर्णन करती हूँ, उसके पश्चात् मैं वस्त्र – आभूषणों सहित उनके एक-एक अंग की शोभा का वर्णन करूँगी। उनका यह अखण्ड श्रृंगार उस दिव्य परमधाम का है, जिसकी शोभा में मेरी आत्मा हमेशा डूबी रहती है।

॥ मंगला चरण सम्पूर्ण ॥

अब यह मंगलाचरण सम्पूर्ण हुआ।

सिर पर बनी जो राखड़ी, कहूँ किन बिध सोभा ए।

आसमान जिमी के बीच में, एकै जोत खड़ी ले॥४०॥

श्यामा जी के सिर पर जो राखड़ी आयी है, उसकी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। उसकी नूरी ज्योति इतनी अधिक है कि धरती और आकाश में सर्वत्र ज्योति ही

ज्योति दिखायी दे रही है।

गिरदवाए मानिक बने, बीच हीरे की जोत।

किनार ऊपर जो नीलवी, हुई जिमी अंबर उद्योत॥४१॥

राखड़ी के चारों ओर माणिक के नग जड़े हुए हैं। बीच में हीरे की ज्योति जगमगा रही है। राखड़ी की किनार पर नीलम के नग हैं। इस प्रकार धरती से लेकर आकाश तक सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दृष्टिगोचर हो रहा है।

सेंथे भी सिर कांगरी, और सिर कांगरी पांन।

इन सिर सोभा क्यों कहूं, अलेखे अमान॥४२॥

माँग के सिरे पर काँगरी बनी है, जिसकी शोभा पान के पत्ते के आकार में आयी है। श्यामा जी के सिर की इस अलौकिक शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। इसे न तो व्यक्त

किया जा सकता है और न इसकी कोई उपमा दी जा सकती है।

माहें हारें खजूरे बूटियां, बीच फूल करत हैं जोत।

जुदे जुदे रंगों जवेर, ठौर ठौर रोसनी होत॥४३॥

माँग के सिरे पर बनी इस काँगरी में खजूर के पत्तों की तरह लहरीदार आकृति में बने कढ़ाव तथा बूटियों की हारें (पँक्तियां) आयी हैं। बीच-बीच में फूलों की ज्योति जगमगा रही है। इसमें अलग-अलग रंगों के जवाहरातों के नग भी जड़े हुए हैं, जिनसे जगह-जगह प्रकाश होता है।

भावार्थ- खजूर के पत्तों की तरह की लहरीदार आकृति वाले कढ़ाव को खजूरिया कहते हैं। फूलों की छोटी आकृति वाले कढ़ाव को बूटी कहते हैं।

लाल सेंथे जोत जवेर की, दोए पटली समारी सिर।

बनी नंगन की कांगरी, बल बल जाऊं फेर फेर॥४४॥

माँग में जवाहरातों की लाल ज्योति जगमगा रही है। सिर पर दो पटलियों की शोभा आयी है। इनमें नगों की काँगरी बनी है, जिसकी सुन्दरता पर मैं बारम्बार बलिहारी जाती हूँ।

भावार्थ— जवाहरातों की लाल ज्योति ही सिन्दूर की तरह दिखती है। केशों को बाँधने की पट्टी को पटली कहते हैं। ये पटलियाँ भी जवाहरातों की हैं।

निलवट पर सर मोतिन की, ऊपर नीलवी बीच मानिक।

दोऊ तरफों तीनों सरें, तीनों बराबर माफक॥४५॥

माथे पर मोतियों की लरियाँ (लड़ियाँ) आयी हैं। इन लड़ियों के ऊपरी भाग में नीलम तथा बीच में माणिक के

नगों की शोभा है। माँग के दोनों तरफ जो तीन-तीन लड़ियाँ आयी हैं, इन सबकी शोभा बराबर है।

इन तीनों पर कांगरी, बनी सेंथे बराबर।

पांन कटाव सेंथे पर, ए जुगत कहूं क्यों कर॥४६॥

इन तीनों लड़ियों के ऊपर काँगरी बनी हुई है, जो माँग के साथ शोभा देती है। माँग के ऊपर पीछे की ओर पान के पत्ते जैसी बनावट है। इस अलौकिक शोभा का वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ, कदापि नहीं।

मानिक मोती नीलवी, हेम हीरा पुखराज।

इन मुख सोभा क्यों कहूं, सिर खूबी रही बिराज॥४७॥

श्यामा जी के सिर पर आयी हुई राखड़ी में माणिक, मोती, नीलम, स्वर्ण, हीरा, और पुखराज जड़े हुए हैं।

इस प्रकार उनके सिर की जो अलौकिक शोभा हो रही है, इस मुख से उसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- सोना धातु है और माणिक, मोती आदि जवाहरात हैं। इस संसार में प्रायः धातुओं में जवाहरातों को जोड़ा जाता है, किन्तु परमधाम में ऐसा मानना आवश्यक नहीं है, क्योंकि वहाँ की प्रत्येक वस्तु में ब्राह्मी चेतनता दृष्टिगोचर होती है।

बीच फूल कटाव कई, राखड़ी के गिरदवाए।

ए जुगत बनी मूल लग, गुंथी नंग मोती बेनी बनाए॥४८॥

राखड़ी के चारों ओर कई प्रकार के फूलों की आकृति आयी है। इस प्रकार की बनावट राखड़ी के पिछले भाग तक है। इसके आगे चोटी की शोभा है, जो मोतियों के नगों से गुंथी हुई है।

तीन नंग रंग गोफने, तिन एक एक में तीन रंग।

हीरा मानिक नीलवी, सोभित कंचन संग॥४९॥

चोटी के गोफने (तीनों) में तीन प्रकार के रंगों के नग जड़े हुए हैं। उनमें प्रत्येक नग के तीन-तीन रंग हैं। गोफने में सोने के अन्दर हीरा, माणिक, तथा नीलम के जड़े हुए नग सुशोभित हो रहे हैं।

तीनों गोफने घूँघरी, बेनी गूँथी नई जुगत।

बल बल जाऊं देख देख के, रूह होए नहीं तृपित॥५०॥

चोटी के तीनों गोफनों में घुंघरियां जड़ी हुई हैं (लटक रही हैं)। चोटी एक नई ही शोभा में गूँथी हुई है, जिसे देख-देखकर मैं बलिहारी होती हूँ, फिर भी मेरी आत्मा तृप्त नहीं हो पा रही है।

भावार्थ- प्रेम लीला में बार-बार देखने की इच्छा होती

है, क्योंकि आशिक (प्रेमी) के लिये माशूक (प्रेमास्पद) का दीदार ही जीवन होता है। वह एक पल के लिए भी इसे छोड़ना नहीं चाहता। यही कारण है कि वह बारम्बार दीदार करने के लिये विवश हो जाता है। इसी भाव को इस चौपाई में "अतृप्त" कहा गया है। यद्यपि ब्रह्मानन्द में "अतृप्ति" की कल्पना भी नहीं होती, क्योंकि अनन्त प्रेम और अनन्त शान्ति तो मात्र उसी में है। लौकिक वासनाओं में ही अतृप्ति होती है, ब्रह्मानन्द में नहीं, किन्तु उस शब्दातीत प्रेम की लीला को व्यक्त करने में ऐसे शब्द का प्रयोग करना पड़ा है।

चारों बंध बेंनी तले, नीले पीले सोभित।

सोभे नरम बंध चोलीय के, खूबी साड़ी तले देखत॥५१॥

चोली (ब्लाउज) के चारों बन्ध (तनी) पीठ पर बँधे हैं

और इनका रंग नीला-पीला है। ये सभी बन्ध चोटी के नीचे ही सुशोभित हो रहे हैं। चोली के ये बन्ध बहुत ही कोमल हैं और इनकी सुन्दरता साड़ी के नीचे से दिखायी देती है।

बेनी सोभित गौर पीठ पर, चोली और बंध चोली के।

सब देत देखाई साड़ी मिने, सब सोभा लेत सनंध ए॥५२॥

श्यामा जी की गोरे रंग की पीठ बहुत ही सुन्दर है, जिसके ऊपर चोटी, चोली, तथा उसकी तनियों (बन्धों) की शोभा आयी है। इन सब की शोभा कुछ इस प्रकार की है कि यह सभी साड़ी के अन्दर से दिखायी देते हैं अर्थात् साड़ी इनके ऊपर आयी है।

लाल साड़ी कई नकस, माहें अनेक रंग के नंग।

मिहीं नकस न होवे गिनती, करें जवेर माहें जंग॥५३॥

साड़ी का रंग लाल है, जिसमें अनेक प्रकार के बेल-बूटों के चित्र आये हैं। इन चित्रों में अनेक रंगों के नग जड़े हुए हैं। यह नक्शकारी (बेल-बूटेदार चित्रांकन) इतनी बारीक है कि इसमें जड़े हुए नगों की गिनती ही नहीं की जा सकती। इसके नगों से निकलने वाली ज्योतियाँ आपस में टकराकर युद्ध करती हुई प्रतीत होती हैं।

भावार्थ- सोने-चाँदी आदि धातुओं के तारों में जवाहरातों के नगों को जोड़कर जो बेल-बूटेदार चित्र बनाये जाते हैं, उन्हें नक्शकारी कहते हैं।

सिर पर साड़ी सोभित, नीली पीली सेत किनार।

तिन पर सोहे कांगरी, करें पांच नंग झलकार॥५४॥

सिर के ऊपर लाल साड़ी शोभायमान है, जिसकी किनार नीले, पीले, तथा श्वेत रंग की है। इस किनार में काँगरी की बनावट है, जिसमें जड़े हुए पाँच प्रकार के नग आपस में झलकार कर रहे हैं।

साड़ी कोर किनार पर, नंग काँगरी सोभित।

फूल बेल कई खजूरे, कई छेड़ों मिने झलकत॥५५॥

साड़ी के (दोनों) पल्लों की किनार पर नगों से जड़ी हुई काँगरी सुशोभित है। इसके अन्दर बने हुए बहुत से फूलों, लताओं, तथा खजूर के पत्तों की तरह के लहरीदार बेल-बूटे झलकार कर रहे हैं।

कई छापे बूटी नकस, नंग साड़ी बीच अपार।

कई नंग रंग झलके बीच में, सोभा न आवे माहें सुमार॥५६॥

साड़ी में अनेक प्रकार के छापेदार चित्र, गोलाकार फूल (बूटियाँ), तथा बेल-बूटे आये हैं। नगों की संख्या तो अपार है। इस साड़ी के मध्य में अनेक प्रकार के नग इस प्रकार झलकते हैं कि उनकी शोभा को किसी भी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

**मुख उज्जल गौर लालक लिए, छबि जाए न कही जुबां।
देख देख सुख पावत, रूह हिरदे के माहें॥५७॥**

श्यामा जी का मुखारविन्द गहरी लालिमा लिए हुए अति उज्ज्वल गौर वर्ण का है। उनके मुखारविन्द की इस अलौकिक शोभा का वर्णन यहाँ की जिह्वा से होना सम्भव नहीं है। इसे बारम्बार देखकर मेरी आत्मा अपने हृदय में अनन्त आनन्द का अनुभव कर रही है।

मुख चौक नेत्र नासिका, ए छबि अंग अर्स के।

असलें सिफत न पोहोंचहीं, बुध माफक कही ए॥५८॥

श्यामा जी के दोनों गालों सहित मुखारविन्द, नेत्रों, और नासिका की शोभा परमधाम के नूरी अंगों की है, इसलिये इनकी वास्तविक शोभा का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं हैं। यह वर्णन तो मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार किया है।

भावार्थ- मुख के चारों ओर गालों सहित सम्पूर्ण शोभा को मुख का चौक कहते हैं। यद्यपि महामति जी के धाम हृदय में स्वयं धनी ही इस शोभा का वर्णन कर रहे हैं, किन्तु जिह्वा से प्रस्तुतीकरण यहाँ की बुद्धि से हो रहा है। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

मुखारबिन्द स्यामाजीय को, रूह देख देख सुख पाए।

निलवट सोहे चांदलो, रूह बलिहारी ताए॥५९॥

श्यामा जी के मुखारबिन्द को देख-देखकर मेरी आत्मा बहुत अधिक आनन्दित हो रही है। उनके माथे पर बेंदा सुशोभित हो रहा है, जिस पर मेरी आत्मा बलिहारी (न्योछावर) होती है।

रंग नीले जोत पाच में, रूह इतथें क्यों निकसाए।

जो जोत देखूं मानिक, तो वाही में डूब जाए॥६०॥

इस बेंदे में जड़े हुए पाच के नंग की नीली ज्योति को जब मैं देखती हूँ, तो देखती ही रह जाती हूँ। उस शोभा के सागर से निकल नहीं पाती। इसी प्रकार जब मैं माणिक के नग की ज्योति को देखती हूँ, तो उसके सौन्दर्य-सागर में डूब जाती हूँ।

करे आकास मोती उज्जल, जोत लटके लेवे तरंग।

आसिक रूह क्यों निकसे, क्योंए न छूटे लग्यो दिल रंग॥६१॥

बेंदे में जड़े हुए मोती के नग से श्वेत ज्योति निकल रही है, जिसकी तरंगों से सम्पूर्ण आकाश ही श्वेत रंग का दिखायी दे रहा है। धनी के प्रेम में खोयी रहने वाली ब्रह्माँगना भला इस सौन्दर्य-सागर से कैसे अलग हो सकती है। इस दर्शन से उसके दिल में जो आनन्द पैदा हो रहा है, उसे वह कभी भी नहीं छोड़ सकती।

श्रवनों सोहे पानड़ी, मानिक के रंग सोए।

और रंग माहें नीलवी, जोत करत रंग दोए॥६२॥

दोनों कानों में पान के पत्ते जैसी आकृति वाली पानड़ी लटक रही है। इनमें माणिक और नीलम के नग जड़े हुए हैं, जिनसे लाल और नीले रंग की ज्योति निकल रही है।

भावार्थ- कानों में पहने जाने वाले आभूषण को "पानड़ी" कहा गया है। इसकी आकृति पान के पत्ते जैसी होती है, इसलिये इसे यह नाम दिया गया है। इससे सम्पूर्ण कान ढँका रहता है।

मोती पांने पुखराज, लरें लटकत इन।

तरंग उठत आकास में, किरना करत रोसन॥६३॥

पानड़ी में मोती, पन्ना, और पुखराज की लड़ियाँ लटक रही हैं। इनसे निकलने वाली किरणें चारों तरफ अपना प्रकाश फैला रही हैं, जिनकी तरंगें आकाश में उठ रही हैं।

मुरली सोभित मुख नासिका, लटके मोती नंग लाल।

निरख देखूं माहें नीलवी, तो तबहीं बदले हाल॥६४॥

श्यामा जी की नासिका में बेसर सुशोभित हो रहा है, जिसके लटकते हुए मोती तथा माणिक के नग मुख के ऊपर आए हुए हैं। जब मैं बेसर में जड़े हुए नीलम के नग को देखती हूँ तो उसी क्षण हमारी रहनी बदल जाती है, अर्थात् धनी से एकाकार स्थिति बन जाती है और माया से सम्बन्ध पूर्णतया टूट जाता है।

न्यारी गति नैनन की, अति अनियारे लोचन।

उज्जल माहें लालक लिए, अतंत तेज तारन॥६५॥

श्यामा जी के प्रेम भरे दोनों नेत्रों की स्थिति ही कुछ अलग है। दोनों नेत्र बहुत ही नुकीले हैं। उनके अन्दर सफेदी मिश्रित लालिमा छायी हुई है तथा दोनों तारों में अनन्त नूरी तेज समाया हुआ है।

भावार्थ— नुकीले (बाँके) नेत्र सुन्दरता के प्रतिमान

(मूर्तिमान) स्वरूप हैं। सफेदी मिश्रित लालिमा प्रेम को दर्शाती है, तो तारों में दृष्टिगोचर होने वाला नूर परमधाम की तेजस्विता, अखण्डता, और स्वरूप को दर्शाता है। इस प्रकार उनके नेत्रों से सौन्दर्य, प्रेम, और नूर का प्रकटीकरण होता है।

भौं भृकुटी अति सोभित, रंग स्याम अंग गौर।

केहेनी जुबां न आवत, कछू अर्स रूहें जानें जहूर॥६६॥

काली-काली भौंहें तथा उनके बीच में गौर वर्ण की भृकुटी बहुत ही सुन्दर लग रही है। इनके सौन्दर्य का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता। मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ ही इनके सौन्दर्य की कुछ विशेषताओं को जानती हैं।

सोभा लेत हैं टेढ़ाई, नैना रंग रस भरे।

ए सोई रूहें जानहीं, जाकी छाती छेद परे॥६७॥

श्यामा जी के नेत्रों का तिरछा होना अति सुन्दर लग रहा है। उनके नेत्रों से सदा प्रेम और आनन्द छलकता रहता है। इस रहस्य को केवल वे ब्रह्मसृष्टियाँ जानती हैं, जिनकी छाती में प्रेम के बाण चुभ गये हैं।

भावार्थ— सुन्दरसाथ कहलाने वालों की संख्या तो लाखों में है, किन्तु परमधाम के प्रेम की राह पर चलकर श्यामा जी के मुखारविन्द को निहारने वाले विरले हैं। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

मीठे नैन रसीले निरखत, माहें सरम देत देखाए।

प्यार पूरा देखत, मेहेर भरे सुखदाए॥६८॥

श्यामा जी के नेत्रों में माधुर्यता का सागर उमड़ रहा है।

उनमें आनन्द का रस परिपूर्ण (लबालब) हो रहा है। ऐसे नेत्रों से जब वे देखती हैं, तो उनकी आँखों में प्रेम मिश्रित लज्जा भी दृष्टिगोचर होती है। उनके इन नैनों में प्रेम ही प्रेम भरा हुआ दिखायी दे रहा है। श्यामा जी के ये दोनों नेत्र कमल मेहर (कृपा) से भरपूर हैं और अपनी आत्माओं को अखण्ड आनन्द देने वाले हैं।

अनेक गुन इन नैन में, गिनती न होवे ताए।

सुख देत अलेखे सब अंगों, नैना गुन क्यों ए ना गिनाए॥६९॥

श्यामा जी के इन नैनों में अनेक (अनन्त) गुण समाये हुए हैं, जिनकी गिनती नहीं हो सकती। ये आत्मा के सभी अंगों में इतना आनन्द देते हैं कि उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। श्यामा जी के इन नेत्रों के गुणों को किसी प्रकार से नहीं गिना जा सकता।

भावार्थ- प्रकास हिन्दुस्तानी के प्रकरण ११ के अनुसार धाम धनी के गुण अनन्त हैं और उन्हें किसी भी प्रकार नहीं गिना जा सकता। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि उनकी हृदय स्वरूपा आह्लादिनी शक्ति श्यामा जी के नेत्रों के गुणों को गिना जा सके। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि नेत्रों में वही कुछ होता है, जो दिल में होता है। श्यामा जी के दिल में जो प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, और एकत्व (एकदिली) का सुख है, वही नेत्रों में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार उनके नेत्रों के गुणों को गिनना कदापि सम्भव नहीं है।

सनकूल मुख अति सुंदर, गौर हरवटी सलूक।

लांक अधुर दंत देखत, जीव होत नहीं टूक टूक॥७०॥

आनन्द से भरपूर श्यामा जी का मुखारविन्द अति

सुन्दर है। गोरे रंग की ठुड्डी भी बहुत ही मनोहर है। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि श्यामा जी के दोनों होंठों (अधरों) के बीच के अद्वितीय सौन्दर्य एवं अति आकर्षक दाँतों को देखकर भी मेरा जीव पूर्ण रूप से न्योछावर (टूक-टूक) क्यों नहीं हो पा रहा है।

मुख चौक अति सुन्दर, अति सुन्दर दोऊ गाल।

कही न जाए छबि सलूकी, निपट उज्जल माहें लाल॥७१॥

श्यामा जी का मुखकमल बहुत ही सुन्दर है। अत्यन्त उज्ज्वलता में गहरी लालिमा लिये दोनों गालों की सुन्दरता अद्वितीय है। इनके शोभा-सौन्दर्य का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

भावार्थ- श्यामा जी के सौन्दर्य को अद्वितीय कहने का भाव यह है कि कालमाया और योगमाया के ब्रह्माण्ड में

उनके जैसा कोई भी सुन्दर नहीं है। वे सौन्दर्य की पराकाष्ठा हैं। परमधाम में वहदत (एकदिली) होने के कारण सभी की सुन्दरता समान है।

सात रंग माहें झलकत, लेहेरें लेत दोऊ झाल।

दोऊ फूल सोभित मुख झालके, जुबां क्या कहे इन मिसाल॥७२॥

दोनों कानों में (एक-एक) झाले लटक रहे हैं। उनमें सात रंगों की लहरें झलकार कर रही हैं। झाल के मुख पर जवाहरातों के दो फूल सुशोभित हो रहे हैं। भला, इनकी शोभा की उपमा किससे देकर यह जिह्वा वर्णन करे।

भावार्थ- कर्णफूल का लटकता हुआ निचला हिस्सा झाला कहलाता है। इस चौपाई में दो फूल कर्णफूल (टाप्स) के अन्तर्गत ही माने जायेंगे।

फिरते मोती सोभित, माहें मानिक पाच कुंदन।

हीरे लसनिए नीलवी, सातों अम्बर करे रोसन॥७३॥

झाले में गोलाई में घेरकर मोती, माणिक, पाच, स्वर्ण, हीरा, लहसुनिया, और नीलम जड़े हुए हैं। इन सातों की ज्योति आकाश में फैल रही है।

हेंम नंग नाम लेत हों, जानों के पेहेने बनाए।

ए बिध अर्स में है नहीं, जुबां सके न सिफत पोहोंचाए॥७४॥

वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा में स्वर्ण आदि धातुओं और जवाहरातों के नगों का वर्णन करने पर ऐसा लगता है कि जैसे इन्हें बनाकर पहना जाता है, किन्तु परमधाम में ऐसा नहीं है। वहाँ पर कोई भी नई चीज बनती नहीं है, बल्कि इच्छा मात्र से दृष्टिगोचर होती है। परमधाम के नूरी आभूषणों की महिमा का वर्णन यहाँ की जिह्वा से होना

सम्भव नहीं है।

कई रंग करे एक खिन में, नई नई जुगत देखाए।

सोहे हमेसा सब अंगों, पेहेने सोभित चित्त चाहे॥७५॥

परमधाम में वस्त्रों एवं आभूषणों के नग एक ही क्षण में अनेक प्रकार के रंग धारण कर लेते हैं तथा उनकी बनावट भी अनेक प्रकार की दिखायी देने लगती है। श्री राजश्यामा जी तथा सखियों के दिल की इच्छानुसार वे हमेशा ही सभी अंगों में धारण किये हुए दिखायी देते हैं।

चीज सबे अर्स चेतन, वस्तर या भूखन।

सुख लेत हक के अंग का, यों करत अति रोसन॥७६॥

परमधाम की प्रत्येक वस्तु चेतन (आत्म-स्वरूप) है, चाहे वह वस्त्र हो या आभूषण। वे धाम धनी के अंगों में

विराजमान होकर आनन्द लेते हैं और अपनी नूरी आभा से जगमगाते रहते हैं।

भावार्थ- जिस तरह सखियाँ अपने धाम धनी को रिझाती हैं, उसी प्रकार वस्त्र एवं आभूषण भी आत्म-स्वरूप होने से अपने प्राणवल्लभ को रिझाते हैं। वहाँ का एक-एक कण श्री राज जी को रिझाता है और इश्क में डूबा रहता है।

हर नंग में सब रंग हैं, हर नंग में सब गुन।

सो नंग ले कछू न बनावत, सब दिल चाह्या होत रोसन॥७७॥

प्रत्येक नंग में सभी प्रकार के रंग प्रकट हो जाते हैं और उसमें सभी गुण भी आ जाते हैं। इसलिये किसी भी नंग को लेकर कुछ बनाना नहीं पड़ता है। सब कुछ दिल की इच्छानुसार ही दिखायी पड़ने लगता है।

भावार्थ- इस मायावी जगत में हीरे और मोती का रंग श्वेत होता है तथा पुखराज का रंग पीला, किन्तु परमधाम में प्रत्येक नग में अनन्त प्रकार के रंग इच्छा मात्र से ही दिखने लगते हैं। वहाँ का प्रत्येक कण सत्, चित्, और आनन्दमयी है। यही कारण है कि वहाँ बनने या बिगड़ने की प्रक्रिया नहीं होती।

वस्तर भूखन केते कहूं, हेम रेसम रंग नंग।

ना पेहेन्या ना उतारिया, ए दिल चाह्या सोभित अंग॥७८॥

परमधाम के रेशमी वस्त्रों, रंगों, स्वर्ण, और नगों से जड़ित आभूषणों के बारे में मैं कितना कहूँ। वहाँ न तो कोई वस्त्र या आभूषण पहना जाता है और न उतारा जाता है। दिल की इच्छानुसार ही सभी अंगों में इनकी शोभा दिखायी पड़ती है।

यों दिल चाह्या वस्तर, और दिल चाह्या भूखन।

जब जिन अंग दिल जो चाहे, आगूं रोसन होए माहें खिन॥७९॥

इस प्रकार दिल की इच्छानुसार ही वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा होती है। जब भी दिल में किसी अंग में किसी वस्त्र या आभूषण की इच्छा होती है, तो क्षण भर में ही पहले से वहाँ उस प्रकार की शोभा दिखने लगती है।

सुन्दर सरूप छबि देख के, फेर फेर जाऊं बल बल।

जो रूह होवे अर्स की, सो याही में जाए रल गल॥८०॥

श्यामा जी का यह अति सुन्दर स्वरूप है, जिसकी शोभा को देखकर मैं बारम्बार न्योछावर होती हूँ। जो परमधाम की आत्मा होगी, वह निश्चित रूप से इस शोभा में डूब जायेगी।

नरम लांक अति बारीक, पेट पांसली अति गौर।

ए छबि रूह रंग तो कहे, जो होवे अर्स सहूर॥८१॥

पेट और पसलियों के बीच वाला भाग बहुत ही पतला, कोमल, एवं अत्यन्त गोरे रंग का है। श्यामा जी के इस अलौकिक सौन्दर्य की शोभा को कोई भी आत्मा तभी कह सकती है, जब वह परमधाम के चिन्तन में खोई रहती हो।

भावार्थ- इस चौपाई में "लांक" (लंक) का भाव कमर से है, पीठ की गहराई से नहीं। परमधाम के चिन्तन का तात्पर्य बौद्धिक चिन्तन नहीं है, बल्कि आत्मा के द्वारा परमधाम की शोभा में डूबे रहने से है। लौकिक बुद्धि द्वारा ब्रह्मवाणी को पढ़कर उसमें निहित ज्ञान को ग्रहण तो किया जा सकता है, किन्तु वास्तविक शोभा का साक्षात्कार तो मात्र चितवनि से ही सम्भव है।

बल बल जाऊं मुख सलूकी, बल बल जाऊं रंग छब।

बल बल जाऊं तेज जोत की, बल बल जाऊं अंग सब॥८२॥

मैं श्यामा जी के मुख के अद्वितीय सौन्दर्य पर बलिहारी जाती हूँ। उनके सभी अंगों की अनुपम शोभा, सुन्दरता, एवं नूरी तेज-ज्योति पर मैं बारम्बार स्वयं को न्योछावर करती हूँ।

स्याम चोली अंग गौर पर, सोभा लेत अतंत।

सोहे बेली कटाव, जुबां कहा कहे सिफत॥८३॥

श्यामा जी के गोरे अंग पर काले रंग की चोली अनन्त शोभा को धारण कर रही है। उसमें बनी हुई बेलों के चित्र बहुत ही सुन्दर लग रहे हैं। उनकी महिमा का वर्णन यह जिह्वा कदापि नहीं कर सकती।

मोहोरी पेट और खड़पे, चोली नकस कटाव।

बाजू खभे उर ऊपर, मानो के फूल जड़ाव॥८४॥

पेट के ऊपर आयी हुई चोली की मोहरी तथा स्तनों वाले भाग में बेल-बूटों के चित्र हैं। इसी प्रकार दोनों बाजुओं, कन्धों, तथा वक्षस्थल के ऊपर जवाहरातों के नगों से बने हुए फूलों की शोभा आयी है।

पांच हार अति सुन्दर, हीरे मानिक मोती लसन।

नीलवी हार आसमान लों, जंग पांचों करें रोसन॥८५॥

श्यामा जी के गले में हीरा, माणिक, मोती, लहसुनिया, तथा नीलम के अति सुन्दर पाँच हार जगमगा रहे हैं। इनसे निकलने वाली ज्योति की तरंगें आकाश में फैलकर चारों ओर प्रकाश करती हैं और आपस में टकराकर युद्ध करती हुई प्रतीत होती हैं।

इन नंगों जोत तब पाइए, जब नजर दीजे आसमान।

सब जोत जंग करत हैं, कोई सके न काहू भान॥८६॥

यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि परमधाम के नूरी आकाश की ओर करें, तब आपको हारों के नंगों से निकलने वाली ज्योति का अनुभव होगा। वहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सभी हारों की ज्योतियाँ आपस में टकराकर युद्ध कर रही हैं। वहाँ सबका स्वरूप अखण्ड है, इसलिये कोई भी ज्योति किसी को नष्ट नहीं कर पाती।

जो नंग पेहेले देखिए, पीछे देखिए आकास।

तब याही की जोत बिना, और पाइए नहीं प्रकास॥८७॥

यदि आप पहले किसी नग की ओर देखें तथा बाद में आकाश की ओर देखें, तो आपको यही दिखायी पड़ेगा

कि सम्पूर्ण आकाश में मात्र इसी का प्रकाश है , इसके अतिरिक्त अन्य किसी का प्रकाश है ही नहीं।

बीच हारों के दुगदुगी, पाच पांने हीरे नंग।

माहें लसनिए नीलवी, करें पांचों आपुस में जंग॥८८॥

हारों के बीच में दुगदुगी (लाकेट) है, जिसमें पाच, पन्ना, हीरा, लहसुनिया, तथा नीलम के नग जड़े हुए हैं। इनसे निकलने वाला प्रकाश आपस में युद्ध करता हुआ प्रतीत होता है।

पांचों हारों के ऊपर, दोरा देखत जड़ाव।

कई बेल फूल पात नकस, कह्यो न जाए कटाव॥८९॥

इन पाँच हारों में प्रत्येक हार के ऊपर डोरे का जड़ाव आया है। इस डोरे में अनेक प्रकार की लताओं, फूलों,

तथा पत्तियों के चित्र अंकित हैं। इन बेल-फूल-बूटों की शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- डोरा कोई अलग हार नहीं है, बल्कि हार का ऊपरी भाग ही डोरे के रूप में दिखायी देता है। डोरे में नगों को गुँथा जाता है। कुछ भाग डोरे के रूप में पीछे दृष्टिगोचर होता है। यहाँ उसी का वर्णन है। इसकी स्थिति गर्दन के पीछे की ओर होती है।

डोरे का वर्णन इसी प्रकरण की चौपाई ९१, १०१, एवं १०२ में हुआ है, जो डोरे के स्वरूप को उजागर करता है।

मोती मानिक पांने लसनिएं, पाच हेम पुखराज।

और भूखन कई सोभित, रह्या सब पर डोरा बिराज॥९०॥

मोती, माणिक, पन्ना, लहसुनिया, पाच, स्वर्ण,

पुखराज, एवं अन्य कई आभूषणों में नूरमयी डोरा सुशोभित हो रहा है।

कांठले ऊपर चोलीय के, बेल धरत अति जोत।

और भी मानिक मोती नीलवी, डोरा तिन पर करे उद्धोत॥९१॥

चोली के गले की किनार पर बनी हुई बेलों की ज्योति झलकार कर रही है। इनमें माणिक, मोती, और नीलम के नग जड़े हुए हैं। किनार पर आया हुआ डोरा बहुत अधिक प्रकाश कर रहा है।

चार सरें इत चीड़ की, हर सर में रंग दस।

सो रंग इन जुबां न आवहीं, रंग रूह चाहिल अर्स॥९२॥

इन पाँच हारों के ऊपर चीड़ का हार आया है, जिसमें चार लड़ियाँ आयी हैं। हर लड़ी में दस-दस रंग आये हैं।

इन रंगों की शोभा का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता। परमधाम के ये रंग ब्रह्मसृष्टियों के दिल की इच्छानुसार प्रकट होते हैं।

भावार्थ- चीड़ के फल की आकृति में नगों का जो हार होता है, उसे चीड़ का हार कहते हैं। इसी प्रकार चम्पा की कलियों की आकृति वाले नगों से जड़ा हुआ हार चम्पकली का हार कहलाता है।

कण्ठसरी इन ऊपर, रही कण्ठ को मिल।

न आवे निमूना इनका, जाने आसिक रूह का दिल॥९३॥

इस चीड़ के हार के ऊपर सातवाँ हार कण्ठसरी का है, जो कण्ठ से चिपका हुआ है। इसकी शोभा से किसी की उपमा नहीं दी जा सकती। इसकी गरिमा को मात्र प्रेम में डूबी हुई ब्रह्माँगनायें ही जानती हैं।

द्रष्टव्य- श्यामा जी के पहले श्रृंगार में चौपकली का हार छठा तथा चीड़ का हार सातवाँ है। दूसरे श्रृंगार में चम्पकली का हार नहीं है, बल्कि चीड़ का हार छठा और कण्ठसरी का हार सातवाँ है।

नाम नंगों का लेत हों, केहेत हों जड़ाव जुबांए।

सब्दातीत तो कहावत, जो सिफत इत पोहोंचत नाहें॥९४॥

यद्यपि मैं जवाहरातों के नगों का नाम लेकर वर्णन करती हूँ और उन्हें सोने आदि में जड़ा हुआ कहती हूँ, किन्तु यह शोभा तो शब्दों से परे की है। इस संसार के शब्दों से इनकी वास्तविक महिमा का वर्णन नहीं हो सकता।

दोऊ बाजू बन्ध बिराजत, तामें केहेत जड़ाव।

माहें रंग नंग कई आवत, ए जड़ाव कहा इन भाव॥९५॥

दोनों भुजाओं में बाजूबन्ध विराजमान हैं। इनमें नगों के जड़ाव की शोभा है। कई रंगों के नग इनमें जड़े हुए हैं। इसी भाव से इन्हें जड़ाव कहा जाता है।

जो सोभा बाजू-बन्ध में, हिस्सा कोटमा कहा न जाए।
मैं कहूँ इन दिल माफक, वह पेहेनत हैं चित्त चाहे॥९६॥

बाजूबन्धों की जो शोभा है, उसके करोड़वें हिस्से का भी वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। श्यामा जी अपने हृदय (दिल) की इच्छानुसार इन्हें धारण करती हैं, जबकि मैं इस दिल के अनुसार वर्णन कर रही हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब परमधाम में एकदिली है, तो यहाँ श्यामा जी के दिल में और महामति जी के दिल में भेद क्यों माना गया है?

इसके समाधान में यही कहना उचित होगा कि यहाँ

श्यामा जी के परात्म के दिल का वर्णन किया गया है, जबकि वर्णन में असमर्थता महामति जी के जीव का दिल कर रहा है। यद्यपि परमधाम में महामति जी (इन्द्रावती जी) और श्यामा जी के दिल में कोई भेद नहीं है और जाग्रत हो जाने पर उनकी आत्मा के दिल में भी कोई भेद नहीं रह जाता, किन्तु यहाँ के शब्दों में व्यक्त करने का कार्य यहाँ का (जीव का) दिल करता है, इसलिये वास्तविक शोभा का वर्णन करने में असमर्थता व्यक्त की गयी है।

स्याम सेत लाल नीलवी, बाजू बंध और फुमक।

तिन फुन्दन जरी झलकत, लेत लेहेरी जोत लटकत॥९७॥

बाजूबन्ध में काले, सफेद, लाल, और नीले रंग के फुम्मक लटक रहे हैं। उसके फुन्दनों में लगी हुई जरी

(धातु का तार) झलकार कर रही है। उससे निकलने वाली ज्योति की लहरें चारों ओर फैल रही हैं।

मोहोरी तले जो कंकनी, स्वर मीठे झन बाजत।

नंग कटाव ए कांगरी, चूड़ पर जोत अतन्त॥९८॥

चोली की बाँह की मोहरी के नीचे कंकनी है, जिससे झन-झन की अति मधुर ध्वनि निकला करती है। बाहों में चूड़ की शोभा है, जिसकी काँगरी में बने हुए बेल-बूटों में नगों की अनन्त ज्योति झिलमिला रही है।

चूड़ कोनी काड़े लग, चूड़ी चूड़ी हर नंग।

नंग नंग कई रंग उठें, तिन रंग रंग में कई तरंग॥९९॥

कोहनी के नीचे चूड़ की शोभा है। चूड़ से काड़े के बीच में अनेक प्रकार की चूड़ियाँ आयी हैं। प्रत्येक चूड़ी में हर

किस्म के नग जड़े हैं और प्रत्येक नग में अनेक प्रकार के रंग हैं। इसी तरह हर रंग से अनेक प्रकार की तरंगें निकल रही हैं।

इन बिध के रंग इन जुबां, क्यों कर आवे सुमार।

न आवे सुमार रंग को, ना कछू जोत को पार॥१००॥

इस प्रकार परमधाम में न तो रंगों की सीमा है और न ज्योति की कोई सीमा है। यहाँ की जिह्वा से इनकी महिमा को शब्दों की सीमा (परिधि) में नहीं बाँधा जा सकता।

चूड़ आगूं डोरे दो सोभित, और कंकनी सोभे ऊपर।

दोऊ तरफों तेज जोत के, कंकनी बोलत मीठे स्वर॥१०१॥

चूड़ के आगे दो डोरे सुशोभित हो रहे हैं। उनके ऊपर

कंकनी की शोभा है। कंकनी से निकलने वाले नूरी तेज की ज्योति दोनों ओर फैल रही है। उससे बहुत ही मधुर ध्वनि निकला करती है।

भावार्थ- दोनों हाथों में दो-दो डोरे आये हैं, न कि दोनों हाथों के डोरों का योग दो है।

डोरे कंचन नंग के, तिन आगूं नवघरी।

नव रंग नवघरी मिने, रही आकास जोत भरी॥१०२॥

कञ्चन रंग के डोरों में नग जड़े हुए हैं। उनके आगे नवघरी है। नवघरी में नौ प्रकार के अलग-अलग रंग आये हैं। नवघरी से निकलने वाली नूरी ज्योति आकाश में सर्वत्र फैली हुई दिखायी दे रही है।

पोहोंचे हथेली हाथ के, अतन्त रंग उज्जल।

बलि जाऊं छबि लीकों पर, निपट अति कोमल॥१०३॥

दोनों हाथों के पोहोंचों तथा हथेलियों के रंग की उज्ज्वलता अनन्त है। हथेलियों की लकीरें बहुत ही कोमल हैं। मैं बार-बार इनकी शोभा पर बलिहारी जाती हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई में "उज्जल" शब्द का तात्पर्य अत्यधिक गोरे वर्ण से है, अर्थात् श्वेत में लालिमा मिश्रित रंग।

दोऊ हाथ की अंगुरी, पतलियां कोमल।

चरन न छूटे आसिक से, इतथें न निकसे दिल॥१०४॥

दोनों हाथों की अँगुलियां बहुत ही कोमल हैं और पतली हैं। धनी के चरण कमल (पूर्ण स्वरूप) ब्रह्मसृष्टियों के

दिल से कभी भी नहीं छूट सकते। उनका दिल तो अपने प्रियतम की शोभा में इस प्रकार डूब जाता है कि उससे निकल ही नहीं पाता अर्थात् अलग नहीं हो पाता।

पांच पांच अंगुरी जुदी जुदी, अति कोमल छबि अंगुरी।

दोऊ अंगूठों आरसी, और आठों रंग आठ मुन्दरी॥१०५॥

दोनों हाथों में अलग-अलग पाँच-पाँच अँगुलियां हैं। ये अत्यधिक कोमल शोभा वाली हैं। दोनों हाथों के अँगूठों में दर्पण वाली अँगूठियां हैं, तो शेष आठ अँगुलियों में आठ रंग की मुद्रिकायें हैं।

पाच पांने कंचन के, नीलवी और हीरे।

लसनिएं और गोमादिक, रंग पीत पोखरे॥१०६॥

दोनों हाथों की आठ अँगुलियों में पाच , पन्ना, कञ्चन,

नीलम, हीरा, लहसुनिया, गोमेद, और पीले रंग के पुखराज की मुद्रिकायें आयी हैं।

दरपन रंग दोऊ अंगूठी, और नंगों के दरपन।

कर सिनगार तामें देखत, नख सिख लग होत रोसन॥१०७॥

दोनों अँगूठों में दर्पण रंग की दो अँगूठियां हैं। इनमें लगे हुए दर्पण नगों के हैं। श्यामा जी इनमें अपना श्रृंगार देखा करती हैं। उनकी नख से शिख तक की सम्पूर्ण शोभा इनमें दिखायी देती है।

आगूं इन नख जोत के, होवें सूर कई कोट।

सो सूर न आवे नजरों, एक नख अनी की ओट॥१०८॥

श्यामा जी की अँगुलियों के नखों में इतनी ज्योति है कि यदि करोड़ों सूर्य भी सामने हों, तो मात्र एक नख की

ज्योति के सामने वे दिखायी भी नहीं पड़ेंगे।

ए झूठ निमूना इत का, हक को दिया न जाए।

चौप किए भी ना बने, केहे केहे रूह पछताए॥१०९॥

इस स्वप्नमयी संसार के सूर्यादि पदार्थ नश्वर हैं , इसलिये इनसे अक्षरातीत के तेज की उपमा नहीं दी जा सकती। चुप रहने पर भी काम नहीं चलता और कह देने पर आत्मा के दिल में इस बात का पश्चाताप होता है कि मैंने अनन्त तेज वाले युगल स्वरूप की उपमा झूठे सूर्यों से क्यों दी।

भावार्थ- इस चौपाई में "हक" शब्द का भाव युगल स्वरूप से है। सूर्य को झूठा और नश्वर कहने का कारण यह है कि यह अग्नि तत्व है। मानवीय बुद्धि के लिये अनन्त कहे जाने वाले इस निराकार मण्डल में हमारे सूर्य

से भी बहुत बड़े-बड़े सूर्य हमेशा उत्पन्न होते रहते हैं
और उसी में लय हो जाते हैं।

नीली अतलस चरनियां, कई बेल कटाव नकस।

चीन किनारे जो देखों, जानों एक पे और सरस॥११०॥

श्यामा जी नीले रंग का रेशमी पेटीकोट पहने हैं। उसमें
अनेक प्रकार के बेल-बूटों के चित्र अंकित हैं। किनारे पर
बनी हुई चुन्नटें एक से बढ़कर एक सुन्दर हैं अर्थात् सभी
अति सुन्दर हैं।

माहें बेल फूल कई खजूरे, नंगे के वस्तर।

नरम सखत जो दिल चाहे, जोत सुगंध सब पर॥१११॥

इसके अन्दर अनेक प्रकार की लताओं, फूलों, और
खजूर के पत्ते के आकार के लहरीदार चित्र आये हैं।

वस्तुतः ये सभी वस्त्र नगों के हैं। ये दिल की इच्छानुसार कोमल या कठोर हो जाया करते हैं। सभी में नूरी ज्योति और सुगन्धि भरी हुई है।

नव रंग इन नाड़ी मिने, ताना बाना सब नंग।

जानों बने जवेरन के, नकस रेसम या रंग॥११२॥

पेटीकोट की नाड़ी (डोरी) में नौ रंग आये हैं। इसकी सम्पूर्ण बनावट नगों की है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे इस रेशमी पेटीकोट पर जवाहरातों से ही अनेक रंगों की चित्रकारी की गयी है।

अचरज अदभुत देखत, वस्तर या भूखन।

नरम खूबी खुसबोए, भरया आसमान में रोसन॥११३॥

वस्त्रों या आभूषणों की यह अद्भुत शोभा सबको आश्चर्य

में डालने वाली है। सुगन्धि और कोमलता से भरा होना तो इनकी विशेषता है ही, इनकी ज्योति से भी सारा आकाश भरा रहता है।

अर्स में नकल है नहीं, ज्यों अंग त्यों वस्त्र भूखन।

जब जिन अंग जो चाहिए, तिन सौ बेर होए मिने खिन॥११४॥

परमधाम में नकल करके कोई भी चीज बनाई नहीं जाती। वहाँ वस्त्र और आभूषण भी शारीरिक अंगों की ही तरह नूरमयी एवं चेतन हैं। जिस अंग में शोभा के लिये जिस वस्त्र या आभूषण की आवश्यकता होती है, एक क्षण में सौ से भी अधिक बार वैसी शोभा बन जाती है।

भावार्थ— अंगों की माप लेकर वस्त्र बनाना या एक वस्त्र अथवा आभूषण का माप लेकर दूसरा वस्त्र या आभूषण बनाना नकल करना कहलाता है, किन्तु परमधाम में

ऐसा नहीं होता। वहाँ के एक-एक कण में ब्रह्मरूपता है, अर्थात् इच्छा मात्र से ही पल भर में सब कुछ उपस्थित हो जाता है।

जैसा सुख दिल चाहे, वस्तर भूखन तैसे देत।

सब गुन अर्स चीज में, सब सुख इस्क समेत॥११५॥

श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के दिल में जैसे सुख की इच्छा होती है, वस्त्र और आभूषण वैसा ही सुख देते हैं। परमधाम की प्रत्येक वस्तु में अक्षरातीत के सभी गुण (सत, चित्त, और आनन्द) भरे होते हैं। इन सबमें प्रेम और आनन्द का समावेश होता है।

भावार्थ- यद्यपि पूर्णातिपूर्ण होने से अक्षरातीत में सुख की इच्छा जैसी प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु लीला रूप में ऐसा कहा गया है। सम्पूर्ण परमधाम अक्षरातीत के हृदय

(दिल) का प्रकट रूप है, इसलिये वहाँ के कण-कण में प्रेम, आनन्द, और चेतनता आदि गुणों का समावेश होना स्वाभाविक है।

ए चरन अंग अर्स के, सब्द न पोहोंचे इत।

लाल उज्जल रंग सलूकी, मुख कही न जाए सिफत॥११६॥

श्यामा जी के ये चरण- कमल परमधाम के नूरी अंग हैं। इनकी शोभा का वर्णन करने का सामर्थ्य यहाँ के शब्दों में नहीं है। इनके चरणों का रंग उज्ज्वलता और लालिमा से भरपूर अति सुन्दर है। इस मुख से इन चरणों की अनन्त महिमा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

मैं कहूँ सिफत सलूकी, पर केहे न सकों क्योंए कर।

पूरा एक अंग केहे ना सकों, जो निकस जाए उमर॥११७॥

यद्यपि मैं श्यामा जी की शोभा का वर्णन अवश्य कर रही हूँ, किन्तु मैं किसी भी प्रकार से वास्तविक वर्णन नहीं कर सकती। यदि श्यामा जी की इस अलौकिक शोभा का वर्णन करने में मेरी सम्पूर्ण उम्र भी निकल (बीत) जाये, तो भी मैं उनके किसी एक अंग की शोभा का भी यथार्थ वर्णन नहीं कर सकूँगी।

भावार्थ— इस चौपाई में वर्णन करने का भाव श्री महामति जी (श्री इन्द्रावती जी) की आत्मा का है, किन्तु उम्र का सम्बन्ध श्री मिहिरराज जी के तन से है। आत्मा का मूल तन तो परात्म है, जिसकी आयु अनादि और अनन्त है।

जो कदी कहूं नरमाई की, और लीकों सिफत।

आए जाए आरबल, सब्द न इत पोहोंचत॥११८॥

यदि कदाचित् मैं श्यामा जी के चरणों की कोमलता और तलियों में आयी हुई रेखाओं के सौन्दर्य की महिमा का वर्णन करूँ, तो मेरे इस शरीर की सारी आयु तो इस कार्य में बीत जायेगी, किन्तु यहाँ के शब्दों से वर्णन नहीं हो सकेगा।

जो कहूँ खूबी रंग की, जोत कहूँ लाल उज्जल।

ए क्यों आवे सब्द में, जो कदम बका नेहेचल॥११९॥

श्यामा जी के जो चरण कमल अखण्ड परमधाम में विराजमान हैं, इनके सौन्दर्य की विशेषता में यदि मैं ऐसा कहूँ कि ये उज्जवलता में लालिमा मिश्रित रंग के ज्योतिर्मयी हैं, तो भी ये शब्द वास्तविक शोभा का वर्णन से बहुत दूर हैं।

रंग उज्जल नरमाई क्यों कहूं, और चरन की खुसबोए।

ए जुबां अर्स चरन की, क्यों कर बरनन होए॥१२०॥

परमधाम में विराजमान श्यामा जी के चरण कमल अति उज्जवल रंग के हैं। इनमें अद्वितीय कोमलता और सुगन्धि भरी हुई है। इस जिह्वा से इनका वर्णन कर पाना किसी तरह से सम्भव नहीं है।

फना टाकन घूटियां, और काड़े अति कोमल।

रंग सोभा सलूकी छोड़के, आगूं आसिक न सके चल॥१२१॥

दोनों चरणों के पँजे, टखने, घूटियां, और कड़े बहुत ही कोमल हैं। आत्मा की दृष्टि जब इनके रंग की शोभा – सुन्दरता को देखने लगती है, तो उसे छोड़कर कहीं और देखना सम्भव ही नहीं रह जाता।

अब कहूं भूखन चरन के, कांबी कड़ली घूंघरी।

झलके नंग जुदे जुदे, इन पर इन बाजे झांझरी॥१२२॥

अब मैं चरणों में आने वाले आभूषणों झांझरी , घूंघरी, कांबी, तथा कड़ली का वर्णन करती हूँ। इनमें जड़े हुए नंग अलग-अलग रंगों में झलकार करते हैं और झांझरी से इन-इन की बहुत मधुर ध्वनि निकला करती है।

एक हीरे की झांझरी, दिल रूचती रंग अनेक।

नकस कटाव बूटी ले, ए किन विध कहूं विवेक॥१२३॥

श्यामा जी के दोनों चरणों में दिल को भाने वाली (बहुत प्रिय लगने वाली) झांझरी है। ये हीरे की है। इनमें अनेक प्रकार के मनोहर रंग आये हैं। इनमें छोटे-छोटे गोल आकार के फूलों के चित्र अंकित हैं। इनकी शोभा का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

द्रष्टव्य- झांझरी की तरह ही दोनों चरणों में घूंघरी , कांबी, और कड़ली की शोभा है।

पांच नंग की घूंघरी, दिल रूचती बोलत।

दिल चाहे रंग देखावत, दिल चाही सोभित॥१२४॥

पाँच नगों से जड़ी हुई घूंघरी है , जो दिल की इच्छानुसार बोला करती है। मन के भावों के अनुसार ही उसके रंग भी दिखायी देते हैं। इस प्रकार उसकी सम्पूर्ण शोभा हृदय की इच्छानुसार दिखायी देती है।

कई रंग कड़ी में देखत, जानों के हेम नंग जड़ित।

सो सोभित सब दिल चाहे, नित नए रूप धरत॥१२५॥

कड़ी की शोभा इस प्रकार की है कि जैसे सोने में नगों को जड़कर इसकी रचना की गयी हो। इसमें अनेक

प्रकार के रंग दिखायी देते हैं, जो दिल की इच्छानुसार शोभायमान होते हैं और हमेशा ही नये-नये रूप धारण करते रहते हैं।

कई बेल कड़ी में पात फूल, सब नंग नकस कटाव।

मानो हेम मिलाए के, कियो सो मिहीं जड़ाव॥१२६॥

कड़ी (कड़ली) में अनेक प्रकार की लताओं, पत्तियों, तथा फूलों के चित्र अंकित हैं। इनकी शोभा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे सोने में अनेक प्रकार के नगों को बहुत ही बारीकी से जड़कर इन्हें बनाया गया है।

या विध कांबी सनंध, या नंग या धात।

जैसा दिल में आवत, तैसा तित सोभात॥१२७॥

कांबी की शोभा ऐसी है कि दिल में जैसी इच्छा होती है,

उसके अनुसार ही इसमें जड़े हुए नगों तथा धातुओं की शोभा दिखायी पड़ती है।

घड़े जड़े ना किन किए, दिल चाह्या सब होत।

दिल चाह्या मीठा बोलत, दिल चाही धरे जोत॥१२८॥

दोनों चरणों में धारण की गई कांबियों को न तो किसी ने बनाया है और न इसमें दिखने वाले नगों को किसी ने जड़ा है। यह सारी लीला तथा शोभा दिल की इच्छानुसार होती है। दिल की इच्छानुसार ही उसमें से अति मीठी ध्वनि तथा मनोहर ज्योति निकलने लगती है।

कहूं अनवट पाच के, माहें करत आंभलिया तेज।

निरखत नखसिख सिनगार, झलकत रेजा रेज॥१२९॥

दोनों अँगूठों में पाच के नगों से जड़े हुए अनवट की शोभा है। इनमें दर्पण के रूप में तेजोमयी हीरा जड़ा हुआ है। श्यामा जी इनमें अपना नख से शिख तक का श्रृंगार देखा करती हैं। उनके श्रृंगार का एक-एक कण इनमें झलकता रहता है।

भावार्थ- परमधाम में प्रत्येक वस्तु सच्चिदानन्दमयी है, इसलिये वहाँ दर्पण की आवश्यकता नहीं पड़ती, किन्तु इस चौपाई में दर्पण का प्रयोग मात्र लीला को दर्शाने के लिये किया गया है।

और अंगुरियों बिछिए, करे स्वर रसाल।

हीरे और लसनिएं, मानिक रंग अति लाल॥१३०॥

अँगुलियों में बिछियों की शोभा है, जो प्रेम रस से भरी हुई बहुत ही मोहक आवाज करती हैं। इसमें हीरा,

लहसुनिया, और अति लाल रंग के माणिक के नग जड़े हुए हैं।

माहें और रंग हैं कई, कई नकस करें चित्र।

सोभा पर बलि जाइए, देख देख एह विचित्र॥१३१॥

इन बिछियों में और भी रंगों के नग हैं, जिनमें अनेक प्रकार के चित्र अंकित हैं। हे साथ जी! आप इस अलौकिक शोभा को देख-देखकर प्रेमपूर्वक न्योछावर हो जाइए।

जो सलूकी फनन की, और अंगुरी फनों तली।

ए बका बरनन कबूँ न हुई, गई अब्बल से दुनी चली॥१३२॥

श्यामा जी के चरण कमल के पँजे, उनकी तली वाले भाग, और अँगुलियों की इतनी सुन्दरता है कि आज दिन

तक इस अखण्ड शोभा का वर्णन ही नहीं हो सका था, जबकि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक न जाने कितने मनीषी हो गये हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का शाब्दिक अर्थ है- सृष्टि के प्रारम्भ से दुनिया को चलते हुए आज दिन तक इतना समय हो गया। इस कथन का मूल भाव यह है कि इस सृष्टि में आज दिन तक बड़े-बड़े ज्ञानी, तपस्वी, योगी, अवतार, और पैगम्बर आदि हो गये हैं। उपरोक्त विभूतियाँ इस ब्रह्माण्ड की थीं, इसलिये "दुनी चली" के कथन का प्रयोग किया गया है।

सलूकी नखन की, और छबि अंगुरियों।

खूबी सिफत चरन की, कही न जाए जुबां सों॥१३३॥

श्यामा जी के नखों की सुन्दरता अद्वितीय है, तो

अँगुलियों की शोभा अनुपम है। उनके चरणों की विशेषता की जो अनन्त महिमा है, उसका वर्णन इस जिह्वा से हो पाना कदापि सम्भव नहीं है।

जोत धरत आकास रोसनी, क्यों कर कहूं नख जोत।

मानों सूरज अर्स के, कोटक हुए उद्धोत॥१३४॥

नखों से निकलने वाली नूरी ज्योति की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। इनकी ज्योति का प्रकाश आकाश में फैल रहा है। इनकी छटा ऐसी लग रही है, जैसे परमधाम के करोड़ों सूर्य उग आये हों।

दोऊ अंगूठे चरन के, और खूबी अंगुरियों।

सोभा सुन्दर फनन की, आवत ना सिफत मों॥१३५॥

दोनों चरणों के दोनों अँगूठों तथा अँगुलियों के सौन्दर्य

की विशेषता अद्वितीय है। पँजों की शोभा भी अनुपम है। इनके सौन्दर्य की महिमा शब्दों की परिधि में नहीं आ सकती।

मिहीं लीकां देखूं लांक में, इतहीं करूं विश्राम।

बल बल जाऊं देख देख के, एही रूह मोमिनो ताम॥१३६॥

मेरी तो यही इच्छा करती है कि मैं श्यामा जी के चरणों की तलियों (तलुओं) की गहराई में बनी हुई पतली रेखाओं को देखती ही रहूँ और इनके सौन्दर्य में डूबकर आनन्दमग्न रहा करूँ। इन्हें देख-देख कर मैं बारम्बार न्योछावर होना चाहती हूँ। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के लिये यही आत्मिक आहार है।

चरन तली लांक एड़ियां, उज्जल रंग अति लाल।

केहेते छबि रंग चरन की, अजूं लगत न हैड़े भाल॥१३७॥

चरण की तलियों की गहराई तथा एड़ियों का रंग उज्ज्वलता में गहरी लालिमा लिये हुए है। अद्वितीय सौन्दर्य से भरपूर इन चरणों की शोभा का वर्णन करते हुए हाय! हाय! मेरे हृदय में अभी भी भाले क्यों नहीं लगते।

भावार्थ— कलेजा फट जाना, दिल का टुकड़े-टुकड़े हो जाना, और दिल में तीर या भाला लगने आदि का कथन आलंकारिक है। इस तरह की अभिव्यक्ति उस समय की जाती है, जब अपनी प्राणप्रिय वस्तु से या तो वियोग हो जाये या उसे किसी को देना पड़े अथवा शब्दों में व्यक्त करना पड़े।

इस तरह के कथनों में विरह-प्रेम की एक टीस (आह)

सी छिपी रहती है। इस चौपाई में भी महामति जी के हृदय की यही पीड़ा व्यक्त हो रही है कि किस कठोर हृदय से वे इस अलौकिक शोभा को कह पा रही हैं।

सौन्दर्य के सागर को देख लेने के पश्चात् बोलना तो हृदय की निष्ठुरता को दर्शाता है। वस्तुतः ब्रह्मसृष्टियों के सुख के लिये धाम धनी के हुक्म से ही यह वर्णन सम्भव हुआ है, अन्यथा दर्शन के पश्चात् बोल सकना तो किसी के लिये भी सम्भव नहीं है।

दिल चाही खूबी सलूकी, दिल चाही नरम छब।

दिल चाह्या रंग खुसबोए, रही दिल चाही अंग फब॥१३८॥

श्यामा जी के अंगों में सौन्दर्य की जो विशेषतायें हैं , शोभा और कोमलता है, वस्त्र और आभूषणों में सुगन्धि एवं रंगों की दिव्यता है, यह सभी दिल की इच्छानुसार

प्रकट होते रहते हैं।

यों दिल चाहे वस्तर, और दिल चाहे भूखन।

जब जिन अंग दिल जो चाहे, सो आगूंहीं बन्यो रोसन॥१३९॥

इस प्रकार दिल की इच्छानुसार ही वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा दृष्टिगोचर होती है। जिस अंग में जिस प्रकार के वस्त्र या आभूषण की इच्छा होती है, वह इच्छा के व्यक्त होने के पहले ही बन जाता है।

जिन अंग जैसा भूखन, दिल चाह्या सब होत।

खिन में दिल और चाहत, आगूं तैसी करे जोत॥१४०॥

जिस अंग में जिस प्रकार के आभूषण की इच्छा होती है, हृदय के भावों के अनुसार पल भर में वैसा ही हो जाता है। अगले ही क्षण यदि किसी और प्रकार के

आभूषण की इच्छा होती है, तो उस इच्छा के प्रकट होने के पहले ही वह आभूषण अपनी नूरी ज्योति से जगमगाने लगता है।

खिन में सिनगार बदले, बिना उतारे बदलत।

रंग तित भूखन नए नए, रंग जो दिल चाहत॥१४१॥

हृदय की इच्छा मात्र से पल भर में वस्त्रों या आभूषणों का श्रृंगार बदल जाता है। इसके लिये उन्हें उतारने की आवश्यकता नहीं पड़ती। दिल की इच्छानुसार नये-नये रंगों के नये-नये आभूषण तुरन्त दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

भावार्थ- यहाँ यह संशय प्रकट होता है कि जब परमधाम में इच्छा मात्र से पल भर में अनेक प्रकार के श्रृंगार प्रगट हो जाते हैं, तो क्या यह नयी वस्तु का निर्माण नहीं हुआ? स्वर्ग और वैकुण्ठ में भी इसी प्रकार

वस्त्रों और आभूषणों के बदल जाने की बात कही जाती है (जनमेजय की अप्सरा रानी के सन्दर्भ में), तो फिर परमधाम और वैकुण्ठ में अन्तर ही क्या रह जाता है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण परमधाम में अक्षरातीत का हृदय (दिल) ही सभी रूपों में लीला कर रहा है। ऐसी स्थिति में किसी भी क्षेत्र में अपूर्णता नहीं हो सकती। यही कारण है कि वहाँ पल भर में करोड़ों प्रकार के श्रृंगार बदल जाते हैं (पाग होत कई कोट पल में)। कालमाया में बनी हुई वस्तु नष्ट अवश्य होती है और योगमाया में बनी हुई वस्तु अनन्त काल के लिये अखण्ड रहती है, किन्तु परमधाम में स्थिति दोनों से अलग होती है। कण-कण में ब्रह्मरूपता होने से वहाँ शोभा और लीला का मात्र रूपान्तरण होता है। बनने, मिटने, या अखण्ड होने जैसी बातें वहाँ नहीं हैं। स्वर्ग -

वैकुण्ठ की लीलायें त्रिगुणात्मक जगत् में होती हैं। इनकी तुलना परमधाम से करना वैसे ही है, जैसे सागर की तुलना एक छोटे से तालाब से करना।

दिल चाही सोभा धरे, दिल चाही खुसबोए।

दिल चाही करे नरमाई, जोत करे जैसी दिल होए॥१४२॥

परमधाम में श्यामा जी के आभूषण दिल की इच्छानुसार शोभा धारण कर लेते हैं। उनमें कोमलता और सुगन्धि भी हृदय के भावों के अनुसार होती है। इनसे ज्योति भी वैसी ही निकलती है, जैसी चाहना होती है।

रुहें बसत इन कदमों तले, जासों पाइए पेहेचान।

सब रुहें नूर इन अंग को, ए नूर अंग रेहेमान॥१४३॥

सभी ब्रह्मसृष्टियाँ श्यामा जी के चरणों (सान्निध्यता) में

रहती हैं। इन चरणों की मेहर (कृपा) से ही अपनी एवं धनी के स्वरूप की पहचान होती है। सभी सखियाँ श्यामा जी के अंग (दिल) की नूर स्वरूपा हैं और श्यामा जी अक्षरातीत श्री राज जी के हृदय की नूर स्वरूपा हैं।

भावार्थ— चरणों में रहने का तात्पर्य अखण्ड सम्बन्ध से है। प्रेम, आह्लाद, कान्ति, ज्योति, शोभा आदि नूर के ही स्वरूप हैं। श्यामा जी को श्री राज जी के अंग (दिल) का नूर कहे जाने का भाव यह है कि श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी के रूप में लीला कर रहा है। सखियों के भी रूप में वही दिल लीला कर रहा है। इस संसार में मात्र समझ में आने के लिये ही श्यामा जी की अंगरूपा कहकर सखियों का चित्रण किया गया है। भला, स्वलीला अद्वैत में अंग-अंगी का भेद कहाँ से आ सकता है, किन्तु लीला रूप में बुद्धिग्राह्य होने के लिये वैसे कहा

जाता है।

जैसे आम के एक बीज से कई आम के पेड़ तैयार होते हैं। उन पर लगने वाले सभी फलों में वैसा ही बीज (गुठली) होता है, जिससे सभी वृक्ष तैयार हुए होते हैं। इस प्रकार सभी वृक्षों में, फलों में, और गुठलियों में एक प्रकार की समानता होती है। यही वहदत है और मूल बीज (गुठली) ही दिल है, जिसका व्यक्त स्वरूप सभी वृक्ष और फल आदि हैं। गुठली में निहित जीवनी शक्ति ही नूर है, जिसका प्रतिफल वृक्षों और फलों के रूप में दृष्टिगोचर होता है। जिस प्रकार सभी वृक्षों में फल विद्यमान है, उसी प्रकार प्रत्येक परात्म के दिल में श्री राज जी ही विराजमान हैं। यही अंग-अंगी का रहस्य है।

ए जो अरवाहें अर्स की, पड़ी रहें तले कदम।

खान पान इनो इतहीं, रूहें रहें तले कदम॥१४४॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हमेशा ही श्यामा जी के चरणों में निवास करती हैं। इनका आत्मिक आहार (खाना-पीना) भी इन चरणों में ही प्राप्त होता है।

भावार्थ- चरणों में रहने का भाव है— चरणों या उनकी शोभा-श्रृंगार में खोये रहना। धनी का दीदार एवं उनसे वार्ता ही ब्रह्मसृष्टियों का आत्मिक आहार है, जिसे खाने-पीने के द्वारा दर्शाया गया है।

याही ठौर रूहें बसत, रात दिन रहें सनकूल।

हक अर्स मोमिन दिल, तिन निमख न पड़े भूल॥१४५॥

युगल स्वरूप के चरणों में ही ब्रह्मसृष्टियों का ध्यान बना रहता है, जिससे वे हमेशा (दिन-रात) आनन्द में डूबी

रहती हैं। इन ब्रह्माङ्गनाओं का दिल ही धनी का परमधाम है। उनसे इस सम्बन्ध में क्षण भर के लिये जरा सी भी भूल नहीं होती, अर्थात् वे किसी भी स्थिति में अपने दिल से क्षण भर के लिये भी धनी के चरणों को अलग नहीं कर सकतीं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह प्रश्न होता है कि ब्रह्मसृष्टियाँ निद्रावस्था में किस प्रकार धनी के चरणों को अपने धाम हृदय में बसाये रखती हैं?

इसका उत्तर यह है कि आत्मा के धाम हृदय में एक बार जो भी शोभा बस जाती है, वह अलग नहीं होती। नींद की अवस्था में भी आत्मा के दिल में अखण्ड रूप से धनी की शोभा बसी रहती है, क्योंकि वह खेल में मात्र दृष्टा है। जबकि जीव का स्थूल, सूक्ष्म, एवं कारण शरीर (दिल) नींद से प्रभावित होता है। वह मात्र जाग्रत

अवस्था में ही ध्यान-चिन्तन आदि के द्वारा उस आनन्द की एक झलक ले पाता है।

हक कदम हक अर्स में, सो अर्स मोमिन का दिल।

छूटे ना अर्स कदम, जो याही की होए मिसल॥१४६॥

श्री राज जी के चरण कमल परमधाम में हैं और वह परमधाम ब्रह्मसृष्टि का दिल (हृदय) है। जो इन ब्रह्मसृष्टियों की जमात (समूह) में से होता है अर्थात् जिसमें परमधाम का अँकुर होता है, उसके हृदय से न तो परमधाम अलग हो सकता है और न धनी के चरण कमल अलग हो सकते हैं।

ए चरन राखूं दिल में, और ऊपर हैड़े।

लेके फिरोँ नैनन पर, और सिर पर राखों ए॥१४७॥

मैं युगल स्वरूप के इन चरणों को हमेशा अपने हृदय में बसाये रखना चाहती हूँ। मेरी यही इच्छा है कि इन्हें अपने वक्षस्थल पर, सिर पर बिठाकर, और नेत्रों में बसाकर घूमा करूँ।

भावार्थ— महामति जी के धाम हृदय में तो युगल स्वरूप विराजमान हैं ही। उन्होंने इस प्रकार का कथन परोक्ष में सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये कहा है। वक्षस्थल पर चरणों को रखना प्रेम को दर्शाना है तथा नेत्रों में बसाये रखना पल-पल दीदार की प्यास को व्यक्त करता है। इसी प्रकार सिर पर बिठाये रखना स्वयं को धनी के ऊपर न्योछावर करने तथा उनके आदेश (हुक्म) को शिरोधार्य करने की भावना दर्शाता है।

भी राखों बीच नैन के, और नैनों बीच दिल नैन।

भी राखों रूह के नैन में, ज्यों रूह पावे सुख चैन॥१४८॥

मैं युगल स्वरूप के चरण कमल को अपने नेत्रों में तो रखूँ ही, इन नैनों के बीच में स्थित दिल के नैनों में भी रखूँ। इतना ही नहीं, मैं इन्हें अपनी आत्मा के दिल रूपी नैनों में भी रखूँ, जिससे मेरी आत्मा अपने मूल आनन्द और शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर सके।

भावार्थ- मुखारविन्द या नेत्रों को हृदय का दर्पण कहा जाता है, क्योंकि हृदय के सम्पूर्ण भाव इनमें अवश्य प्रतिबिम्बित होते हैं, भले ही कोई उनका आंकलन (पहचान) न कर पाये। यही कारण है कि बाह्य नेत्रों के बीच में दिल के नेत्रों को स्थित कहा गया है। आत्मा के दिल को ही आत्मा के नेत्रों की संज्ञा प्राप्त है। परोक्ष कथन के द्वारा इस चौपाई में सुन्दरसाथ को यह निर्देश

दिया गया है कि वे अपने जीव तथा आत्मा दोनों के दिल में युगल स्वरूप के चरण कमलों को बसायें।

महामत कहे इन चरन को, राखों रूह के अन्तस्करण।

या रूह नैन की पुतली, बीच राखों तिन तारन॥१४९॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि मैं युगल स्वरूप के इन चरणों को अपनी आत्मा के अन्तःकरण (हृदय, दिल) में बसा लूँ। मेरी आत्मा परात्म रूपी नेत्र की पुतली है, जिसमें स्थित "तारा" ही मेरी आत्मा का दिल है। उसी में मुझे अपने प्राणवल्लभ की सम्पूर्ण शोभा को बसाना है।

प्रकरण ॥९॥ चौपाई ॥७९९॥

श्री राज जी का सिनगार तीसरा

श्री राज जी के तीसरे श्रृंगार का वर्णन प्रारम्भ होता है।

फेर फेर सरूप जो निरखिए, नैना होंए नहीं तृपित।

मोमिन दिल अर्स कहा, लिखी ताले ए निसबत॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि श्री राज जी की शोभा को भले ही कितनी बार क्यों न देखा जाये, किन्तु नेत्र तृप्त नहीं होते। इस संसार में भाव यह है कि श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी के रूप में लीला कर रहा है। सखियों के रूप में भी वही दिल लीला कर रहा है। धाम धनी से अँगना भाव के इस अखण्ड सम्बन्ध का सौभाग्य ब्रह्मसृष्टियों को ही प्राप्त है, इसलिये इनके हृदय को परमधाम भी कहा जाता है।

भावार्थ— नेत्रों के तृप्त न होने की बात को लौकिक दृष्टि

से नहीं देखना चाहिए। प्रेम में पल-पल दीदार की इच्छा बनी ही रहती है। इसी को यहाँ "अतृप्त" शब्द से प्रस्तुत किया गया है। दीदार की प्यास मिट जाने पर प्रेम लीला ही समाप्त हो जायेगी, जो ब्रह्मलीला में कदापि सम्भव नहीं है।

चाहिए निसदिन हक अर्स में, और इत हक खिलवत।

होए निमख न न्यारे इन दिल, जेती अर्स न्यामत॥२॥

इस प्रकार श्री राज जी का निवास हमेशा (दिन-रात) ब्रह्मात्माओं के धाम हृदय में होना चाहिए। खिल्वत का स्वाद भी इसी धाम हृदय में मिलना चाहिए और परमधाम की सभी सम्पदायें (नेमतेँ) इस धाम हृदय से एक क्षण के लिये भी अलग नहीं होनी चाहियें।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब

परमधाम का अनन्त प्रेम, आनन्द, ज्ञान, सौन्दर्य आदि सुन्दरसाथ के दिल में ही है, तो पुनः उन्हें षड् विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर अर्थात् ईर्ष्या) से युक्त क्यों देखा जाता है?

इसका समाधान इस प्रकार है कि यहाँ केवल उन सुन्दरसाथ का प्रसंग है, जिनमें परमधाम का अंकुर होता है। सुन्दरसाथ के समुदाय में सम्मिलित जीव + ईश्वरी सृष्टि से यहाँ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। माया से संयुक्त होने के कारण केवल जीव में ही इन षड् विकारों का समावेश होता है, आत्मा में नहीं।

यहाँ तो मात्र उन्ही ब्रह्मात्माओं का प्रसंग है, जिनके धाम हृदय में नख से शिख तक युगल स्वरूप का श्रृंगार बस चुका होता है और उनकी आत्मा "जाग्रत" हो जाने की शोभा को प्राप्त कर चुकी होती है। तारतम ज्ञान और

प्रेम से रहित होने के कारण माया में भटकने वाली ब्रह्मसृष्टियों से भी यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार बहुत मूल्यवान दर्पण भी मल, विक्षेप (हिलने-डुलने), और आवरण के कारण प्रतिबिम्ब को धारण नहीं कर पाता, उसी प्रकार धनी की शोभा को अपने अन्दर बसाये बिना किसी का भी हृदय "धाम" की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में ब्रह्मसृष्टि के जीव का भी षड् विकारों के जाल में फँसे रहना स्वाभाविक है।

किन्तु, अर्श दिल (धाम-हृदय) की शोभा प्राप्त कर लेने पर परमधाम की सम्पूर्ण सम्पदा (निस्बत, वहदत, खिल्वत, शोभा-श्रृंगार आदि) का सुख यहीं पर अनुभव में आने लगता है। सिनगार ११/२६, २७ का यह कथन इसी सन्दर्भ में है—

दिल मोमिन तो अर्स कहा, जो इन दिल में हक बैठक।
 तो इत जुदागी कहां रही, जहां हकै आए मुतलक॥
 ए क्यों होए बिना निसबतें, इतहीं हुई वाहेदत।
 निसबत वाहेदत एकै, तो क्यों जुदी कहिए खिलवत॥

बरनन किया हक सूरत का, रूह देख्या चाहे फेर फेर।
 एही अर्स दिल रूह के, बैठे सिनगार कर॥३॥

मैंने धाम धनी के आदेश (हुक्म) से उनके नख से शिख तक के श्रृंगार का वर्णन किया है। अब मेरी आत्मा बारम्बार इस शोभा को देखना चाहती है, क्योंकि मेरे प्राण प्रियतम नख से शिख तक श्रृंगार सजकर मेरी आत्मा के इसी धाम हृदय में विराजमान हो गये हैं।

अब निस दिन रूह को चाहिए, फेर सब अंग देखे नजर।
सूरत छबि सलूकी, देखों भूखन अंग वस्तर॥४॥

अब मेरी आत्मा को चाहिए कि वह दिन-रात धाम धनी के एक-एक अंग की शोभा को बारम्बार देखा करे। उसे मुखारविन्द की सुन्दरता तथा भिन्न-भिन्न अंगों में सुशोभित वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा में स्वयं को डुबो देना चाहिए।

सिनगार किया सब दुलहे, वस्तर या भूखन।

अब बखत हुआ देखन का, देखों रूह के नैनन॥५॥

मेरे प्राण प्रियतम! आप परमधाम के वस्त्रों एवं आभूषणों से युक्त सम्पूर्ण श्रृंगार सजकर मेरे धाम हृदय में विराजमान हो गये हैं। हे मेरी आत्मा! अब तुम्हारे लिये यही उचित समय है, जिसमें तू अपने आत्मिक नेत्रों से

धनी की शोभा को जी भरकर देख सकती है।

भावार्थ- इस चौपाई में सम्पूर्ण श्रृंगार का तात्पर्य मात्र वस्त्र-आभूषणों के बाह्य श्रृंगार से नहीं है, बल्कि हृदय में छिपे हुए उस दिव्य सौन्दर्य के प्रकटीकरण से है, जो युगल स्वरूप के नख से शिख तक रोम-रोम में दृष्टिगोचर हो रहा है। यद्यपि वस्त्र और आभूषण भी अंगों की नूरी शोभा हैं, किन्तु केवल बाह्य दृष्टि से ही सौन्दर्य का आँकलन उचित नहीं है। युगल स्वरूप के रोम-रोम में सौन्दर्य के अनन्त सागर लहरा रहे हैं, जिनमें प्रेम, आनन्द, कान्ति, छटा, एकरूपता, सुगन्धि, और कोमलता की अनन्त लहरें अठखेलियाँ कर रही हैं।

सब अंग देखों फेरके, और देखों सब सिनगार।

काम हुआ अपनी रूह का, देख देख जाऊं बलिहार॥६॥

मेरे धाम धनी! अब तो मेरा काम हो गया। मेरी यही चाहना है कि मैं पुनः आपके एक-एक अंग की शोभा तथा वस्त्रों एवं आभूषणों सहित सम्पूर्ण श्रृंगार को देखूँ और देख-देखकर आपके ऊपर न्योछावर हो जाऊँ।

भावार्थ- आत्मा सभी द्वन्द्वों से परे होकर युगल स्वरूप को निहारना (देखना) चाहती है। जब उसे यह अवसर प्राप्त होता है तो उसके मुख से यही स्वर निकलता है कि अब मेरा काम हो गया। इस चौपाई के तीसरे चरण में यही बात दर्शायी गयी है।

रूह चाहे बका सरूप की, करके नेक बरनन।

देखों सोभा सिनगार, पेहेनाए वस्तर भूखन॥७॥

मेरी आत्मा यही चाहती है कि श्री राज जी के अखण्ड स्वरूप का थोड़ा सा वर्णन कर लूँ और उन्हें वस्त्र -

आभूषणों से सुसज्जित करके उनकी शोभा-श्रृंगार को निरन्तर देखती रहूँ।

भावार्थ- इस चौपाई में "थोड़ा सा श्रृंगार वर्णन करके देखने में लग जाने" का कथन यह सन्देश देता है कि कथनी की अपेक्षा करनी में स्थित हो जाना ज्यादा श्रेयस्कर है।

कलंगी दुगदुगी पगड़ी, देख नीके फेर कर।

बैठ खिलवत बीच में, खोल रूह की नजर॥८॥

हे मेरी आत्मा! अब तू अपनी आत्मिक दृष्टि से मूल मिलावे में जा और श्री राज जी की पाग, उसमें जड़ी हुई दुगदुगी, तथा कलंगी को बार-बार अच्छी तरह से देख।

पेहेले देख पाग सलूकी, माहें कई बिध फूल कटाव।

जोत करी है किन बिध, जानों के नकस नंग जड़ाव॥९॥

पहले तू पाग की उस सुन्दरता को देख, जिसमें अनेक प्रकार के फूलों के चित्र अंकित हैं। तू यह भी देख कि इनसे किस प्रकार नूरी ज्योति निकल रही है। इनकी सुन्दरता को देखकर तो ऐसा लगता है कि जैसे जवाहरातों के नगों से बने हुए फूल ही जड़े गये हैं।

देख कलंगी जोत सलूकी, जेता अर्स अवकास।

सो सारा ही तेज में, पूरन भया प्रकास॥१०॥

तू कलंगी से निकलने वाली उस सुन्दर ज्योति को भी देख, जिससे परमधाम का सम्पूर्ण आकाश नूरमयी तेज से परिपूर्ण हो रहा है और चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश नजर आ रहा है।

और खूबी इन कलंगी, और दुगदुगी सलूक।

और पाग छबि रूह देख के, होए जात नहीं भूक भूक॥११॥

हे मेरी आत्मा! तू कलंगी के इस विशेष सौन्दर्य को देख रही है। तूने दुगदुगी और पाग की शोभा-सुन्दरता को भी देख लिया है, फिर भी तू धनी के प्रेम में स्वयं को टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं कर देती।

भावार्थ- भूक-भूक का भाव होता है- चूर्ण की तरह टुकड़े-टुकड़े कर देना। इसमें इस बात का संकेत दिया गया है कि धनी के प्रेम में स्वयं के अस्तित्व को चूर-चूर (समाप्त) कर देना चाहिए। इसी को यथार्थ में न्योछावर करना कहते हैं।

देख सुन्दर सरूप धनीय को, ले हिरदे कर हेत।

देख नैन नीके कर, सामी इसारत तोको देत॥१२॥

अपने हृदय में प्रेम भरकर तू धाम धनी के इस अति सुन्दर स्वरूप को देख। बहुत अच्छी तरह धनी के इन सुन्दर नेत्रों की ओर भी देख, जिनसे धाम धनी सामने से तुम्हें प्रेम के संकेत दे रहे हैं।

नैन रसीले रंग भरे, भौं भृकुटी बंकी अति जोर।

भाल तीखी निकसे फूटके, जो मारत खँच मरोर॥१३॥

धनी के ये नेत्र प्रेम और आनन्द से भरे हुए हैं। भृकुटी से लगी हुई इन टेढ़ी (तिरछी) भौंहों की बहुत अधिक शोभा है। जब श्री राज जी इस नेत्र रूपी धनुष से प्रेम के तीखे बाण चलाते हैं, तो वे ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को छेदकर निकल जाते हैं।

भावार्थ— दोनों भौंहों के बीच के स्थान को भृकुटी कहते हैं। दोनों भौंहें धनुष के दो किनारों का कार्य करती हैं

और भृकुटी बाणों के रखे जाने का स्थान मानी जाती है। देखने की प्रक्रिया डोरी का कार्य करती है और अक्षरातीत के तरकश रूपी हृदय से निकला हुआ प्रेम रूपी बाण आत्माओं के दिल को बींध कर अपने अधीन कर लेता है (एकाकार कर लेता है)।

हँसत सोभित हरवटी, अंग भूखन कई विवेक।

मुख बीड़ी सोभित पान की, क्यों बरनों रसना एक॥१४॥

जब श्री राज जी हँसते हैं, तो उनकी ठुड्डी की शोभा विलक्षण होती है। उस समय उनके मुखारविन्द के कई अंगों, जैसे मस्तक, आँख, और गालों, में हँसी की छाप रहती है। इतना ही नहीं मुखारविन्द के कई आभूषण भी इससे अछूते नहीं रह पाते। जब धाम धनी अपने मुख में पानों का बीड़ा चबाते हैं, तो उस शोभा का वर्णन कर

पाना मेरी इस एक जिह्वा के लिये सम्भव नहीं होता।

लाल रंग मुख अधुर, तंबोल अति सोभाए।

ए लालक हक के मुख की, मेरे मुख कही न जाए॥१५॥

धाम धनी के होंठों और मुख का रंग तो लाल है ही, किन्तु जब वे पान खाते हैं तो उस समय उनके मुखारविन्द की शोभा बहुत अधिक होती है। उस समय प्राण प्रियतम श्री राज जी के मुख की लालिमा भरे सौन्दर्य का वर्णन कर पाना मेरे मुख से सम्भव नहीं होता।

भावार्थ— यद्यपि परमधाम की वहदत में किसी वस्तु का घटना या बढ़ना सम्भव नहीं है, किन्तु सौन्दर्य-वर्णन में लीला रूप में ऐसा कहा गया है कि पान की लालिमा से उनके मुख का सौन्दर्य बढ़ जाता है। यहाँ के भावों के

आधार पर ही यह तथ्य कहा गया है।

गौर मुख अति उज्जल, और जोत अतंत।

ए क्यों रहे रूह छबि देख के, ऐसी हक सूरत॥१६॥

श्री राज जी का गौर मुख अत्यन्त उज्ज्वल है और उससे अनन्त ज्योति छिटक रही है। धाम धनी के ऐसे मनोहर रूप की शोभा को देखकर भी मेरी आत्मा इस झूठे संसार में क्यों रह रही है। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है।

अति उज्जल मुख निलवट, सुन्दर तिलक दिए।

अति सोभित है नासिका, सब अंग प्रेम पिए॥१७॥

श्री राज जी का मुखारविन्द और मस्तक अत्यन्त उज्ज्वल है। मस्तक पर अति सुन्दर तिलक लगा हुआ है।

नासिका बहुत अधिक सुशोभित हो रही है। धाम धनी के इन सभी अंगों से प्रेम का रस छलक रहा है।

निलवट चौक चारों तरफों, रंग सोभित जोत अपार।

निरख निरख नेत्र रूह के, सब अंग होए करार॥१८॥

मस्तक के चौक के चारों ओर अत्यधिक सौन्दर्य बिखरा हुआ है। उसमें से अनन्त नूरी ज्योति निकल रही है। मेरी आत्मा के नेत्र इस अलौकिक शोभा को बारम्बार देख रहे हैं, जिससे मेरे सभी अंगों में आनन्द की वर्षा हो रही है।

भावार्थ— मुख के चौक की भाँति मस्तक का भी चौक होता है। दोनों भाँहों तथा सिर के बालों के बीच का स्थान एवं इनके दायें-बायें का स्थान मिलकर मस्तक का चौक कहलाता है।

देख निलवट तिलक, मुख भौं भासत अति सुन्दर।

सब अंग दृढ़ करके, ले रूह के नैनों अन्दर॥१९॥

हे मेरी आत्मा! तू मस्तक पर लगे हुए तिलक की शोभा को देख तथा अति सुन्दर लगने वाले इस मुखारविन्द एवं भौंहों को भी देख। इन सभी अंगों की शोभा को तुम दृढ़तापूर्वक अपनी आत्मा के नेत्रों में बसा लो।

नैन निलवट बंकी छबि, अति चंचल तेज तारे।

रंग भीने अति रस भरे, बका निसबत रूह प्यारे॥२०॥

श्री राज जी के मस्तक तथा तिरछे नेत्रों की शोभा बहुत प्यारी है। पुतलियों में स्थित तारे बहुत चञ्चल और तेजोमयी हैं। आनन्द में सराबोर ये नेत्र अत्यधिक प्रेम के रस से ओत-प्रोत हैं। मेरी आत्मा को ये अत्यन्त प्यारे लगते हैं और इनसे मेरा शाश्वत (अखण्ड) सम्बन्ध है।

ए रस भरे नैन मासूक के, आसिक छोड़े क्यों कर।

कई कोट गुन कटाख्य में, रूह छोड़ी न जाए नजर॥२१॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत के नेत्र प्रेम के रस से ओत-प्रोत हैं। इनके सौन्दर्य को आत्मायें कभी भी अपने दिल से अलग नहीं कर पातीं। इनकी मद भरी नजरों (कटाक्ष) में करोड़ों गुण छिपे होते हैं। ब्रह्मसृष्टियाँ इनकी शोभा से कभी भी अपनी दृष्टि नहीं हटा पाती हैं।

भावार्थ- अपने हृदय में उमड़ने वाले प्रेममयी भावों को आशिक (प्रेमी) अपने माशूक (प्रेमास्पद) से नेत्रों के संकेतों द्वारा व्यक्त करता है, जिसे कटाक्ष करना कहते हैं। यह कटाक्ष घृणापूर्वक व्यंग्य का कटाक्ष नहीं है, अपितु हृदय में प्रवाहित होने वाले प्रेम के दरिया से माशूक को सिंचित करने की प्रक्रिया है। जब धाम धनी के दिल में अनन्त गुण हैं, तो स्वाभाविक है कि नेत्रों से

होने वाले प्रेम के संकेतों में भी वही गुण दृष्टिगोचर होंगे।
इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

जो देवें पल आड़ी मासूक, तो जानों बीच पडयो ब्रह्मांड।

रूह अन्तराए सहे ना सरूप की, ए जो दुलहा अर्स अखंड॥२२॥

यदि पल भर के लिये भी धनी से पर्दा हो जाये अर्थात् धनी का दीदार होना बन्द हो जाये, तो इस स्थिति में एक-एक पल ऐसा लगता है जैसे उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आयु ही बीत गयी हो। अखण्ड परमधाम में विराजमान श्री राज जी आत्माओं के अनन्य प्रियतम हैं। उनसे पल भर का वियोग होना भी ब्रह्मसृष्टियों के लिये असह्य है।

भावार्थ- विरह की असह्य अवस्था में समय का व्यतीत होना बहुत कठिन होता है। इस पृथ्वी लोक की आयु

चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होती है। धनी के दीदार के
 समय यदि पल भर का भी वियोग हो जाता है, तो यह
 आत्माओं के लिये सह्य नहीं होता। उन्हे लगता है जैसे
 करोड़ों-अरबों वर्ष बीत गये हैं। यह बात रास ग्रन्थ
 ४७/४, १०, ३६, ३८ में इन शब्दों में व्यक्त की गयी है-
 तम विना जे घड़ी गई, अमे जाण्यां जुग अनेक।
 ए दुःख मारो साथ जाणे, के जाणे जीव बसेक॥
 तमथी अलगो जे रहूं, ते जीव मारे न खमाय।
 एक पलक मांहे रे सखियो, कोटान कोट जुग थाय॥
 आपण रंग भर रमतां, बृख आडो आव्यो खिण एक।
 तमे प्रेमें जाण्युं कई जुग वीत्या, एम दीठां दुख अनेक॥
 एक पल मांहे रे सखियो, कलप अनेक वितीत।
 ए दुख मारो जीव जाणे, सखी प्रेम तणी ए रीत॥

नैन सुख देत जो अलेखे, मीठे मासूक के प्यारे।

मेहेर भरे सुख सागर, रूह तर न सके तारे॥२३॥

माधुर्यता के सागर अक्षरातीत के ये नेत्र कमल बहुत ही प्यारे लगते हैं। ये ब्रह्मात्माओं को अनन्त सुख देते हैं। मेहर (कृपा) से भरपूर ये नेत्र आनन्द के ऐसे सागर हैं, जिसमें ब्रह्मसृष्टियों के नेत्रों की पुतलियों में स्थित तारे तैरकर पार नहीं हो सकते।

भावार्थ- प्रियतम के नेत्रों के दीदार में इतना आनन्द मिलता है कि उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। वह आनन्द उस अनन्त महासागर के समान होता है, जिसे तैरकर पार कर पाना (थाह लगाना) आत्माओं के लिये सम्भव नहीं होता। वे उसी में डूब जाया करती हैं।

मीठे लगेँ मरोरते, मीठी पांपण लेत चौपल।

फिरत अनियारे चातुरी, मान भरे चंचल॥२४॥

धनी की पलकों में अनन्त मिठास समायी हुई है। इन पलकों के साथ श्री राज जी जब तिरछे नेत्रों को अँगनाओं की ओर घुमाते हैं, तो उन नेत्रों में छिपी हुई मिठास स्पष्टतः प्रत्यक्ष हो जाती है। इन तिरछे नेत्रों में सखियों को संकेतों से रिझाने की चतुराई छिपी है, तो प्रेम का मान भी है। प्रेम से लबालब (full to the brim) भरे होने के कारण इनमें चञ्चलता भी दृष्टिगोचर हो रही है।

बीड़ी लेत मुख हाथ सों, सोभित कोमल हाथ मुंदरी।

लेत अंगुरियां छबिसों, बलि जाऊं सबे अंगुरी॥२५॥

जब धाम धनी अपने हाथ से पान का बीड़ा मुख में

डालते हैं, तो उस समय उनके कोमल हाथों की शोभा अद्वितीय होती है। मुद्रिकाओं से युक्त अँगुलियां बहुत सुन्दर शोभा को धारण करती हैं। मैं इन सभी अँगुलियों की शोभा पर बलिहारी (न्योछावर) जाती हूँ।

बीड़ी मुख आरोगते, अधुर देखत अति लाल।

हँसत हरवटी सोभा सुन्दर, नेत्र मुख मछराल॥२६॥

जब प्रियतम अक्षरातीत अपने मुख में पान का बीड़ा आरोगते (ग्रहण करते) हैं, उस समय उनके होंठ बहुत लाल रंग के दिखायी देते हैं। जब वे हँसते हैं, तो उस समय उनकी तुड़ी, नेत्र, और आभा से परिपूर्ण मुखारविन्द की बहुत सुन्दर शोभा होती है।

अधबीच आरोगते, वचन केहेत रसाल।

नैन बान चलावत सेहेजे, छाती छेद निकसत भाल॥२७॥

पान आरोगते समय वे बीच-बीच में बहुत प्रेम भरी बातें करते हैं और अत्यन्त सहजता से नेत्रों से प्रेम के बाण चलाते हैं, जो अँगनाओं (ब्रह्मसृष्टियों) की छाती में भाले के समान चुभ जाते हैं अर्थात् सखियाँ उनके प्रेम में डूबकर एकाकार हो जाती हैं।

द्रष्टव्य- अक्षरातीत के द्वारा पान खाने का वर्णन मात्र लीला रूप में ही दर्शाया गया है, जो इस संसार के भावों के आधार पर है। नूरमयी परमधाम में पान खाने की अनिवार्यता नहीं होती।

मोरत पान रंग तंबोल, मानों झलके माहें गाल।

जो नैनों भर देखिए, रूह तबहीं बदले हाल॥२८॥

जब श्री राज जी पान चबाते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे पान का लाल रंग गालों में झलक रहा हो। यदि इस शोभा को अपने आत्मिक चक्षुओं से अच्छी तरह से देख लिया जाये, तो उसी समय आत्मा की स्थिति बदल जाती है।

भावार्थ— प्रायः दीदार के समय हकीकत की स्थिति होती है, किन्तु पान खाने के समय जैसी अलौकिक शोभा में डूब जाने पर आत्मा स्वयं के अस्तित्व को भूल जाती है और मारिफत में पहुँच जाती है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही आशय है।

यद्यपि पान खाने से शोभा का बढ़ जाना यहाँ के भावों के अनुसार है। परमधाम की वहदत में घट-बढ़ की लीला नहीं होती, किन्तु पान खाने का आधार बनाकर जैसे-जैसे हम धनी की शोभा में डूबते जायेंगे, वैसे-वैसे

उस शोभा में उत्तरोत्तर वृद्धि का अनुभव होगा। यही पान खाने से शोभा बढ़ने का भाव है।

मरकलड़े मुख बोलत, गौर हरवटी हँसत।

नैन श्रवन निलवट नासिका, मानों अंग सबे मुसकत॥२९॥

जब धाम धनी अपने मुस्कराते हुए मुख से बोलते हैं, तो ऐसा लगता है कि अति गौर वर्ण की ठुड्डी सहित उनके सभी अंगों— नेत्र, कान, मस्तक, नासिका— में भी मुस्कराहट छायी हुई है।

जोत धरत चित्त चाहती, चित्त चाही नरम लगत।

कई रंग करें चित्त चाहती, खुसबोए करत अतंत॥३०॥

श्री राज जी के आभूषणों में चित्त की इच्छानुसार नूरी ज्योति दिखायी पड़ती है। वे दिल की इच्छानुसार ही

कोमल दिखायी पड़ते हैं। इसी प्रकार उनमें कई प्रकार के रंगों का परिवर्तन तथा अनन्त सुगन्धि भी दिल की भावना के अनुसार दृष्टिगोचर होती है।

चित्त चाहे सुख देत हैं, लाल मोती कानन।

देख देख जाऊं वारने, ए जो भूखन चेतन॥३१॥

प्राण प्रियतम अक्षरातीत के कानों में जो बाले शोभा दे रहे हैं, उसमें जड़े हुए मोती तथा माणिक के नग चित्त की इच्छानुसार सभी सुख देते हैं। इन चेतन आभूषणों को देख-देखकर मैं बारम्बार बलिहारी जाती हूँ (न्योछावर होती हूँ)।

सुपन सरूप जिन बिध के, पेहेनत हैं भूखन।

सो तो अर्स में है नहीं, जो सिनगार करें बिध इन॥३२॥

इस नश्वर जगत के पञ्चभौतिक तनों में जिस प्रकार से आभूषणों को धारण करके अपना श्रृंगार किया जाता है, वैसा परमधाम में नहीं होता है।

नए सिनगार जो कीजिए, उतारिए पुरातन।

नया पुराना पेहेन उतारना, ए होत सुपन के तन॥३३॥

पहले के धारण किये हुए वस्त्रों और आभूषणों को उतारकर ही नया श्रृंगार किया जा सकता है। यह कार्य मात्र इस पृथ्वी लोक के पञ्चभौतिक तनों में ही होता है, जिनमें नये वस्त्र-आभूषण पहनने से पहले पुराने वस्त्रों एवं आभूषणों को उतारना पड़ता है।

ए बारीक बातें अर्स की, सो जानें अरवा अरसै के।

नया पुराना घट बढ़, सो कबूँ न अर्स में ए॥३४॥

परमधाम की ये रहस्यमयी बातें हैं, जिन्हें यथार्थ रूप से मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं। परमधाम में यह कदापि सम्भव नहीं है कि कोई वस्तु पुरानी हो जाये और उसकी जगह नयी वस्तु प्रयोग में लायी जाये, या किसी वस्तु की कमी हो जाये और कोई वस्तु बढ़ जाये।

भावार्थ- परब्रह्म का स्वरूप सर्वदा एकरस होता है। उसमें हास-वृद्धि, नया-पुराना, कम-अधिक, या लौकिक सुख-दुःख जैसे विकार नहीं होते।

अर्स में सदा एक रस, करें पल में कोट सिनगार।

चित्त चाहे अंगों सब देखत, नया पेहेन्या न जूना उतार॥३५॥

परमधाम में सर्वदा एकरस स्थिति होती है। वहाँ एक ही पल में करोड़ों प्रकार के श्रृंगार बदल जाते हैं। न तो वहाँ कोई नया श्रृंगार पहनना पड़ता है और न पुराना उतारना

पड़ता है। दिल की इच्छानुसार सभी अंगों में वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा दिखायी पड़ती है।

ज्यों अंग त्यों वस्तर भूखन, करें कोट रंग चित्त चाहे।

अर्स जूना न कबूं कोई रंग, देखत पल में नित नए॥३६॥

श्री राज जी के अंगों की तरह वस्त्र एवं आभूषण भी चेतन तथा नूरमयी हैं। दिल की इच्छानुसार वे करोड़ों रंग धारण कर लेते हैं। परमधाम में कोई भी रंग पुराना नहीं होता, बल्कि हमेशा ही हर पल नये-नये रूप में दिखायी पड़ता है।

देत खुसबोए खुसाली, श्रवनों अति सुन्दर।

बात सुनत मेरी रीझत, सुख पावत रूह अन्दर॥३७॥

श्री राज जी के कानों में अति सुन्दर आभूषण (कर्णफूल

और बाला) जगमगा रहे हैं, जिनसे सुगन्धि और आनन्द का रस फैल रहा है। धनी के कान मेरी बातों को सुनकर रीझ जाते हैं, जिससे मेरी आत्मा अपने दिल में बहुत आनन्द का अनुभव करती है।

जो अटकों इन अंग में, तो जाए न सकों छोड़ कित।

गुझ गुन कई श्रवन के, रूह इतहीं होवे गलित॥३८॥

यदि मैं इन कानों की इस अलौकिक शोभा में ही अटक जाऊँ, तो इन्हें छोड़कर और कहीं न जा सकूँगी अर्थात् अन्य किसी अंग की शोभा नहीं देख पाऊँगी। कानों में कई रहस्यमयी गुण छिपे हैं, इसलिये मेरी आत्मा इनकी शोभा में गलतान हो जाती है।

भावार्थ— आशिक (प्रेमी) की प्रेम भरी बातें कानों के माध्यम से ही माशूक (प्रेमास्पद) तक पहुँचती है,

जिसके कारण वह अपने प्रेम की सुराही का रस आशिक के दिल में डाल देता है। यही कानों का विशिष्ट गुण है। ऐसे अनेक (असंख्य) गुण धनी के कानों में हैं, जिनसे आत्माओं को आनन्द मिलता है।

जामा अंग जवेर का, भूखन नंग कई रंग।

जोत पोहोंचे आकास में, जाए करत मिनो मिने जंग॥३९॥

धाम धनी ने जो जामा धारण कर रखा है, वह नूरमयी जवाहरातों से जड़ा हुआ है। इसके ऊपर शोभायमान होने वाले आभूषणों में अनेक रंगों के नंग जड़े हुए हैं। इनसे निकलने वाली ज्योतियाँ आकाश में फैल रही हैं और आपस में टकराकर युद्ध करती हुई प्रतीत हो रही हैं।

याही विध जामा पटुका, याही विध पाग वस्तर।

करें चित्त चाहे अंग रोसनी, अनेक जोत अंग धर॥४०॥

इसी प्रकार जामे के ऊपर कमर में बन्धे हुए पटुके की शोभा है। सिर के ऊपर बन्धी हुई पाग एवं अन्य वस्त्र भी इसी प्रकार की अलौकिक छवि से युक्त हैं। दिल की इच्छानुसार ये सभी वस्त्र अंग-अंग में अनेक प्रकार की ज्योतियों की आभा फैला रहे हैं।

जामा पटुका चोली बांहें की, चीन मोहोरी बन्ध बगल।

ए आसिक अंग देख के, आगूं नजर न सके चल॥४१॥

श्री राज जी का जामा, उस पर बन्धा हुए पटुका, जामे के वक्षस्थल वाले भाग (चोली), मोहोरी में आयी हुई चुन्नटें, तथा बगलबन्ध की शोभा अनुपम है। जब इनकी शोभा को आत्मायें देखती हैं, तो उनकी दृष्टि इन्हें

छोड़कर आगे नहीं जा पाती।

भावार्थ- वक्षस्थल की दायीं ओर बगल में तीन स्थानों पर तनियों (छोटी-छोटी डोरियों) के द्वारा गाँठ बाँधी जाती है, इन्हें बगलबन्ध कहते हैं। आधुनिक समय में तनियों के स्थान पर बटनों का प्रयोग होता है।

चोली अंग को लग रही, हार लटके अंग हलत।

तले हार बीच दुगदुगी, नेहेरे लेहेरें जोत चलत॥४२॥

जामें की चोली वक्षस्थल से चिपकी हुई है। गले से वक्ष पर आये हुए हार हिल रहे हैं। हारों के नीचे बीच वाले हिस्से में दुगदुगी आयी है। इनसे ज्योति की लहरें इस प्रकार निकलती हैं, जैसे पानी की नहरें बह रही हों।

बगलों बेली फूल खभे, गिरवान बेली जर।

पीछे कटाव जो कोतकी, रूह छोड़ न सके क्योंकर॥४३॥

जामे में कन्धों से नीचे की ओर दोनों बगलों में लताओं तथा फूलों के मनोरम चित्र बने हुए हैं। इसी प्रकार गले वाले भाग में भी सोने की तारों (जरी) से लताओं के चित्र बने हैं। पीठ वाले भाग में जो कढ़ाईदार कोतकी (भरत) बनी है, उसे देख लेने पर आत्मा की दृष्टि उससे हटती ही नहीं है।

कहें हार हम हैड़े पर, अति बिराजे अंग लाग।

सुख देत हक सूरत को, ए कौन हमारो भाग॥४४॥

हार कहते हैं कि हमारा कितना बड़ा सौभाग्य है, जो हम धाम धनी के वक्षस्थल से लगकर विराजमान हैं। हम अपनी सुन्दरता से प्रियतम अक्षरातीत को रिझाते हैं और

उन्हे प्रेम का सुख देते हैं।

भावार्थ- आत्म-स्वरूप होने से यदि हार भी श्री राज जी को रिझाते हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। परमधाम का कण-कण अक्षरातीत का आशिक है। आशिक अपने माशूक को इश्क का सुख देता ही है। यही कारण है कि हार कहते हैं कि हम अपने प्राण प्रियतम को रिझाकर प्रेम का सुख देते हैं।

कण्ठ हार नंग सब चेतन, देख सोभा सब चढ़ती देत।

ए सुख रूह सो जानहीं, जो सामी हक इसारत लेत॥४५॥

धाम धनी के गले में जो हार आये हैं, उनमें जड़े हुए सभी नग चेतन हैं। वे श्री राज जी की अद्वितीय शोभा को देखकर अपनी शोभा में वृद्धि कर लेते हैं, ताकि अपने माशूक श्री राज जी को अच्छी तरह से रिझा सकें। प्रेम

के इस सुख को वही आत्मा जान पाती है, जो अपने सम्मुख विराजमान प्राण प्रियतम के प्रेम-संकेतों को समझ जाती है।

ए जंग रूह देख्या चाहे, मिल जोतें जोत लरत।

कई नंग रंग अवकास में, मिनों मिने जंग करत॥४६॥

श्री राज जी के हारों से निकली हुई ज्योतियाँ आपस में एक-दूसरे से टकराकर युद्ध करती हुई प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार अनेक रंग के नगों से जो ज्योतियाँ निकल रही हैं, वे भी आपस में युद्ध करती हैं। मेरी आत्मा के अन्दर यह इच्छा हो रही है कि मैं इस अलौकिक युद्ध को देखती ही रहूँ।

जोत अति जवेरन की, बांहों पर बाजू बन्ध।

जात चली जोत चीर के, कई विध ऐसी सनन्ध॥४७॥

दोनों बाँहों पर बाजूबन्ध आये हैं। उनमें जड़े हुए जवाहरातों की ज्योति बहुत अधिक है। जवाहरातों के नगों की ज्योति आकाश को चीरते हुए चारों ओर फैल रही है। बाजूबन्ध में इस प्रकार की अनेक शोभा है।

हाथ काड़ों कड़ी पोहोंचियां, जानों ए जोत इनथें अतन्त।

जोत सागर आकास में, कोई सके ना इत अटकत॥४८॥

दोनों हाथों में कड़ा , कड़ी, और पोहोंची सुशोभित हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे इनकी ज्योति पूर्व वर्णित ज्योतियों से बहुत अधिक है। इनसे निकलने वाली ज्योति आकाश में सागर के समान दिखायी देती है। इन आभूषणों से उठने वाली ज्योति कहीं भी

अटकती नहीं है, बल्कि सीधे आकाश में चली जाती है।

भावार्थ- चूड़ और चूड़ी में जो अन्तर होता है, वही अन्तर कड़ा और कड़ी में होता है अर्थात् कड़ा कुछ मोटा होता है और कड़ी पतली होती है।

बाजू बन्ध पोहोंची कड़ी, ए भूखन सोभा अपार।

नरम हाथ लीकें हथेलियां, क्यों आवे सोभा सुमार॥४९॥

हाथों में धारण किये जाने वाले आभूषण हैं— बाजूबन्ध, पोहोंची, और कड़ी। इनकी शोभा अनन्त हैं। कोमल हाथों की हथेलियों की लकीरें इतनी सुन्दर हैं कि उनकी शोभा को किसी भी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

जुदे जुदे रंगों जोत चले, ए जो नंग हाथ मुंदरी।

ए तेज लेहेरें कई उठत हैं, ज्यों ज्यों चलवन करें अंगुरी॥५०॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत के हाथों की अँगुलियों में जो मुद्रिकायें आयी हैं, उनमें जड़े हुए नगों से अनेक रंग की ज्योतियाँ निकल रही हैं। जैसे-जैसे धाम धनी अपनी अँगुलियों को हिलाते हैं (चलाते हैं), वैसे-वैसे मुद्रिकाओं से तेज की बहुत सी लहरें उठने लगती हैं।

क्यों कहूं जोत नखन की, ए सबथें अति जोर।

जानों तेज सागर अवकास में, सबको निकसे फोर॥५१॥

नखों की ज्योति का मैं कैसे वर्णन करूँ। इनकी ज्योति तो सबसे अधिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि नखों की ज्योति पूर्व की सभी ज्योतियों को फोड़कर ऊपर निकल गयी है और आकाश में तेज के सागर के रूप में दिखायी दे रही है।

रंग देखूं के सलूकी, छबि देखूं के नरम उज्जल।

जो होए कछुए इस्क, तो इतथें न निकसे दिल॥५२॥

मैं यह निर्णय नहीं कर पा रही हूँ कि मैं पहले क्या देखूँ— श्री राज जी की अँगुलियों के अति उज्ज्वल रंग को देखूँ या अति कोमल सौन्दर्य की शोभा को देखूँ। जिसके अन्दर थोड़ा भी इश्क (प्रेम) होगा, वह अँगुलियों की इस अनुपम शोभा से अपना दिल नहीं हटा सकेगा।

कैसी नरम अंगुरियां पतली, देख सलूकी तेज।

आसमान रोसनी पोहोंचाए के, मानों सूर जिमी भरी रेजा रेज॥५३॥

ये पतली-पतली अँगुलियां कितनी कोमल हैं। हे मेरी आत्मा! तू जरा इनके तेजोमयी सौन्दर्य को तो देख। इनसे निकलने वाली नूरी ज्योति आकाश में इतना प्रकाश कर रही है, जैसे धरती के एक-एक कण में सूर्य

विराजमान हो गये हैं।

जो जोत समूह सरूप की, सो नैनों में न समाए।

जो रूह नैनों में न समावहीं, सो जुबां कह्यो क्यों जाए॥५४॥

श्री राज जी के नख से शिख तक के इस सम्पूर्ण स्वरूप से उठने वाली ज्योति अनन्त है। वह पूर्ण रूप से आत्मा की दृष्टि में आ नहीं पाती। जो शोभा आत्मा के नैनों में ही न आ पाये, उसे इस जिह्वा से कैसे व्यक्त किया जा सकता है।

यों वस्तर भूखन अंग चेतन, सब लेत आसिक जवाब।

केहे सब का लेऊं पड़-उत्तर, ए नहीं रूह मिने ख्वाब॥५५॥

इस प्रकार श्री राज जी के अंगों में सुशोभित होने वाले सभी वस्त्र और आभूषण चेतन हैं। ये सभी वस्त्र और

आभूषण आत्मा (आशिक) से अपने प्रश्नों का उत्तर लेते हैं। इसी प्रकार आत्मा कहती है कि मैंने तो उत्तर दे दिया है, अब मुझे भी अपने प्रश्नों का उत्तर लेना है। इस प्रकार की वार्ता वाली प्रेममयी लीला परात्म से नहीं, बल्कि स्वप्न के ब्रह्माण्ड में आयी आत्मा के साथ हो रही है।

भावार्थ- अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाने पर दिये जाने वाले उत्तर को "पड़-उत्तर" (प्रत्युत्तर) कहते हैं। परिक्रमा ३/१२०-१२१ में यह प्रसंग वर्णित है कि जब सखियाँ वनों में जाती हैं, तो पाँचवी भूमिका के प्रवाली मन्दिर में होने वाली प्रेम लीला की एक-दूसरे से चर्चा करती हैं। ठीक यही स्थिति यहाँ पर भी है। जब आत्मा धनी के नख से शिख तक के श्रृंगार को देखती है, तो उन आत्म-स्वरूप वस्त्र-आभूषणों से वैसे ही वार्ता करती है, जैसे अन्य सखियों से करती है। उसकी संक्षिप्त

झाँकी इस प्रकार हो सकती है—

"हृदय कमल से लिपटे हुए हारों! यह तुम्हारा कितना बड़ा सौभाग्य है, जो तुम प्रियतम के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम के सागर का पल-पल रसपान करते हो।

"बुलाक में लटकने वाले माणिक तथा मोती के नगों! तुमसे अधिक भाग्यशाली तो और कोई होगा ही नहीं, क्योंकि तुम तो दिन-रात धाम धनी के अधरामृत का पान करते हो।

"कानों में जड़े हुए कर्णफूल और बालों! तुम तो मेरे प्राण प्रियतम के गालों के सौन्दर्य की रसमाधुरी में निरन्तर डूबे रहते हो। इससे बड़ी चीज और क्या होगी।

"अति मनोहर पाग और दुगदुगी! मेरे प्राणवल्लभ के सिर पर विराजमान रहने का सौभाग्य मात्र तुम्हें ही प्राप्त है। इससे बड़ा सौभाग्य और कोई नहीं।

"चरणों में शोभायमान झांझरी , घूंघरी, कांबी, और कड़ी! धनी के सच्चे आशिक (प्रेमी) तो तुम हो, जो एक पल भी दूर नहीं होते।"

अब वस्त्र-आभूषणों की ओर से उत्तर दिया जाता है—
 "हे आत्मा! हमारा और आपका स्वरूप तो एक ही है। हमें धनी का जो प्रेम मिल रहा है, वही आप अपने नेत्रों से प्राप्त करती हैं। इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा कि वे स्वयं आपके दिल में बैठे हैं और अपने प्रेम का दरिया (समुद्र) ही आपके अन्दर उड़ेल रहे हैं।"

रद बदल भूखन सों, और करे वस्तरों सों।

और अंग लग जाए ना सके, फारग न होए इनमों॥५६॥

आत्मा जब वस्त्रों और आभूषणों से वार्ता कर रही होती है, उस समय उसकी नजर अन्य किसी अंग पर नहीं जा

पाती, क्योंकि इस प्रेम भरी वार्ता से उसे अवकाश ही नहीं मिल पाता।

ए वस्तर भूखन हक के, सो सारे ही चेतन।

सब जवाब लिया चाहिए, आसिक एही लछन॥५७॥

धाम धनी के अंगों में सुशोभित होने वाले ये सभी वस्त्र और आभूषण चेतन हैं। ब्रह्मसृष्टि का यही लक्षण है कि वह धनी का दीदार करे और वस्त्रों एवं आभूषणों से वार्तालाप द्वारा अपने प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करे।

द्रष्टव्य— इस चौपाई से चितवनि की महत्ता प्रतिप्रादित होती है। सुन्दरसाथ कहलाने की सार्थकता इसी में है कि हम इस कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध करें।

आसिक रूह जित अटकी, अंग भूखन या वस्तर।

यासों लगी गुफ्तगोए में, सो छूटे नहीं क्योंए कर॥५८॥

धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली आत्मा की दृष्टि जिस किसी अंग, वस्त्र, या आभूषण में अटक (लग) जाती है, उसी से बातचीत करने लग जाती है। वह किसी प्रकार से इनसे अलग नहीं हो पाती।

इस्क बसे सब अंग में, सब बिध देत हैं सुख।

कई सुख हर एक अंग में, सो कह्यो न जाए या मुख॥५९॥

श्री राज जी के सभी अंगों में इश्क ही इश्क बसा हुआ है, इसलिये सभी अंग हर प्रकार से प्रेम का सुख देते हैं। प्रत्येक अंग में अनेक प्रकार के सुख विद्यमान हैं, जिनका इस मुख से वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

भावार्थ— प्रत्येक इन्द्रिय में सभी इन्द्रियों के गुण होने से

सभी प्रकार के सुख निहित होते हैं। उदाहरण के लिये आँखों से केवल देखने का ही सुख नहीं है, बल्कि इससे स्पर्श, रस, श्रवण, तथा सूँघने का सुख भी प्राप्त होता है।

प्रेम लिए सोभा गुन, सब सुख देत पूरन।

या वस्तर या भूखन, सुख जाहेर या बातन॥६०॥

चाहे वस्त्र हो या आभूषण, सबमें प्रेम और शोभा का गुण छिपा हुआ है। ये हर प्रकार का पूर्ण सुख देते हैं, चाहे वह जाहिरी (बाह्य) हो या बातिनी (आन्तरिक) हो।

भावार्थ— आत्मा की आँखों से सौन्दर्य को देखना बाह्य (जाहिरी) सुख है, जबकि उस शोभा में डूबकर धनी के दिल से एकाकार हो जाना आन्तरिक (बातिनी) सुख है। इसी प्रकार वस्त्र और आभूषणों से भी दोनों प्रकार के

सुख प्राप्त होते हैं, क्योंकि ये आत्म-स्वरूप हैं।

सुख इस्क हक जात के, तिनसे अंग सुखदाए।

बाहेर सुख सब अंग में, ए सुख जुबां कह्यो न जाए॥६१॥

इश्क ही श्री राजश्यामा जी और सखियों का सुख है। इनके रोम-रोम में इश्क भरा है, जिससे इनके सभी अंग आनन्द के स्वरूप हैं। परमधाम के पच्चीस पक्षों में जो आनन्द दिखायी पड़ रहा है, वह सम्पूर्ण आनन्द इनके अंग-अंग में विद्यमान है। इस सुख (आनन्द) का वर्णन इस जिह्वा से नहीं किया जा सकता।

अंग वस्तर या भूखन, सब सुख दिया चाहे।

कई सुख जाहेर कई बातन, सब मिल प्रेम पिलाए॥६२॥

श्री राज जी के सभी अंग, वस्त्र, और आभूषण

आत्माओं को सभी प्रकार का सुख देना चाहते हैं। इन सुखों में कई सुख जाहिरी होते हैं और कई सुख बातिनी होते हैं। इस प्रकार सभी अंग, वस्त्र, और आभूषण सखियों को प्रेम का रसपान कराते हैं।

भावार्थ- प्रेम का रस ही आनन्द है। श्री राज जी के वस्त्रों, आभूषणों, एवं अंग-अंग में अनन्त सौन्दर्य भरा हुआ है, जिसमें डूबकर आत्मायें आनन्द में मग्न हो जाती हैं। इसे ही प्रेम का रस पिलाना कहते हैं। इस चौपाई के चौथे चरण का यही भाव है।

इस्क देवें लेवें इस्क, और ऊपर देखावें इस्क।

अर्स इस्क जरे जरा, ए जो सूरत इस्क अंग हक॥६३॥

श्री राज जी लीला रूप में अपना इश्क श्यामा जी तथा सखियों को देते हैं और उनसे इश्क लेते हैं। अपनी बाह्य

लीलाओं से वे इश्क को ही दर्शाते हैं। परमधाम के कण-कण में इश्क भरा हुआ है। धाम धनी के सभी अंगों सहित सम्पूर्ण स्वरूप में इश्क ही इश्क (प्रेम ही प्रेम) भरा हुआ है।

भावार्थ- प्रेम लीला में प्रेम का आदान-प्रदान अवश्य होता है, इसलिये श्री राज जी को प्रेम लेने वाला तथा देने वाला कहा गया है। परमधाम की हकीकत में सभी एक-दूसरे के आशिक भी हैं और माशूक भी हैं। यही कारण है कि इश्क लेने और देने की लीला सभी के साथ होती है। नेत्रों के इशारे देना, जल में झीलना करना, तथा श्री इन्द्रावती जी के मुख में मेवा डालना लीला द्वारा प्रेम को दर्शाना है। इस चौपाई के दूसरे चरण का यही भाव है।

एक अंग जिन देख्या होए, सो पल रहे न देखे बिगर।

हुई बेसकी इन सरूप की, रूह अंग न्यारी रहे क्यों कर॥६४॥

जिस आत्मा ने धाम धनी के एक अंग की शोभा भी देख ली होती है, उसे पुनः देखे बिना वह एक पल भी नहीं रह सकती। धनी के उस स्वरूप का साक्षात्कार कर लेने के पश्चात् जब वह संशय रहित हो जाती है, तो भला उससे अलग रहने का प्रश्न ही कहाँ होता है।

सब अंग दिल में आवते, बेसक आवत सूरत।

हाए हाए रूह रहेत इत क्यों कर, आए बेसक ए निसबत॥६५॥

जब आत्मा के दिल में धाम धनी के सभी अंगों की शोभा बस जाती है, तो निश्चित रूप से मुखारविन्द सहित सम्पूर्ण स्वरूप दिल में आ जाता है। धाम धनी से इस प्रकार का सम्बन्ध हो जाने पर अर्थात् हृदय में प्रियतम

अक्षरातीत की शोभा के बस जाने पर भी आत्मा, हाय!
हाय! इस झूठे संसार में कैसे रह पाती है। यह बहुत ही
आश्चर्य की बात है।

चारों जोड़े चरन के, ए जो अर्स भूखन।

ए लिए हिरदे मिने, आवत सरूप पूरन॥६६॥

धाम धनी के दोनों चरणों में ये चार आभूषण झांझरी ,
घुंघरी, कांबी, और कड़ली (कड़ी) विराजमान हैं।
परमधाम के इन आभूषणों सहित दोनों चरण कमलों की
शोभा जब दिल में बस जाती है, तो प्रियतम अक्षरातीत
का नख से शिख तक का सम्पूर्ण स्वरूप भी दिल में आ
जाता है।

भावार्थ— इस चौपाई के कथन को चितवनि का मूल
सूत्र समझना चाहिए। धनी के मुखारविन्द की शोभा को

आत्मसात् करने के लिये सर्वप्रथम चरण कमलों की शोभा को अपने हृदय में बसाना चाहिए।

जो सोभावत इन चरन को, ए भूखन सब चेतन।

अनेक गुन याके जाहेर, और अलेखे बातन॥६७॥

जो आभूषण धनी के चरणों में शोभा देते हैं, वे सभी चेतन हैं। इनमें बाह्य और आन्तरिक ऐसे बहुत से गुण हैं, जिन्हें इस जिह्वा से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

नंग नरम जोत अतंत, और अतंत खुसबोए।

ए भूखन चरनों सोभित, बानी चित्त चाही बोलत सोए॥६८॥

चरणों में सुशोभित होने वाले इन आभूषणों के नग कोमल हैं। इनमें अनन्त ज्योति और सुगन्धि भी भरी हुई है। ये आभूषण दिल की इच्छानुसार अति मधुर वाणी

बोलते हैं।

गौर चरन अति सोभित, और सिनगार भूखन सोभित।

ए अंग संग न्यारे न कबहूँ, अति बारीक समझन इत॥६९॥

धाम धनी के चरणों का रंग बहुत ही गोरा है। इनकी शोभा भी बहुत अधिक है। चरणों के श्रृंगार में प्रयुक्त होने वाले आभूषण अलौकिक शोभा को धारण कर रहे हैं। ये आभूषण हमेशा चरणों के साथ-साथ (अंग-संग) रहते हैं, कभी भी अलग नहीं हो सकते। यह बहुत ही रहस्यमयी सूक्ष्म बात है, जो समझने योग्य है।

भावार्थ- परमधाम का प्रत्येक पदार्थ ब्रह्मस्वरूप है। उसका एक कण भी कभी अलग नहीं हो सकता। आभूषण भी आत्म-स्वरूप हैं। वे भी अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को प्रेम से रिझाते हैं। ऐसी स्थिति में अलग

होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

एही ठौर आसिकन की, अर्स की जो अरवाहें।

सो चरन तली छोड़ें नहीं, पड़ी रहें तले पाए॥७०॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हमेशा धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली हैं। उनका निवास (ठिकाना) इन चरणों में ही है। वे इन चरणों की छत्रछाया में ही रहती हैं और इन चरणों की तलियों की शोभा से एक पल के लिये भी कभी अलग नहीं होती हैं।

भावार्थ— परमधाम में एकदिली होने से सभी का स्वरूप एक है और सभी एक-दूसरे के आशिक हैं। इस खेल में अक्षरातीत की गरिमा और सम्प्रभुता (बादशाही) को दर्शाया जा रहा है, इसलिये चरणों में पड़े रहने का भाव इस खेल में ही है, परमधाम में नहीं। चरणों की शोभा के

ध्यान में डूबे रहना एवं उनके आदेश (हुक्म) में बन्धे रहना ही चरणों में पड़े रहना है।

अर्स रूहें आसिक इनकी, जिन पायो पूरन दाव।

ठौर ना और रूहन को, जाको लगे कलेजे घाव॥७१॥

परमधाम की आत्मायें हमेशा धनी के इन चरणों के प्रेम में डूबी रहने वाली हैं। इस खेल में, धनी को रिझाने के लिये उन्हें यह सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ है। ब्रह्मवाणी से जिनके हृदय में चोट लग जाती है, उन्हें धनी के चरणों के अतिरिक्त ऐसा अन्य कोई स्थान नहीं दिखता जहाँ उन्हें शाश्वत प्रेम और आनन्द मिल सके।

भावार्थ— कलेजे में चोट लगने का तात्पर्य है— ब्रह्मवाणी से संसार की नश्वरता का बोध होना और अपने मूल सम्बन्ध की वास्तविक पहचान हो जाना, जिसके कारण

धनी के चरणों के बिना एक पल भी संसार में रहना
अच्छा नहीं लगता।

कई रंग नंग वस्तर भूखन, चढ़ी आकास जोत लेहेर।
जो जोत नख चरन की, मानों चीर निकसी नेहेर॥७२॥
वस्त्रों एवं आभूषणों में कई रंगों के नग जड़े हुए हैं ,
जिनसे निकलने वाली ज्योति की लहरें आकाश में फैल
(चढ़) रही हैं। चरण के नखों से उठने वाली ज्योति तो
आकाश को चीरते हुए इस प्रकार गमन कर रही है, जैसे
जल की नहर।

केहेती हों इन जुबांन सों, और सुपन श्रवन नजर।
जो नजरोँ सूरज ख्वाब के, सो सिफत पोहोंचे क्यों कर॥७३॥
यहाँ के कानों से सुने हुए और आँखों से देखे हुए पदार्थों

की उपमा देकर, यहाँ की जिह्वा से, मैं धाम धनी की इस अद्वितीय शोभा का वर्णन कर रही हूँ। इन आँखों से जो स्वप्न के ब्रह्माण्ड का यह सूर्य दिखायी दे रहा है, इसकी उपमा देकर श्री राज जी की जिस शोभा का वर्णन करने का प्रयास किया गया है, वह वास्तविक वर्णन नहीं हो सकता।

कट चीन झलके दावन, बैठ गई अंग पर।

कई रंग नंग इजार में, सो आवत जाहेर नजर॥७४॥

कमर में इजार बन्धी हुई है, जिसकी चुन्नटें जामे के दामन के नीचे झलक रही हैं। इजार में अनेक रंग के नग जड़े हुए हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से देखने में नजर आ रहे हैं।

और भूखन जो चरन के, सो अति धरत हैं जोत।

नरम खुसबोए स्वर माधुरी, आसमान जिमी उद्योत॥७५॥

चरणों के आभूषण अत्यन्त कोमल, सुगन्धि से भरपूर, और मधुर ध्वनि (स्वर) करने वाले हैं। इनमें बहुत अधिक नूरी ज्योति विद्यमान है, जिसका दिव्य प्रकाश धरती से लेकर आकाश तक फैला हुआ है।

पाउं तली नरम उज्जल, लीकें एड़ी लांक लाल।

ए रूह आसिक से क्यों छूटहीं, ए कदम नूर जमाल॥७६॥

चरण की तलियाँ बहुत कोमल और उज्ज्वल हैं। एड़ियों के नीचे की गहराई (तलियों) में आयी हुई लाल रंग की रेखायें अति सुन्दर हैं। प्राणवल्लभ अक्षरातीत के ये नूरी चरण कमल भला परमधाम की उस ब्रह्मसृष्टि से कैसे छूट सकते हैं, जो पल-पल उन्हीं के प्रेम में डूबी रहती

है।

तली हथेली हाथ पांउं की, लाल अति उज्जल।

और बीसों अंगुरियां नरम पतली, नख नरम निरमल॥७७॥

चरण की तलियाँ तथा हाथ की हथेलियाँ बहुत अधिक लालिमा लिये हुए उज्ज्वल रंग की हैं। चरणों तथा हाथों की सभी बीसों अँगुलियां अति कोमल और पतली हैं। नाखून कोमल तथा बहुत ही स्वच्छ हैं।

काड़े कोमल हाथ पांउं के, फने पीड़ी अंग माफक।

उज्जल अति सोभा लिए, ए सूरत सोभा नित हक॥७८॥

जिस प्रकार हाथों और पैरों की पिण्डलियाँ तथा पँजे कोमल हैं, उसी प्रकार इनमें आये हुए कड़े भी अति कोमल हैं। अक्षरातीत की यह अखण्ड शोभा अत्यधिक

उज्ज्वलता लिये हुए अनुपम सौन्दर्य से युक्त है।

भावार्थ- हाथों में कलाई से कुहनी तक और पैरों में एड़ी से घुटने के बीच का हिस्सा पिण्डली कहलाता है। कड़े की शोभा हाथ और पैर दोनों में ही आयी है।

रंग रस इंद्री नौतन, चढ़ता अंग नौतन।

तेज जोत सोभा नौतन, नौतन चढ़ता जोवन॥७९॥

धाम धनी की इन्द्रियों में प्रेम और आनन्द हमेशा ही नूतन (नवीन) अवस्था में दिखायी देते हैं। सभी अंग नित्य ही विकसित स्थिति में दृष्टिगोचर होते हैं। वस्त्र – आभूषणों सहित इन अंगों की तेज, ज्योति, और शोभा सर्वदा नवीन दिखायी पड़ती है। चढ़ता हुआ यौवन पल-पल नया दिखता है।

भावार्थ- विकसित होने का भाव यह कदापि नहीं लेना

चाहिए कि उसमें कुछ कमी थी, जिसका विकास हो रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि सभी अंगों में नित्य ही नवीन ताजगी दिखायी देती है। इसकी उपमा फूल के खिलने से कर सकते हैं। संस्कृत में इसका यही अभिप्राय होता है।

छब फब मुख सनकूल, चढ़ती कला देखाए।

कायम अंग अर्स के, सब चढ़ता नजरों आए॥८०॥

श्री राज जी के मुख की शोभा, सुन्दरता, तथा प्रसन्नता पल-पल चढ़ती (खिली हुई, विकसित) अवस्था में दिखायी देती है। परमधाम के ये अखण्ड अंग हैं, इसलिये सभी नित्य नूतन स्वरूप में ही दृष्टिगोचर होते हैं।

ए अंग सब अर्स के, अर्स वस्तर भूखन।

अर्स जरे जवेर को, सिफत न पोहोंचे सुकन॥८१॥

प्रियतम परब्रह्म के ये सभी अंग तथा वस्त्र और आभूषण परमधाम के हैं। वहाँ के जवाहरात तो क्या, एक कण की शोभा का वर्णन करने का सामर्थ्य भी यहाँ के शब्दों में नहीं है।

सब अंग इस्क के, गुन अंग इन्द्री इस्क।

सब्द न पोहोंचे सिफत, इन बिध सूरत हक॥८२॥

श्री राज जी के सभी बाह्य अंग इश्कमयी (प्रेममयी) हैं। उनके गुण (सत्, चित् और आनन्द), आन्तरिक अंग (अन्तःकरण), एवं इन्द्रियाँ भी इश्कमयी हैं। धाम धनी की शोभा ही कुछ इस प्रकार की है कि उनके सौन्दर्य की महिमा का वर्णन करने में यहाँ के शब्द पूर्णतया असमर्थ

हैं।

भावार्थ- प्रकृति के तीन गुण होते हैं- सत्, रज, तथा तम। इसी प्रकार परब्रह्म में मुख्यतः तीन गुण होते हैं- सत्, चित, और आनन्द। अन्तःकरण (दिल, हृदय) ही आन्तरिक अंग है, जबकि पहले चरण में स्थूल अंगों को ही बाह्य अंग कहा गया है, जिनमें वस्त्र एवं आभूषण धारण किये जाते हैं।

केहे केहे दिल जो केहेत है, तार्थें अधिक अधिक अधिक।

सोभा इस्क बका तन की, ए मैं केहे न सकों रंचक॥८३॥

मेरा दिल धनी की शोभा का बार-बार जितना वर्णन करता है, उतना ही ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे शोभा तो इससे बहुत अधिक (अनन्त) है। यह शोभा प्रेम से भरपूर अक्षरातीत के अखण्ड तन की है, इसलिये मैं

थोड़ी सी शोभा का भी वर्णन नहीं कर पा रही हूँ।

अब लग जानती अर्स के, हेम नंग लेत मिलाए।

पैदास भूखन इन विध, वे पेहेनत हैं चित्त चाहे॥८४॥

अब तक मैं यही जानती थी कि जिस प्रकार इस संसार में सोने में नगों को जोड़कर आभूषण बनाये जाते हैं , उसी प्रकार परमधाम में भी होता है, किन्तु धनी की मेहर से अब यह स्पष्ट हो गया है कि निजधाम में कोई भी चीज बनती नहीं है, बल्कि दिल की इच्छा मात्र से अंगों में आभूषण दिखायी देने लगते हैं।

एक ले दूजा मिलावहीं, तब तो घट बढ़ होए।

सो तो अर्स में है नहीं, वाहेदत में नहीं दोए॥८५॥

जब एक वस्तु में कोई दूसरी वस्तु मिलायी जाती है,

तब तो घट-बढ़ होता है, जबकि परमधाम में घटने या बढ़ने जैसी कोई बात ही नहीं है। वहदत में एक अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य कोई होता ही नहीं है।

भावार्थ- परमधाम में अक्षरातीत का दिल ही सभी रूपों में लीला कर रहा है, इसलिये अलग-अलग वस्तुओं का अस्तित्व मानकर उन्हें बढ़ाने या घटाने की बात सोची भी नहीं जा सकती। वहाँ किसी नयी वस्तु की रचना होना सम्भव ही नहीं है।

घड़े जड़े न समारे, ना सांध मिलाई किन।

दिल चाहे नंगों के असल, वस्तर या भूखन॥८६॥

परमधाम के इन आभूषणों को न तो किसी ने बनाया है, न किसी ने इनमें नगों को जड़ा है, और तो और किसी ने इन्हें सुसज्जित (श्रृंगारित) भी नहीं किया है। यहाँ तक कि

किसी ने इनमें कोई वस्तु मिलायी भी नहीं है। वास्तव में नगों से सुशोभित ये सभी वस्त्र और आभूषण दिल की इच्छानुसार ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

ना पेहेन्या ना उतारिया, दिल चाह्या सब होत।

जब जित जैसा चाहिए, सो उत आगूं बन्या ले जोत॥८७॥

परमधाम में कोई भी वस्त्र या आभूषण न तो पहना जाता है और न उतारा जाता है। वहाँ दिल की इच्छा मात्र से ही सब कुछ होता है। जहाँ भी जिस प्रकार के वस्त्र या आभूषण की इच्छा (आवश्यकता) होती है, वहाँ उस प्रकार का ज्योतिर्मयी वस्त्र या आभूषण पहले से ही बना हुआ दिखायी देने लगता है।

जो रूह कहावे अर्स की, माहें बका खिलवत।

सो जिन खिन छोड़े सरूप को, कहे उमत को महामत॥८८॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को सम्बोधित करते हुए श्री महामति जी कहते हैं कि जो भी सुन्दरसाथ स्वयं को परमधाम की आत्मा कहते हैं और अखण्ड मूल मिलावे में अपनी परात्म का स्वरूप मानते हैं, उन्हें एक क्षण के लिये भी श्री राज जी की शोभा को अपने दिल से अलग नहीं करना चाहिए।

भावार्थ- इस चौपाई में डिण्डिम घोष (डंके की चोट) के साथ धाम धनी की शोभा को अपने दिल में बसाने के लिये कहा गया है। जो सुन्दरसाथ जानबूझकर इसकी अवहेलना करते हैं, उन्हें आत्म-चिन्तन करने की आवश्यकता है कि वे किस राह पर जा रहे हैं।

प्रकरण ॥१०॥ चौपाई ॥८८७॥

श्री सुन्दर साथ को सिनगार

इस प्रकरण में सुन्दरसाथ (परात्म-स्वरूप) के श्रृंगार का वर्णन किया गया है।

सुन्दर साथ बैठा अचरज सों, जानों एकै अंग हिल मिल।

अंग अंग सब के मिल रहे, सब सोभित हैं एक दिल॥१॥

सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टियाँ) बहुत ही आश्चर्यचकित मुद्रा में बैठे हुए हैं। सभी सट-सटकर (हिल-मिलकर) इस प्रकार बैठे हैं कि ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे सभी एक ही अंग हों। सभी के अंग-अंग आपस में मिले हुए हैं। सभी एकदिली की भावना में ओत-प्रोत हैं और अलौकिक शोभा से विराजमान हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के प्रथम चरण का विशिष्ट भाव है। धाम धनी ने अपनी अँगनाओं को माया के आश्चर्यजनक

खेल के बारे में बताकर अपने चरणों में बैठा रखा है , ताकि वे माया का खेल देख सकें। उनके अन्दर आश्चर्य मिश्रित भाव हैं तथा उनके बैठने का ढंग भी आश्चर्य में डालने वाला है। सभी सखियाँ सट-सटकर इस प्रकार बैठी हुई हैं कि सबके अंग -अंग मिले हुए हैं। "बैठा अचरज सों" का यही भाव है। इस चौपाई से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि मूल मिलावा की इस बैठक में तीन हारों तथा चार रास्तों की मान्यता श्रीमुखवाणी के अनुकूल नहीं है।

जानो मूल मेला सब एक मुख, सब एक सोभित सिनगार।

सागर भरया सब एक रस, माहें कई बिध तरंग अपार॥२॥

ऐसा लग रहा है जैसे मूल मिलावा में बैठे हुए सब सुन्दरसाथ का मुख पूर्णतया एक समान है। सबका श्रृंगार भी समान रूप से सुशोभित हो रहा है। सबमें शोभा और

एकदिली का सागर समान रूप से लीला कर रहा है।
इनमें कई प्रकार की अनन्त तरंगे लहरा रही हैं।

भावार्थ- सामान्यतः इस संसार में किसी का मुख गोल होता है, तो किसी का चौड़ा, और किसी का पतला, किन्तु परमधाम में ऐसा नहीं है। सबके मुख ऐसे दिखायी देते हैं, जैसे एक ही साँचे में ढले हों। इसी को पहले चरण में "सब एक मुख" कहकर वर्णित किया गया है।

ब्रह्मसृष्टियों की शोभा के इस सागर में नूर सागर तो समाया ही है, इश्क, निस्बत, और वहदत का सागर भी समाया हुआ है। इन सागरों की अनन्त लहरें क्रीड़ा कर रही हैं। इस चौपाई की दूसरी पंक्ति का यही आशय है।

निलवट बेना चांदलो, हरी गरदन मुख मोर।

नैन चोंच सिर सोभित, बीच बने तरफ दोऊ जोर॥३॥

सभी सखियों के माथे पर चमकते हुए चन्द्रमा की गोल आकृति में बिन्दा बना हुआ है। इसमें हरी गर्दन वाले मोर के मुख की सुन्दर शोभा है। इसमें नेत्र, चोंच, और सिर की बनावट आयी है। बिन्दे के केन्द्र स्थान के दोनों ओर मोर के मुख की शोभा आयी है।

निरमल मोती नासिका, कई बिध नथ बेसर।

जोत जोर नंग मिहीं नकस, ए बरनन होए क्यों कर॥४॥

सखियों की नाक में अनेक प्रकार की नथ और बेसर की शोभा आयी है। इनमें बहुत ही स्वच्छ मोती जड़े हुए हैं। नाक के इन आभूषणों से बहुत अधिक नूरमयी ज्योति निकल रही है। इनमें जड़े हुए नगों में अति सूक्ष्म चित्रकारी की गयी है, जिनकी सुन्दरता का वर्णन किसी प्रकार से नहीं हो सकता।

सोभित हैं सबन के, कानन झलकत झाल।

माहें मोती नंग निरमल, झाँई उठत माहें गाल॥५॥

सबके कानों में सुन्दर-सुन्दर झाले (बालियाँ) झलकार कर रहे हैं। इनमें मोती के अति स्वच्छ नंग जड़े हुए हैं, जिनकी झाँई गालों में दृष्टिगोचर हो रही है।

चार चार हार सबन के, उर पर अति झलकत।

कण्ठसरी कण्ठन में, सबन के सोभित॥६॥

सबके हृदय कमल (वक्षस्थल) पर चार-चार हार बहुत अधिक झलकार कर रहे हैं। इसी प्रकार सबके गले में कण्ठसरी भी सुशोभित हो रही है।

एक हार हीरन का, दूजा हेम कंचन।

तीजो हार मानिक को, चौथा हार मोतियन॥७॥

एक हार हीरे का है, तो दूसरा हार शुद्ध स्वर्ण (कञ्चन) का है। इसी क्रम में तीसरा हार माणिक का है और चौथा हार मोतियों का है।

कहूं डोरे कहूं बादले, कहूं खजूरे हार।

कहा कहूं जवेर अर्स के, झलकारों झलकार॥८॥

मेरे सामने यह प्रश्न है कि मैं पहले हारों में आये हुए डोरों की सुन्दरता का वर्णन करूँ, या अति कोमल वस्त्रों की शोभा का, या हारों में बनी हुई चित्रकारी (भराव) का। परमधाम के इन जवाहरातों का मैं कैसे वर्णन करूँ। ये तो अपनी नूरी शोभा से पल-पल झलकार कर रहे हैं।

भावार्थ- धातुओं के तारों से जो अति कोमल चित्रकारी

की जाती है, उसे "बादले" कहते हैं। यह वक्षस्थल के ऊपर के वस्त्र पर बनाया गया है। इसी प्रकार हारों में जो सुन्दर चित्रकारी होती है, उसे खजूरे (भराव) कहते हैं।

हाथ चूड़ी नंग नवघरी, अंगूठिएं झलकत नंग।

उज्जल लाल हथेलियां, पोहोंचों पोहोंची नंग कई रंग॥९॥

हाथों में चूड़ियाँ और नवघरी है, जिनमें नंग जड़े हुए हैं। अँगूठियों में भी जड़े हुए नंग झलकार कर रहे हैं। सबकी हथेलियाँ अति उज्ज्वल लाल रंग की है। हाथों की कलाई में पोहोंची तथा पँजों में पोहोंचा के आभूषण जगमगा रहे हैं, जिनमें कई रंगों के नंग शोभायमान हैं।

भावार्थ— पोहोंचा का सम्बन्ध पाँचों अँगुलियों से होता है। यह हाथों के पँजे में धारण किया जाता है। कलाई में पोहोंची पहनी जाती है। इन दोनों आभूषणों को श्री राज

जी भी धारण करते हैं।

जैसे सरूप अर्स के, भूखन तिन माफक।

याही रवेस वस्तर जवेर के, ए अंग बड़ी रूह हक॥१०॥

परमधाम की अँगनाओं का जैसा नूरी स्वरूप है, आभूषण भी उसी के अनुकूल हैं। उसी के अनुरूप जवाहरातों से जड़े हुए वस्त्र भी हैं। ये सभी अँगनायें अक्षरातीत की अर्धांगिनी श्यामा जी की अँगरूपा हैं।

जैसी सोभा भूखन की, कहूं तैसी सोभा वस्तर।

कछू पाइए सोभा सरूप की, जो खोले रूह नजर॥११॥

जैसी शोभा आभूषणों की है, वैसी ही वस्त्रों की भी है। यदि आत्मिक दृष्टि खुल जाती है, तभी सखियों की परात्म की शोभा का कुछ अनुभव हो सकता है।

वस्त्रों के नंग क्यों कहूं, कई जवेरों जोत।

सबे भई एक रोसनी, जानों गंज अंबार उद्योत॥१२॥

वस्त्रों में अनेक प्रकार के जवाहरातों के नंग जड़े हुए हैं, जिनकी ज्योति का मैं कैसे वर्णन करूँ। इनकी सारी ज्योति जब एकत्रित हो जाती है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यह प्रकाश का अलौकिक भण्डार हो।

अतन्त नंग अर्स के, और नरम जवेर अतन्त।

अतन्त अर्स रसायन, खूबी खुसबोए अति बेहेकत॥१३॥

परमधाम में अनन्त प्रकार के नंग हैं और जवाहरातों की कोमलता भी अनन्त है। इस प्रकार उनमें निहित आनन्द भी अनन्त है। सुगन्धि तो उनकी विशेषता ही है। उनसे चारों ओर अत्यधिक सुगन्धि की बयार बहती रहती है।

कहूं केते नाम जवेरन के, रसायन नाम अनेक।

कई नाम भूखन एक अंग, सो कहां लग कहूं विवेक॥१४॥

परमधाम के कितने जवाहरातों के नाम बताऊँ। इन आनन्दमयी जवाहरातों के अनेक नाम हैं। जब एक ही अंग में कई नाम के आभूषण हैं, तो सभी अंगों के आभूषणों में जड़े हुए नगों के कितने नामों को मैं बताऊँ।

भावार्थ— रसायन (रस+अयन) शब्द का तात्पर्य आनन्द देने वाले साधन से है। इस चौपाई में परमधाम के जवाहरातों को रसायन शब्द से सम्बोधित किया गया है।

सूरत सकल साथ की, मुख कोमल सुन्दर गौर।

ए छबि हिरदे तो फबे, जो होवे अर्स सहूर॥१५॥

सब सुन्दरसाथ (ब्रह्माङ्गनाओं) का स्वरूप बहुत मनोहर

है। उनका मुखारविन्द कोमल, गौर, और अति सुन्दर है। परमधाम का चिन्तन होने पर ही यह अलौकिक शोभा दिल में अवतरित होती है।

भावार्थ- "सहूर" शब्द का भाव चिन्तन से होता है, बहस से नहीं, किन्तु इस चौपाई में मन, बुद्धि, या चित्त के द्वारा किये जाने वाले चिन्तन का प्रसंग नहीं है, बल्कि ध्यान की गहराइयों में होने वाले चिन्तन का प्रसंग है। वस्तुतः यहाँ चिन्तन का तात्पर्य प्रेम के रस में डूबी हुई बोधावस्था (ज्ञानमयी स्थिति) से है। इसी प्रकरण की चौपाई ३९, ४० और ४१ में यह बात स्पष्ट रूप से बतायी गयी है।

रुहें सुन्दर सनकूल मुख, नहीं सोभा को पार।

घट बढ़ कोई न इनमें, एक रस सब नार॥१६॥

ब्रह्मसृष्टियाँ इतनी सुन्दर हैं कि उनकी शोभा की कोई सीमा नहीं है। उनके मुखारविन्द पर सर्वदा प्रसन्नता छायी रहती है। सौन्दर्य में कोई भी किसी से कम या अधिक नहीं है, बल्कि सभी एक समान (एकरस) हैं।

कई रंग सोभित साड़ियां, रंग रंग में कई नंग सार।

भिन्न भिन्न झलके एक जोत, कई किरनें उठें बेसुमार॥१७॥

सखियों ने अनेक रंग की साड़ियाँ धारण कर रखी हैं। इन साड़ियों के एक-एक रंग में अनेक नगों के रंग समाहित हैं। ये सभी रंग मिलकर एक ही ज्योति के रूप में झलकार करते हैं और उस ज्योति से अनेक रंगों की अनन्त किरणें फैलती हैं।

भावार्थ- परमधाम में अनन्त नग हैं और उनके अनन्त रंग हैं, किन्तु ये सभी रंग साड़ियों के एक-एक रंग में

उसी प्रकार समाये हुए हैं, जैसे परमधाम के एक ही फल में सभी फलों का रस भरा होता है।

हर एक के सिनगार, तिन सिनगार सिनगार कई नंग।

नंग नंग में कई रंग हैं, तिन रंग रंग कई तरंग॥१८॥

सखियों के वस्त्र-आभूषणों के अनेक प्रकार के श्रृंगार हैं। उनमें प्रत्येक श्रृंगार में अनेक प्रकार के नग जड़े हुए हैं। इसी प्रकार प्रत्येक नग में अनेक प्रकार के रंग निहित हैं तथा प्रत्येक रंग से प्रकाश की बहुत सी तरंगें निकल रही हैं।

तरंग तरंग कई किरनें, कई रंग नंग किरनें न समाए।

यों जोत सागर सरूपों को, रह्यो तेज पुन्ज जमाए॥१९॥

प्रत्येक तरंग से अनेक प्रकार की किरणें निकलती हैं।

श्रृंगार में कई रंगों के नग हैं , जिनसे निकलने वाली किरणें हवेली में नहीं समाती अर्थात् चारों ओर फैली हुई हैं। इस प्रकार सखियों के शरीर से निकलने वाली ज्योति एक सागर के समान दिखायी पड़ रही है , जिससे इस मूल मिलावे में तेज ही तेज का भण्डार नजर आ रहा है।

अब इनके अंग की क्यों कहूं, ठौर नहीं बोलन।

क्यों कहूं सोभा अखण्ड की, बीच बैठ के अंग सुपन॥२०॥

धाम धनी की इन अँगनाओं के अंगों की शोभा का वर्णन कैसे करूँ। अब तो बोलने की कोई जगह (स्थिति) ही नहीं रही। इस नश्वर शरीर के माध्यम से भला सखियों के अखण्ड तनों की शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है।

भावार्थ— "बोलने का ठिकाना न होना" एक मुहावरा है,

जिसका अर्थ होता है- किसी भी स्थिति में न कह पाना। इसी प्रकार पूर्व चौपाई में प्रयुक्त "न समाए" भी मुहावरा है, जिसका भाव होता है- भरपूर होना।

रंग तरंग किरने कही, कही तेज जोत जुबां इन।

प्रकास उद्घोत सब सब्द में, जो कह्या नूर रोसन॥२१॥

सखियों की शोभा का वर्णन करने में मैंने अपनी जिह्वा से रंग, तरंग, किरण, तेज, ज्योति, प्रकाश, और उजाला आदि शब्दों का प्रयोग किया है, किन्तु ये सभी शब्द इस नश्वर जगत के हैं। वस्तुतः परमधाम का नूर ही सम्पूर्ण शोभा के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है।

भावार्थ- अरबी भाषा का "नूर", वेद का "आदित्यवर्ण" (यजु. ३१/१८), "शुक्र" (यजु. १७/८०), एवं "वरेण्यम् भर्गः" (३६/३) एकार्थवाची हैं। इसी नूर से

तेज, ज्योति, प्रकाश, उजाला, तरंग, रंग, और किरण आदि का प्रकटन होता है। नूर से प्रकट होने वाले इन शब्दों में सूक्ष्म अन्तर होता है। सूर्य में तेज (दाहकता) है, जबकि चन्द्रमा में ज्योति (शीतलता) है। यद्यपि इन दोनों से ही प्रकाश फैलता है, किन्तु प्रकाश के फैलने से पहले उजाला फैल जाता है। किरणों के माध्यम से प्रकाश का फैलना होता है।

ज्यों ज्यों बैठियां लग लग, त्यों त्यों अरस-परस सुख देत।

बीच कछु ना रहे सके, यों खैंच खैंच ढिग लेत॥२२॥

सखियों ने एक-दूसरे को खींच-खींचकर अपने से सटा लिया है तथा इस तरह से बैठी हैं कि उनके बीच कोई भी अन्य वस्तु नहीं रह सकती। इस प्रकार वे जिस तरह से सट-सट कर बैठी हैं, उसी प्रकार वे आपस में

भी धनी के सुख का रसपान करती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है कि सखियों में बाह्य या आन्तरिक रूप से किसी प्रकार का कोई भेद नहीं है। वहाँ एकदिली होने के कारण धनी का प्रेम व आनन्द सबको समान रूप से प्राप्त होता है। "अरस-परस सुख देत" का यही भाव है।

इस चौपाई में निर्विवाद रूप से तीन हारों की मान्यता का खण्डन है। यदि ऐसा माना जाये कि हारें तो तीन हैं किन्तु अपनी-अपनी हार में वे सट-सट कर बैठी हैं, तो ऐसा उचित नहीं है क्योंकि इस चौपाई की दूसरी पंक्ति में यह बात कही गयी है कि उनके बीच कोई भी वस्तु (खाली स्थान) नहीं है और उन्होंने एक-दूसरे को खींच-खींच कर अपने से सटा लिया है। ऐसी स्थिति में हार बनने का प्रश्न ही नहीं होता।

जानों सागर सब एक जोत में, नूर रोसन भर पूरन।

झाँई झलके तेज दरियाव ज्यों, कई उठे तरंग भिन्न भिन्न॥२३॥

ऐसा प्रतीत होता है जैसे सब सखियों का समूह एक सम्मिलित ज्योति के रूप में सागर के समान दृष्टिगोचर हो रहा है। सम्पूर्ण मूल मिलावा नूरी प्रकाश से भरपूर है। ऐसा लगता है जैसे तेज के सागर का स्वरूप ही यहाँ झलकार कर रहा है, जिसमें अलग-अलग प्रकार की अनेक तरंगे लहरा रही हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार अथाह जलराशि को सागर कहा जाता है, उसी प्रकार सखियों की इस अनुपम तेजराशि को तेज का सागर कहा गया है और इसे झाँई (झलक, प्रतिबिम्ब, आभा) शब्द से सम्बोधित किया गया है। इसका भाव यह है कि सखियों के इस स्वरूप में तेज का सागर प्रतिबिम्बित हो रहा है या उसकी झलकार हो रही

है। मूल मिलावा में विराजमान सखियों के इस सौन्दर्य सागर में प्रेम, आनन्द, और एकदिली आदि की अनेक प्रकार की अनन्त तरंगे उठा करती हैं।

श्री राज जी (मारिफत स्वरूप) का दिल ही परमधाम के पच्चीस पक्षों के रूप में (हकीकत में) क्रीड़ा कर रहा है। इस सागर ग्रन्थ में मूल मिलावा के आठों सागरों का वर्णन हुआ है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण पच्चीस पक्ष मूल मिलावा में विराजमान श्री राज जी के दिल से है। जिस मूल मिलावा में युगल स्वरूप सहित सब सखियाँ विराजमान हैं, उसे तेज का सागर कहना भी अनन्त को समझने मात्र के लिये है, यथार्थ में नहीं। यह कथन वैसे ही है जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एक छोटे से कागज के टुकड़े पर चित्रित करना।

ऊपर तले की रोसनी, और वस्तर भूखन की जोत।

और जोत सरूपों की क्यों कहूं, ए जो ठौर ठौर उद्योत॥२४॥

चन्द्रवा (ऊपर), चबूतरे (नीचे), और सुन्दरसाथ सहित युगल स्वरूप के अंग-अंग तथा वस्त्रों एवं आभूषणों से उठने वाली नूरी ज्योति, जो हर जगह जगमगा रही है, उसका वर्णन मैं कैसे करूँ।

ऊपर तले थम्भ दिवालों, सब जोत रही भराए।

बीच समूह जोत साथ की, बनी जुगल जोत बीच ताए॥२५॥

ऊपर, नीचे, थम्भों, दीवारों आदि में सर्वत्र ज्योति ही ज्योति दिखायी दे रही है। मूल मिलावा की हवेली के बीच में चबूतरे पर जो सुन्दरसाथ की ज्योति जगमगा रही है, उसके बीच में युगल स्वरूप की नूरी ज्योति शोभायमान हो रही है।

भावार्थ- इस चौपाई के द्वारा यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि सिंहासन चबूतरे के बीच में ही रखा है, न कि दरवाजे की बगल में पाच और नीलम के थम्भों से लगकर। इस सम्बन्ध में इस चौपाई का तीसरा और चौथा चरण बहुत ही महत्वपूर्ण है।

ए जोत में सोभा सुन्दर, और सरूपों की सुखदाए।

देख देख के देखिए, ज्यों नख सिख रहे भराए॥२६॥

इस ज्योति में युगल स्वरूप तथा सखियों की अति सुन्दर एवं आनन्द देने वाली शोभा विराजमान है। हे साथ जी! आप नख से शिख तक की इस अलौकिक शोभा को बारम्बार देखते रहिए, ताकि यह आपके धाम हृदय में अखण्ड हो जाये।

ज्यों दरिया तेज जोत का, त्यों सब दिल दरिया एक।

एक रस एक रोसनी, जुबां क्यों कर कहे विवेक॥२७॥

जिस प्रकार चबूतरे पर तेज और ज्योति का सागर दिखायी पड़ रहा है, उसी प्रकार सबके दिल में एक ही वहदत (एकदिली) का सागर लहरा रहा है। सबके दिल में एक ही प्रेम का रस है और नूर का प्रकाश है। भला इस जिह्वा से इस रहस्य को यथार्थ रूप में कैसे कहा जा सकता है।

जोत उपली कही जुबांन सों, पर रहेस चरित्र सुख चैन।

सुख परआतम तब पाइए, जब खुलें अन्तर के नैन॥२८॥

अभी तक मैंने ज्योति से भरपूर बाह्य शोभा का ही वर्णन किया है, लेकिन अन्तरंग लीला में अनन्त सुख और शान्ति छिपी हुई है। जब आत्म-दृष्टि खुल जाती है,

तभी परात्म के अखण्ड सुखों का अनुभव होता है।

भावार्थ- अष्ट प्रहर (हकीकत) की लीला बाह्य लीला कहलाती है, जबकि मारिफत की वह लीला जिसमें आशिक- माशूक (प्रिया-प्रियतम) का भेद मिट जाये अन्तरंग लीला कहलाती है। इस लीला में डूबकर ही परात्म के वास्तविक आनन्द को जाना जा सकता है।

एक रस होइए इस्क सों, चलें प्रेम रस पूर।

फेर फेर प्याले लेत हैं, स्याम स्यामाजी हजूर॥२९॥

हे साथ जी! यदि आप युगल स्वरूप का साक्षात्कार (दीदार) करना चाहते हैं, तो सर्वप्रथम प्रेम में गलतान होकर एकरस हो जाइए। ऐसी स्थिति में आपके अन्दर प्रेम रस की धारा बहने लगेगी। जब आप अपने हृदय रूपी प्याले में प्रेम रस का पान करने लगें, तो यह

निश्चित है कि अब आपको युगल स्वरूप का दीदार होना ही है।

भावार्थ- जब आत्मा पिण्ड-ब्रह्माण्ड से परे होकर मात्र अपनी परात्म के श्रृंगार की ही भावना करे और प्रियतम के दीदार को ही एकमात्र लक्ष्य बना ले, तो उसे एकरस होना कहते हैं। इस अवस्था में जीव का षड् विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर अर्थात् द्वेष) से कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। जब धाम हृदय में युगल स्वरूप की झलक मिलने लगे और उसके अतिरिक्त सब कुछ निरर्थक लगने लगे तो यह समझ लेना चाहिए कि अब मेरी आत्मा प्रेम रस का पान करने लगी है।

क्यों कहूं सुख सबन के, सब अंगों के एक चित्त।

अरस परस सुख लेवहीं, अंग नए नए उपजत॥३०॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ जिस आनन्द का रसपान करती हैं, उसका वर्णन मैं कैसे करूँ। वहाँ सबके दिल का एक ही चित्त होता है। ये सभी अन्तरंग लीला में धनी से एकाकार होकर अनन्त आनन्द में डूबी रहती हैं। इनके हृदय में नित्य ही नये-नये सुखों का प्रकटन होता रहता है।

भावार्थ- इस संसार में सबके चित्त की प्रक्रिया अलग-अलग होती है, जबकि परमधाम में सबका चित्त एक ही होता है, यहाँ तक कि मन, चित्त, बुद्धि, और अहंकार भी कथन मात्र ही हैं। एक अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य किसी का वहाँ मूलतः अस्तित्व नहीं है, जबकि इस नश्वर जगत में मन, चित्त, बुद्धि, और अहंकार की संरचना तथा प्रक्रिया अलग-अलग होती है।

साथ समूह की क्यों कहूँ, जाको इस्कै में आराम।

अरस-परस सब एक रस, पिउ विलसत प्रेम काम॥३१॥

मैं परमधाम की इन अँगनाओं की महिमा का कैसे वर्णन करूँ, जिनका आनन्द एकमात्र प्रेम में ही निहित होता है। आपस में एकदिली के रस में डूबी हुई ये सभी सखियाँ प्रियतम से एकमात्र प्रेम की ही इच्छा रखती हैं और आनन्द के रस में भीगी रहती हैं।

इन धाम के जो धनी, तिन अंगों का सनेह।

हेत चित्त आनन्द इनका, क्यों कहूँ जुबां इन देह॥३२॥

धाम के धनी श्री राज जी की अँगरूपा इन ब्रह्मसृष्टियों के दिल में अपने प्राणवल्लभ को रिझाने के लिये जो अनन्त लाड-प्यार और आनन्द भरा हुआ है, उसका वर्णन मैं इस शरीर की जिह्वा से कैसे करूँ।

सुख अन्तर अन्तस्करण के, आवें नहीं जुबांन।

प्रेम प्रीत रीत अन्तर की, सो क्यों कर होए बयान॥३३॥

परात्म के अन्तःकरण में जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसे इस जिह्वा से नहीं कहा जा सकता। परात्म के अन्दर अपने धाम धनी को रिझाने की जो प्रेम और प्रीति की रीति (तरीका) है, उसका वर्णन कर पाना कदापि सम्भव नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में "अन्तर" शब्द से तात्पर्य है, आत्मा से परे "परात्म"। प्रेम घनीभूत (जमा हुआ) रूप है, तो प्रीति द्रवीभूत (बहता हुआ) रूप है। वस्तुतः जब प्रेम ही शब्दातीत है, तो प्रेम के द्वारा अपने माशूक को रिझाने की प्रक्रिया (रीति) शब्दों में कैसे व्यक्त की जा सकती है।

सत सरूप जो धाम के, तिनके अन्तस्करण।

इस्क तिनके अंग का, सो कछुक करुं बरनन॥३४॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों के अखण्ड तन हैं। उनके अन्तःकरण (अंग, दिल) में जो इश्क का रस प्रवाहित होता है, उसका मैं थोड़ा सा वर्णन करती हूँ।

नख सिख अंग इस्क के, इस्कै संधों संध।

रोम रोम सब इस्क, क्यों कर कहूं सनंध॥३५॥

परात्म के तनों में नख से शिख तक प्रत्येक अंग के रोम-रोम में और अंगों के जोड़ में प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है। ऐसे दिव्य प्रेम (इश्क) की यथार्थता का मैं कैसे वर्णन करूँ।

अन्तस्करण इस्क के, इस्कै चित्त चितवन।

बातां करें इस्क की, कछू देखें ना इस्क बिन॥३६॥

सखियों का सम्पूर्ण अन्तःकरण इश्क का है। इनके चित्त में मात्र इश्क (प्रेम) का ही ध्यान रहता है। वे बातें भी मात्र इश्क की ही करती हैं। उन्हें इश्क के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं दिखता।

तत्व गुण अंग इन्द्रियां, सब इस्कै के भीगल।

पख सारे इस्क के, सब इस्क रहे हिल मिल॥३७॥

उनके शरीर नूरमयी तत्व के हैं, जिनमें सत्, चित्त, और आनन्द का गुण विद्यमान है। अन्तःकरण तथा इन्द्रियाँ भी इश्क के रस में सराबोर हैं। आनन्दमयी लीला में क्रियाशीलता के दोनों पक्ष भी इश्कमयी हैं। इस प्रकार उनके प्रत्येक अंग में इश्क ओत-प्रोत हो रहा है।

भावार्थ- परमधाम में सखियों द्वारा धाम धनी को रिझाने की प्रक्रिया दो रूपों में होती है, इन्हें ही दो पक्ष कहते हैं। पहले पक्ष में वह धाम धनी को अपना माशूक मानकर अनेक प्रकार की लीलाओं से रिझाती हैं, यह बहिरंग लीला है। दूसरे पक्ष में वह उनके दिल में इस प्रकार डूब जाती हैं कि उनका स्वयं का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और धनी से एकरूप हो जाती हैं, यह अन्तरंग लीला है।

ए सुख संग सरूप के, जो अन्तर अंदर इस्क।

आत्म अन्तस्करण विचारिए, तो कछू बोए आवे रंचक॥३८॥

परात्म के अन्दर इश्क (प्रेम) होने से युगल स्वरूप के साथ आनन्द की लीला होती है। हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मा के अन्तःकरण में विचार करें, तो वहाँ के

आनन्द की कुछ सुगन्धि (झलक) प्राप्त हो सकती है।

भावार्थ- जीव और आत्मा के अन्तःकरण अलग-अलग हैं। जीव का अन्तःकरण त्रिगुणात्मक है, जबकि आत्मा का अन्तःकरण परात्म के अन्तःकरण का प्रतिबिम्ब है। आत्मा के अन्तःकरण की लीला केवल ध्यानावस्था (चितवनि) में ही होती है। लौकिक कार्यों में मात्र जीव का ही अन्तःकरण कार्य करता है, आत्मा का नहीं।

जो कोई आत्म धाम की, इत हुई होए जाग्रत।

अंग आया होए इस्क, तो कछू बोए आवे इत॥३९॥

यदि किसी के अन्दर परमधाम की आत्मा हो और यहाँ जाग्रत हो गयी हो तथा उसके धाम हृदय में धनी के प्रति प्रेम हो, तो उसके अन्दर परमधाम के आनन्द की कुछ

सुगन्धि आ सकती है अर्थात् कुछ अनुभव हो सकता है।

भावार्थ- जाग्रत होने का तात्पर्य है- युगल स्वरूप की शोभा का दिल में बस जाना। परमधाम के अनन्त आनन्द की थोड़ी सी भी झलक मिलना बिना प्रेम एवं आत्म-जाग्रति के सम्भव नहीं है। इसके आगे की चौपाइयों में चितवनि की गहन स्थिति का वर्णन हो रहा है।

पिउ नेत्रों नेत्र मिलाइए, ज्यों उपजे आनन्द अति घन।

तो प्रेम रसायन पीजिए, जो आत्म थें उतपन॥४०॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्म-दृष्टि से प्रियतम के नेत्रों की ओर देखिए, ताकि आपको अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति हो सके। प्रियतम के नेत्रों की ओर देखने पर जब आपकी आत्मा में प्रेम का रस प्रवाहित होने लगे, तो

उसका पान कीजिए अर्थात् उसमें डूब जाइए।

भावार्थ- चितवनि की प्रारम्भिक अवस्था में चरणों का ही विशेष ध्यान किया जाता है। इससे संसार से अलगाव होने लगता है और प्रियतम की शोभा दिल में बसने लगती है-

चारों जोड़े चरन के, ए जो अर्स भूखन।

ए लिए हिरदे मिने, आवत सरूप पूरन॥

अक्षरातीत का दिल इश्क का अथाह सागर है। उसका रस नेत्रों के द्वारा प्रवाहित होता है। इसलिये नेत्रों के ध्यान से आत्मा के अन्तःकरण में प्रेम की अखण्ड वर्षा होने लगती है। यद्यपि परमधाम की वहदत में चरणों और नेत्र में कोई भी गुणात्मक अन्तर नहीं है , किन्तु इस प्रकार का कथन हमारी ग्राह्य शक्ति के आधार पर किया गया है। जिस प्रकार इस संसार में किसी के चरणों के

प्रति भाव रखने से श्रद्धा व विश्वास की वृद्धि होती है किन्तु नेत्रों की ओर देखने पर प्रेम की वृद्धि होती है, उसी प्रकार ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था में जब तक अपने आत्म-स्वरूप में स्थित नहीं हुआ जाता, तब तक जीव भाव के योग से होने वाली ध्यान प्रक्रिया में चरणों एवं नेत्र के ध्यान में भेद करना पड़ता है।

आतम अन्तस्करण विचारिए, अपने अनुभव का जो सुख।

बढ़त बढ़त प्रेम आवहीं, परआतम सनमुख॥४१॥

अब आपको जिस आनन्द का अनुभव हो रहा है, उसका अपनी आत्मा के अन्तःकरण में विचार कीजिए। आनन्द के भावों के बढ़ने पर दिव्य प्रेम का रस प्रवाहित होगा, जिससे अपनी परात्म नजर आने लगेगी।

भावार्थ— आत्मा के अन्तःकरण में युगल स्वरूप के

ध्यान से मिलने वाले आनन्द का विचार तभी होगा, जब पिण्ड और ब्रह्माण्ड का जरा भी आभास नहीं होगा। उस अवस्था में आनन्द की निरन्तर वृद्धि होने से माया से सम्बन्ध पूर्णतया टूट जायेगा, जिससे त्रिगुणातीत प्रेम की धारा बहेगी और अपनी परात्म का स्वरूप नजर आने लगेगा।

इतथें नजर न फेरिए, पलक न दीजे नैन।

नीके सरूप जो निरखिए, ज्यों आत्म होए सुख चैन॥४२॥

अब अपनी आत्मा के अपलक नेत्रों से युगल स्वरूप को अच्छी तरह से देखिए और अपनी दृष्टि जरा भी इधर-उधर न कीजिए। ऐसा करने से आत्मा के दिल में आनन्द और परम शान्ति का अनुभव होगा।

भावार्थ- इस स्तर तक पहुँचने के लिये अति शुद्ध और

सात्विक अल्पाहार, निर्विकारिता, एवं विरह रस में डूबे रहना अनिवार्य है, अन्यथा अपलक नेत्रों से युगल स्वरूप को देखना सम्भव नहीं हो सकेगा।

तब प्रेम जो उपजे, रस परआत्म पोहोंचाए।

तब नैन की सैन कछू होवहीं, अन्तर आंखां खुल जाए॥४३॥

अब आत्मा के अन्दर जो प्रेम प्रकट होता है, उसकी अनुभूति परात्म को भी होती है। इस स्थिति में आत्मा के नैनों की दृष्टि श्री राज जी के नैनों से मिलती है, जिससे आत्मिक-दृष्टि पूर्णतया खुल जाती है।

भावार्थ- इस खेल में आत्मा वाले जीव के तन से जो कुछ भी लीला होती है, परात्म उसे देख रही होती है। उदाहरण के लिये सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी से कहा था कि शाकुण्डल एवं शाकुमार

की आत्मा राजघरानों में हैं , क्योंकि इनके मूल तन परमधाम में हँस रहे हैं।

जब आत्मा अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर युगल स्वरूप का दीदार कर रही होती है, तो ऐसी अवस्था में उसके अन्दर जो प्रेम प्रकट होता है, उसका अहसास परात्म को भी हो जाता है। इसे ही परात्म तक प्रेम रस पहुँचने की बात की गयी है। धनी के नेत्रों से जब आत्मा के स्वरूप की नजर मिलती है, तो अक्षरातीत के नेत्रों से प्रेम और आनन्द का रस प्रवाहित होने लगता है। इसे ही आत्म-दृष्टि का खुलना कहते हैं, किन्तु यह स्थिति चौपाई ४०, ४१ में वर्णित धनी के नेत्रों से नेत्र मिलाने एवं प्रेम रस का पान करने से भिन्न होती है। चौपाई ४०, ४१ का कथन प्रारम्भिक अवस्था का है, जबकि इस ४३वीं चौपाई में प्रत्यक्ष दर्शन (दीदार) का प्रसंग है।

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछू अन्तराए॥४४॥

अब आत्मा के अन्तःकरण में प्रेम और आनन्द का रस बरसने लगता है। इस अवस्था में आत्मा और परात्म में जरा भी भेद नहीं रह जाता।

भावार्थ- परात्म के दिल में युगल स्वरूप की छवि अखण्ड रूप से बसी होती है। जब आत्मा ने भी अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप को बसा लिया, तो उसमें और परात्म में कोई भी अन्तर नहीं रह जाता। इस अवस्था में माया से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यही आत्म-जाग्रति है, जो इस जीवन का परम लक्ष्य है।

परआत्म के अन्तस्करण, पेहेले उपजत है जे।

पीछे इन आत्म के, आवत है सुख ए॥४५॥

परात्म के अन्तःकरण में पहले धनी के दीदार की भावना आती है, उसके पश्चात् ही आत्मा के अन्तःकरण में इस अलौकिक सुख की अनुभूति हो पाती है।

भावार्थ- इस चौपाई से पूर्व की चौपाइयों में आत्मिक दृष्टि के द्वारा मूल मिलावा में पहुँचकर धनी का दीदार करने की बात कही गयी है, किन्तु ऐसा होना तभी सम्भव है जब धनी के हुक्म (आदेश) से परात्म में यह बात आये।

मूल मिलावा में बैठी हुई ब्रह्मसृष्टि श्री राज जी के दिल रूपी परदे पर मायावी खेल को देख रही है। उनके आदेश से परात्म की सुरता ही आत्मा के रूप में इस संसार में आयी हुई है। धाम धनी की प्रेरणा से ही परात्म सारा खेल वहाँ देख रही है और आत्मा यहाँ देख रही है। आत्मा की सुरता यहाँ से हटकर तब तक परमधाम में

नहीं जा सकती, जब तक धाम धनी के आदेश से परात्म में ऐसी भावना पैदा न हो। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

ताथें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।

सुरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल॥४६॥

इसलिये अब अपनी आत्मा के धाम हृदय में चबूतरे पर बैठे हुए सुन्दरसाथ के बीच में विराजमान युगल स्वरूप को बसाइए। अपना ध्यान टूटने न दीजिए और बारम्बार युगल स्वरूप की शोभा पर स्वयं को न्योछावर कर दीजिए।

भावार्थ— इस चौपाई में सुरत (सुरति) का तात्पर्य आत्म-दृष्टि से है। इसी प्रकार चितवनि का भाव है – आत्म-चक्षुओं से देखना। यद्यपि शास्त्रीय भाषा में मन

या चित्त की वृत्ति को सुरति कहा जाता है, किन्तु यहाँ वैसा प्रसंग नहीं है। आत्मा के हृदय (मन या चित्त) की वृत्ति को सुरति कह सकते हैं, किन्तु जीव के चित्त की वृत्ति को नहीं। इसी प्रकार चित्त और चिति शक्ति में भी अन्तर होता है। यहाँ चिति शक्ति का भाव आत्मिक चेतना से लिया जाता है, जबकि चित्त का सम्बन्ध मात्र चित्त से ही होता है।

सोभा मुखारबिन्द की, क्यों कर कहूं तेज जोत।

रस भरयो रसीलो दुलहा, जामें नित नई कला उद्योत॥४७॥

युगल स्वरूप के मुखारविन्द पर विराजमान नूरमयी तेज-ज्योति की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। रस के स्वरूप मेरे प्राण प्रियतम अक्षरातीत के रोम-रोम में प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है। उनमें तो प्रेम और सौन्दर्य आदि की

नई-नई कलायें नित्य प्रकट होती रहती हैं।

कमी जो कछुए होवहीं, तो कहिए कला अधिकाए।

ए तो बड़े तरंग रंग रस के, यों प्रेमे देत देखाए॥४८॥

यदि धाम धनी के प्रेम में किसी तरह की कोई कमी हो, तब तो उसमें नई-नई कलाओं के प्रकट होने या बढ़ने की बात कही जाये। अक्षरातीत का दिल तो प्रेम और आनन्द का ऐसा अनन्त सागर है, जिससे असंख्य लहरें पल-पल उठती रहती हैं। इस प्रकार श्री राज जी अपने प्रेम की एक झलक दिखाते हैं।

भावार्थ- महान विभूतियों की आत्मिक शक्ति के स्तर को कला कहकर वर्णित किया जाता है, जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम को द्वादस कला सम्पन्न और योगिराज श्री कृष्ण को षोडश कला सम्पन्न कहते हैं। इसी प्रकार

सौन्दर्य से युक्त चन्द्रमा की आकृति में वृद्धि को कलाओं की वृद्धि कहते हैं। अक्षरातीत तो प्रेम और सौन्दर्य का ऐसा सागर है, जिसकी थाह न तो आज दिन तक कोई लगा सका है और न भविष्य में लगा सकेगा। अक्षरातीत के सम्बन्ध में कलाओं की बात करना मात्र हमारी मानवीय बुद्धि में समझ आने के लिये है।

बल बल सोभा सरूप की, बल बल वस्तर भूखन।

बल बल मीठी मुसकनी, बल बल जाऊं खिन खिन॥४९॥

मैं अपने प्राण प्रियतम के अद्वितीय सौन्दर्य एवं वस्त्र – आभूषणों की शोभा पर न्योछावर होती हूँ। उनकी मृदु मुस्कान पर तो मैं क्षण-क्षण बलिहारी जाती हूँ।

बल बल बंकी पाग के, बल बल बंके नैन।

बल बल बंके मरोरत, बल बल चातुरी चैन॥५०॥

मैं धाम धनी की टेढ़ी पाग तथा तिरछे नेत्रों पर अपना सर्वस्व न्योछावर करती हूँ। प्रियतम जब अपने तिरछे नेत्रों से बहुत ही चातुर्यतापूर्वक प्रेम के संकेत करते हैं, तो मैं उनकी इस प्रेममयी लीला (अदा) पर बलिहारी जाती हूँ।

भावार्थ- पाग को टेढ़ा करके पहनना अति सुन्दर लगता है। इसमें पाग को बायीं ओर आधे कान तक झुका दिया जाता है, तो दूसरी ओर का कान पूर्णतया खुला रखा जाता है।

बल बल तिरछी चितवनी, बल बल तिरछी चाल।

बल बल तिरछे वचन के, जिन किया मेरा तिरछा हाल॥५१॥

प्रेम को दर्शाने वाली धनी की तिरछी नजर पर मैं समर्पित होती हूँ। अत्यधिक प्रेम के उमंग में उनकी चाल भी तिरछी है, जिस पर न्योछावर हूँ। उनके वचनों में प्रेम की इतनी मिठास है कि मेरी हालत भी वैसी ही हो गयी है। धनी के ऐसे मोहक वचनों पर मैं स्वयं को समर्पित करती हूँ।

भावार्थ— तिरछी दृष्टि ही प्रेम की भाषा है, जो नेत्रों के इशारों से व्यक्त की जाती है। जिस प्रकार फलों के बोझ से डालियाँ तिरछी हो जाती हैं, उसी प्रकार जब हृदय में प्रेम हिलोरें मारने लगता है तो सीधे चल पाना सम्भव नहीं होता। इसे ही तिरछी चाल कहते हैं। प्रेम की रहस्यमयी बातें गोपनीय तरीके से कही जाती हैं, इसलिये उन्हें तिरछे वचनों की संज्ञा प्राप्त है। तिरछा हाल होने का तात्पर्य है— प्रेम के सागर में ऐसी डुबकी

लगाना, जिसमें कभी ऊपर आने की इच्छा न हो।

बल बल छबीली छब पर, दंत तंबोल मुख लाल।

बल बल आठों जाम की, बल बल रंग रसाल॥५२॥

पान खाने से लाल दिखने वाले दाँतों और मुख की अति सुन्दर शोभा पर मैं बारम्बार बलिहारी जाती हूँ। प्रेम के रस में आठों प्रहर (रात-दिन) भीने रहने वाले उनके अद्वितीय सौन्दर्य पर मैं स्वयं को न्योछावर करती हूँ।

बल बल मीठे मुख के, अंग अंग अमी रस लेत।

कई बिध के सुख देत हैं, पल पल में कर हेत॥५३॥

मैं धनी के उस मुखारविन्द पर बलिहारी जाती हूँ, जो माधुर्यता का सागर है और जिससे प्रवाहित होने वाले अमृत रस का पान मेरी आत्मा का अंग-अंग करता है।

प्रियतम अक्षरातीत तो अपनी अँगनाओं से पल-पल प्रेम करते हैं और अनेक प्रकार के सुख देते हैं।

बल बल जाऊं चरन के, बल बल हस्त कमल।

बल बल नख सिख सब अंगों, बल बल जाऊं पल पल॥५४॥

मैं अपने प्राण प्रियतम अक्षरातीत के चरण कमलों पर, हस्त कमल पर, और नख से शिख तक के सभी अंगों पर पल-पल समर्पित होती हूँ।

बल बल पियाजी के प्रेम पर, बल बल चितवन हेत।

महामत बल बल सबों अंगों, फेर फेर वारने लेत॥५५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरी आत्मा अपने धनी के प्रेम पर, नेत्रों से प्रकट होने वाली मधुर दृष्टि (नजर) पर, तथा उनके सभी अंगों पर बारम्बार न्योछावर होती है।

प्रकरण ॥११॥ चौपाई ॥९४२॥

सागर पांचमा इस्क का

इस प्रकरण में इस्क के सागर का विशद वर्णन किया गया है।

पांचमा सागर पूरन, गेहेरा गुझ गंभीर।

प्याले इस्क दरियाव के, पीवें अर्स रूहें फकीर॥१॥

अक्षरातीत के हृदय में उमड़ने वाला यह पाँचवा सागर इस्क (प्रेम) का है, जो पूर्णातिपूर्ण है, अत्यन्त गहरा है, रहस्यमयी है, और गम्भीर है। इस इस्क सागर के अमृतमयी रस को अपने हृदय रूपी प्याले में भरकर मात्र वे ही पी पाते हैं, जिनके अन्दर परमधाम का अँकुर है और जिन्होंने परमहंस (ब्राह्मी) अवस्था प्राप्त कर ली है।

भावार्थ— धाम धनी के नख से शिख तक के स्वरूप में रोम-रोम में इस्क का अनन्त सागर लहरा रहा है। आज

तक कोई भी इसकी थाह नहीं ले सका है, इसलिये इसे "गहरा" कहा गया है। इश्क की मारिफत के गुह्य रहस्यों को आदिनारायण और अक्षर ब्रह्म तो क्या, सखियों सहित स्वयं श्यामा जी भी नहीं जानती थीं, इसलिये इसे "गुझ" कहा गया है। सामान्यतः यह कथन जनसाधारण में भी प्रचलित है कि प्रेम की भाषा मूक होती है। अक्षरातीत ने भी अपने मारिफत के इश्क की पहचान न तो परमधाम में दी थी और न ब्रज-रास में दी। ब्रह्मवाणी के अवतरण के पश्चात् ही इसे जाना जा सका है। यही कारण है कि इसे "गंभीर" कहा गया है। इसका रसपान मात्र वे सुन्दरसाथ ही कर सकते हैं, जिन्होंने शरियत एवं तरीकत की राह छोड़कर हकीकत और मारिफत की राह अपनायी है।

इन रस को ए सागर, पूरन जुगल किसोर।

ए दरिया सुख पांचमा, लेहेरी आवत अति जोर॥२॥

अक्षरातीत का यह युगल स्वरूप ही पूर्ण स्वरूप है, जो प्रेम रस का सागर कहा जाता है। इस पाँचवें सागर में अत्यन्त तीव्र बहाव के साथ आनन्द की अनन्त लहरें उठा करती हैं।

भावार्थ— मारिफत का इश्क जब तक हकीकत के रूप में न आये तब तक लीला का प्रकटीकरण नहीं हो सकता, अर्थात् घनीभूत प्रेम जब तक द्रवीभूत नहीं होता तब तक उसका रसास्वादन नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि युगल स्वरूप को लीला की दृष्टि से पूर्ण स्वरूप माना जाता है, अन्यथा अकेले अक्षरातीत तो प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण ही हैं।

अति सुख बड़ीरूह को, इस्क तरंग अतंत।

मुख मीठी अपनी रूह को, रस रसना पिलावत॥३॥

श्यामा जी का आनन्द असीम है। उनके हृदय में प्रेम की अनन्त लहरें उठा करती हैं। श्री राज जी अपने मुख से अति मीठी वाणी द्वारा अपनी हृदय स्वरूपा श्यामा जी को प्रेम का रसपान कराते हैं।

हेत कर इन रूहन की, प्यार सों बात सुनत।

सो वचन अन्दर लेय के, मुख सामी बान बोलत॥४॥

धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों की बातों को बहुत ही लाड-प्यार से सुनते हैं और उनके वचनों को पूरी तरह से आत्मसात् करके उनके सामने बहुत ही मीठे शब्दों से बोलते हैं।

भावार्थ- किसी की बात को पूरी तरह सुने बिना अपनी बात कहना प्रेम और शिष्टाचार के विपरीत है। प्रेमी का

प्रेम यही है कि वह अपने प्रेमास्पद (माशूक) की प्रत्येक बात को पूरी तरह से सुने और बोलते समय अपने हृदय की सारी मिठास शब्दों में उड़ेल दे।

नैनों नैन मिलाए के, अमीरस सींचत।

अपने अंग रूहें जान के, नेह नए नए उपजावत॥५॥

धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों के नेत्रों से नेत्र मिलाकर अपने प्रेम के अमृत-रस से उन्हें सींचते हैं। अँगनायें उनकी हृदय स्वरूपा (अँगरूपा) हैं, इसलिये वे सखियों को आनन्दित करने के लिये तरह-तरह से प्रेम करते हैं।

सुख केते कहूं स्यामाजीय के, हक सुख बिना हिसाब।

ए सुख सोई जानही, जो पिए इन साकी सराब॥६॥

युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के सुख अनन्त हैं।

उसका कहाँ तक वर्णन किया जा सकता है। अक्षरातीत से प्रवाहित होने वाले प्रेम रस का जिसने पान किया होता है, एकमात्र वही उस आनन्द के विषय में जान सकता है।

रस भरी अति रसना, अति मीठी वल्लभ बान।

ए सुख कह्यो न जावहीं, जो सुख देत जुबांन॥७॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत की वाणी अत्यधिक प्रेम के रस से ओत-प्रोत है और बहुत अधिक मीठी है। धाम धनी अपनी अमृतमयी मधुर वाणी से सखियों को जो सुख देते हैं, उसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

कई सुख मीठी बान के, हक देत कर प्यार।

ज्यों मासूक देत आसिक को, एक तन यार को यार॥८॥

धाम धनी की वाणी अमृत के समान मीठी है, जिसके अनन्त (कई) सुख हैं। इस सुख को वे बहुत प्रेम से अपनी अँगनाओं को वैसे ही देते हैं, जैसे कोई माशूक अपने आशिक को देता है या दो तन होते हुए भी एक तन (प्राण) कहे जाने वाले दोस्त (मित्र) को दोस्त देता है।

भावार्थ— आशिक इश्क करता है और माशूक अपने अन्दर का आनन्द उसे समर्पित करता है। इस प्रकार प्रेम और आनन्द के दो रूपों में अक्षरातीत का स्वरूप लीला करता है। जिस प्रकार प्रगाढ़ स्नेह के बन्धन में बन्धे हुए दो मित्रों का सम्बन्ध इतना गहरा होता है कि उनके सम्बन्ध में यह बात कही जाती है कि कहने को तो ये दो तन हैं, किन्तु इनका दिल या प्राण एक ही है। दोनों का जीवन एक-दूसरे पर निर्भर करता है, अर्थात् यदि

एक तन छोड़ देता है तो दूसरा भी छोड़ देता है। दूसरे शब्दों में दो तन होते हुए भी उन्हें एक तन से सम्बोधित करना पड़ता है। इस चौपाई के चौथे चरण में "एक तन" कहे जाने का यही भाव है।

यद्यपि परमधाम में मित्र (दोस्त) भाव की लीला नहीं है, किन्तु यहाँ के भावों से वहाँ की लीला को दर्शाने का प्रयास किया गया है। अँगना भाव या आशिक-माशूक (प्रिया-प्रियतम) का भाव दोस्त (मित्र) भाव से अधिक गहरा होता है।

नैन रसीले रंग भरे, प्रेम प्रीत भीगल।

देत हैं जब हेत सुख, चुभ रहेत रूह के दिल॥९॥

प्रेम-प्रीति के रस से ओत-प्रोत धनी के सुन्दर नेत्रों में अनन्त आनन्द भरा हुआ है। जब श्री राज जी अपने प्रेम

का आनन्द देते हैं, तो वह आत्माओं के दिल में अंकित हो जाता है।

द्रष्टव्य- प्रेम की मधुर स्मृतियों से कोई भी अपने को अलग नहीं कर पाता है। इस चौपाई के चौथे चरण में "चुभ जाने" के कथन का यही आशय है।

इस्क प्याला रंग रस का, जब देत नैन मरोर।

फूल पोहोंचे तालू रूह के, कायम चढ़ाव होत जोर॥१०॥

धाम धनी जब अपने नेत्रों के संकेतों से अपनी आत्माओं को प्रेम और आनन्द के रस से भरा हुआ प्याला देते हैं, तो आत्मा के दिल रूपी तालू में वह आनन्द पहुँच जाता है और अखण्ड रूप से तीव्रतापूर्वक बढ़ता ही जाता है।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण से यह स्पष्ट है कि

यहाँ "फूल" शब्द का आशय कांसे के बर्तन से नहीं, बल्कि आनन्द से है। इसी प्रकार "तालू" शब्द का प्रयोग दिल के लिये किया गया है।

कई सुख अंग सरूप के, कई सुख रंग रसाल।

कई सुख मीठी जुबांन के, कै प्याले देत रस लाल॥११॥

धाम धनी के नख से शिख तक के अंगों में अनन्त प्रकार के सुख विद्यमान हैं। इसी प्रकार उनकी रस भरी शोभा में भी अनेक प्रकार के सुख भरे हुए हैं। अमृत से भी मीठी प्रियतम की वाणी में अथाह सुख का रस भरा हुआ है, जिसके प्याले भर-भरकर वे अपनी अँगनाओं को देते हैं।

कई सुख अमृत सींचत, ज्यों रोप सींचत बनमाली।

इन बिध नैनों सींचत, रूह क्यों न लेवे गुलाली॥१२॥

जिस प्रकार माली पौधे लगाकर उन्हें मधुर जल से सींचता है, उसी प्रकार धाम धनी अपने नेत्रों से प्रवाहित होने वाली प्रेम की अमृतमयी धारा से सखियों को सींचते हैं। भला ऐसी अवस्था में आत्मा अपने प्रियतम के प्रेम की लाली में लाल क्यों नहीं होगी।

जो कछू बोले रूह मुखथें, सो नीके सुनें हक कान।

ऐसा मीठा जवाब तोहे देवहीं, कोई न सुख इन समान॥१३॥

आत्मा अपने मुख से जो कुछ भी कहती है, उसे धाम धनी अपने कानों से बहुत अच्छी तरह सुनते हैं, और इतने मीठे शब्दों में उत्तर देते हैं कि उसे सुनकर आत्मा को ऐसा अनुपम आनन्द मिलता है जिसका वर्णन हो

पाना सम्भव नहीं है।

अरस-परस सुख देवहीं, नाहीं इन सुख को पार।

ए रस इस्क सागर को, अर्स रूहें पीवें बारंबार॥१४॥

सखियाँ और राजश्यामा जी आपस में प्रेम लीला द्वारा एक-दूसरे को आनन्द देते हैं। इस आनन्द की कोई सीमा नहीं है। यह आनन्द इश्क के सागर का बहता हुआ रस है, जिसको ब्रह्मसृष्टियाँ हमेशा ही बारम्बार पीती रहती हैं।

ए सुख सागर पांचमा, इस्क सागर दिल हक।

पेहेले चार देखें सागर, कोई ना हक दिल माफक॥१५॥

अक्षरातीत का दिल ही इश्क (प्रेम) का सागर है। यह पाँचवा सागर है और आनन्द स्वरूप है। इसके पहले चार

सागरों का वर्णन किया जा चुका है, किन्तु कोई भी इस इश्क के सागर के समान नहीं है।

भावार्थ— परमधाम की वहदत में कोई भी किसी से कम या अधिक नहीं है, किन्तु शोभा के वर्णन में कम-अधिक कहने की शैली अपनायी जाती है। इसी आधार पर जिस सागर का वर्णन किया जाता है, उसे सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है। वस्तुतः सभी समान हैं और एक-दूसरे में समाहित हैं।

हकें तोहे खेल देखाइया, बेवरा वास्ते इस्क।

क्यों न देखो पट खोल के, नजर खोली है हक॥१६॥

हे मेरी आत्मा! इश्क का निरूपण करने के लिये ही धाम धनी ने तुझे यह माया का खेल दिखाया है। प्रियतम ने तुम्हारी आत्मिक-दृष्टि भी खोल दी है। अब तू माया के

पर्दे को हटाकर इश्क की वास्तविक पहचान क्यों नहीं कर लेती।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में "देखाइया" शब्द है और तीसरे चरण में भी "देखो" शब्द है, किन्तु दोनों के भाव में अन्तर है। पहले चरण में माया का खेल देखने का प्रसंग है, जबकि तीसरे चरण में आत्म-दृष्टि द्वारा मारिफत के इश्क (अनन्य प्रेम) की पहचान करने से है।

इन ठौर बैठे देखाइया, साहेबी हक बुजरक।

पैठ हक दिल बीच में, पी प्याले इस्क॥१७॥

धाम धनी ने तुझे (मूल तन को) मूल मिलावा में ही बिठाकर अपनी महान साहिबी (स्वामित्व) दिखा दी है। अब तू अपने प्राण प्रियतम के दिल में बैठकर इश्क के प्याले को पी।

भावार्थ- इस चौपाई की पहली पंक्ति में परमधाम का प्रसंग है, जबकि दूसरी पंक्ति में इस खेल में जागनी लीला का प्रसंग है, जिसमें आत्मा चितवनि में डूबकर प्रेम के प्याले पीती है। खेल खत्म होने के पश्चात् यह स्थिति परमधाम के लिये होगी। यह बात इसी प्रकरण की चौपाई १९, २५, और २६ में भी कही गयी है।

तो हकें कह्या अर्स अपना, इस्क दिल मोमिन।

सो इस्क करे जाहेर, दिल पैठ हक के तन॥१८॥

इसलिये तो श्री राज जी ने ब्रह्मसृष्टियों के प्रेम भरे दिल को अपना धाम कहा है। यही कारण है कि वे आत्माओं के धाम हृदय में विराजमान होकर इश्क को जाहिर कर रहे हैं।

भावार्थ- परात्म को अक्षरातीत का तन कहा जाता है,

"तुम रुहें मेरे तन हो"। उसका स्वायिक स्वरूप आत्मा का तन है, जिसमें धनी विराजमान होकर लीला कर रहे हैं। इसलिये इस चौपाई के चौथे चरण में "हक के तन" का तात्पर्य आत्मा से है। इसी के दिल में धनी की बैठक होती है।

इस्क गुझ दिल हक का, सो करे जाहेर माहें खिलवत।
 सो खिलवत ल्याए इत आसिक, करी इस्कें जाहेर न्यामत॥१९॥

मेरे प्राण प्रियतम ने मेरे धाम हृदय को ही अपनी खिलवत बनाया है और इसमें विराजमान होकर तारतम ज्ञान के द्वारा अपने दिल में छिपे हुए इस्क के गुह्य रहस्यों को जाहिर कर (प्रकाश में ला) रहे हैं। एक आशिक के रूप में उन्होंने मेरे दिल को ही खिलवत की शोभा दी है और इस्क की इस अनमोल सम्पदा (नेमत)

को प्रकाश में ला रहे हैं।

इत दुनियां चौदे तबक में, एक दम उठत है जे।

जो हक सहूर कर देखिए, तो सब वास्ते इस्क के॥२०॥

यदि इस ब्रह्मवाणी से चिन्तन कर देखा जाये, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में यदि कोई प्राणी श्वास लेता है तो वह भी इस्क के निरूपण के लिये।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियों के अन्दर माया का खेल देखने की जो इच्छा थी, उसे पूरी करने के लिये ही यह ब्रह्माण्ड बनाया गया है। इस्क का वास्तविक निरूपण इस खेल में ही सम्भव हो सका है। यही कारण है कि इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक प्राणी का श्वास लेना भी इस्क की पहचान के इस खेल से जुड़ गया है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही

आशय है।

ए इस्क सब हक का, अर्स हादी रूहों सों।

ए अर्स दिल जाने मोमिन, जो हक की वाहेदत मों॥२१॥

यह धाम धनी का प्रेम ही है जो वे परमधाम में श्यामा जी एवं सखियों से करते हैं। इस बात को यथार्थ रूप से वे ब्रह्मसृष्टियाँ जानती हैं, जिनका हृदय ही परमधाम होता है और जिनकी परात्म मूल मिलावा में विराजमान होती है।

ए किया एते ही वास्ते, तुमारे दिल उपजाया एह।

ए खेल में देखे जुदे होए, लेने मेरा इस्क सनेह॥२२॥

इस इश्क की पहचान देने के लिये ही प्रियतम ने यह माया का खेल बनाया और तुम्हारे हृदय में खेल देखने

की इच्छा भी पैदा की, ताकि तुम परमधाम से अलग होकर मेरा प्रेम लो और इस खेल में मेरे प्रेम की पहचान कर लो।

ए इस्क सागर अपार है, वार न पाइए पार।

ए लेहेरी इस्क सागर की, हक देवें सोहागिन नार॥२३॥

इश्क का सागर अनन्त है। इसकी कोई सीमा नहीं है। प्रेम के सागर की लहरों का अनुभव धाम धनी मात्र अपनी अँगनाओं को ही देते हैं।

भावार्थ- परमधाम के नूरी तन ही इश्क के सागर में डूबा करते हैं। इस खेल में तारतम ज्ञान एवं चितवनि द्वारा उसकी लहरों का अनुभव किया जाता है।

जो हक तोहे अन्तर खोलावहीं, तो आवे हक लज्जत।

और बड़े सुख कई अर्स के, पर ए निपट बड़ी न्यामत॥२४॥

हे मेरी आत्मा! यदि धाम धनी यह माया का पर्दा हटा दें और तुम्हारी आत्मिक दृष्टि खोल दें, तो तुम्हें इस संसार में ही श्री राज जी तथा परमधाम के कई सुखों का प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है, किन्तु निश्चित रूप से इस प्रकार की उपलब्धि बहुत बड़ी आध्यात्मिक सम्पदा है।

भावार्थ- इस चौपाई का कथन सुन्दरसाथ के लिये है, महामति जी के लिये नहीं। इस चौपाई में कथित उपलब्धि को मात्र प्रेम की राह पर चलकर ही पाया जा सकता है।

लेहेरी इस्क सागर की, जो तूं लेवे रूह इत।

तो तूं देखे सुख इस्क के, ए होए ना बिना निसबत॥२५॥

यदि तू प्रेम के सागर की लहरों का अनुभव इस संसार में ले लेती है, तो तुझे निश्चित ही प्रेम के अखण्ड सुखों की पहचान हो सकती है, किन्तु यह मूल सम्बन्ध के बिना नहीं हो सकता।

भावार्थ- विरह वेदना में जब युगल स्वरूप की शोभा को अपने हृदय में बसाया जाता है, तो प्रेम (इश्क) की लहरों का अनुभव होता है और प्रेम के अनन्त आनन्द की पहचान होती है, किन्तु इस मार्ग पर मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही चल पाती हैं। शेष लोग कर्मकाण्ड (शरियत) की दीवारों को नहीं तोड़ पाते।

और सुख इन लेहेरन को, आवत खिलवत याद।

इन हक इस्क सागर की, कई नेहेरें सुख स्वाद॥२६॥

इश्क की लहरों का सुख यह भी होता कि आत्मा के

धाम हृदय में मूल मिलावा की शोभा अखण्ड रूप से बस जाती है। धाम धनी के इस इश्क सागर से अखण्ड आनन्द का रसास्वादन कराने वाली अनन्त (अनेक) नहरें प्रवाहित होती रहती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के दूसरे चरण का भाव केवल मानसिक या बौद्धिक धरातल पर मूल मिलावा की याद आना नहीं है, बल्कि आत्मा के धाम हृदय में मूल मिलावा की छवि अंकित होने से है। ब्रह्मवाणी के चिन्तन-मनन और विवेचन से जीव के दिल में मूल मिलावा की याद तो आती रहती है, किन्तु यहाँ प्रसंग इश्क की लहरों में याद आने से है।

यों सुख इस्क सागर को, धनी प्यारें देत रूहन।

सो इत देखाए मेहेर कर, जो इस्कें किए रोसन॥२७॥

इस प्रकार परमधाम में धाम धनी इश्क सागर के जिस सुख को बहुत प्रेमपूर्वक अपनी अँगनाओं को देते हैं, उसकी पहचान उन्होंने इस संसार में करा दी है। श्री राज जी ने अपनी मेहर से ब्रह्मवाणी के द्वारा इश्क को प्रकाशित (जाहिर) कर दिया, जिससे सभी को उसकी पहचान हो गयी।

जो सुख इस्क सागर को, माहें हेत प्रीत तरंग।

ए जो अर्स अरवाहों को, आए खिलवत के रस रंग॥२८॥

इश्क के सागर में प्रेम और प्रीति की अनन्त तरंगे लहराती रहती हैं। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के लिये इस संसार में इश्क के सागर का सुख यही है कि उन्हें मूल मिलावा में विराजमान श्री राज जी के हृदय में उमड़ने वाली प्रेम-आनन्द की लहरों का अनुभव हो जाये।

जो हक तोहे देवें हिंमत, तो रूह तूं पी सराब।

ए कायम मस्ती अर्स की, जो साकी पिलावे आब॥२९॥

हे मेरी आत्मा! यदि धाम धनी तुम्हें साहस देते हैं, तो तू इस प्रेममयी अमृत का पान कर। जब प्रियतम स्वयं अपने हाथों से तुम्हें परमधाम का प्रेम रूपी जल पिला रहे हैं, तो यह निश्चित है कि इसमें अखण्ड आनन्द छिपा हुआ है।

भावार्थ- इस चौपाई के दूसरे चरण में परमधाम के अनन्य प्रेम को शराब तथा चौथे चरण में जल कहा गया है। अखण्ड प्रेम का रस पा लेने के पश्चात् उसका नशा कभी भी नहीं उतरता, इसलिये उसे शराब कहकर सम्बोधित किया गया है। इसी प्रकार जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, यही कारण है कि प्रेम रस को जल की उपमा दी गयी है।

सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सों करो विचार॥३०॥

परमधाम में अक्षरातीत के प्रेम का अनन्त आनन्द है, किन्तु हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से विचार करें तो उन सुखों की पहचान इस जागनी ब्रह्माण्ड में ही होनी है।

भावार्थ— परमधाम में नूरी तनों से प्रेम और आनन्द का विलास है, किन्तु इस जागनी ब्रह्माण्ड में तारतम वाणी के प्रकाश में हम अपने ज्ञान-चक्षुओं से इश्क और आनन्द की मारिफत को जान सकते हैं। प्रेममयी चितवनि द्वारा अष्ट प्रहर की लीला सहित सम्पूर्ण पक्षों का साक्षात्कार भी कर सकते हैं और उस अवस्था की प्राप्ति कर सकते हैं जिसमें आत्मा और परात्म में भेद नहीं रह जाता।

जेते सुख इस्क के, लेते अर्स के माहें।

सो देखन की ठौर एह है, और ऐसा न देख्या क्याहें॥३१॥

परमधाम में आप प्रेम के जो सुख लेते थे, उसे देखने (पहचानने) की जगह मात्र यह जागनी ब्रह्माण्ड है। इस जागनी ब्रह्माण्ड जैसा और कोई भी स्थान नहीं है, जहाँ उस आनन्द की पूर्ण पहचान हो सके।

भावार्थ- परमधाम में मारिफत की पहचान सम्भव नहीं थी। ब्रज में पूरी नींद थी। इसी प्रकार रास में आधी नींद थी, किन्तु इस जागनी ब्रह्माण्ड में तारतम वाणी के प्रकाश ने सभी रहस्यों को स्पष्ट कर दिया।

कबूं अर्स में न होए जुदागी, ना जुदागी ए न्यामत।

ए बातें दोऊ अनहोनियां, सो हक हम वास्ते करत॥३२॥

परमधाम में वियोग होना कभी सम्भव नहीं है और बिना

वियोग के इश्क की वास्तविक पहचान नहीं हो सकती। परमधाम में ये दोनों बातें सम्भव नहीं थीं, इसलिये धाम धनी ने हमारे लिये ये दोनों कार्य कर दिये, अर्थात् कालमाया के ब्रह्माण्ड में वियोग का अनुभव कराकर तारतम ज्ञान के प्रकाश में इश्क की मारिफत एवं उसके अनन्त आनन्द की पहचान करा दी।

इस्क पाइए जुदागिएं, सो तुम पाई इत।

वतन हकीकत सब दई, ऐसा दाव न पाइए कित॥ ३३॥

वियोग में ही इश्क की पहचान होती है। उसे आपने इस जागनी ब्रह्माण्ड में पा लिया है। तारतम ज्ञान के द्वारा धाम धनी ने परमधाम के सारे रहस्यों से अवगत भी करा दिया है। अब कभी भी इस प्रकार का सुनहरा अवसर नहीं मिलने वाला है।

फेर कब जुदागी पाओगे, छोड़ के हक अर्स।

बैठे खेल में पिओगे, हक इस्क का रस॥३४॥

हे साथ जी! आप इस बात पर विचार कीजिए कि अब आपको ऐसा अवसर कभी दूसरी बार नहीं मिलने वाला है, जिसमें आप परमधाम को छोड़कर वियोग का अनुभव कर सकें और इस मायावी जगत् में रहते हुए भी धाम धनी के इश्क का रसपान कर सकें।

भावार्थ- आत्म-चक्षुओं द्वारा युगल स्वरूप को अपलक देखना ही इश्क का रसपान करना है। इस अवस्था की प्राप्ति बाह्य आडम्बर और नवधा भक्ति के कर्मकाण्डों से नहीं होती, बल्कि विरह के आँसुओं में युगल स्वरूप की शोभा को दिल में बसाने से होती है।

याद करो इस्क को, कायम अर्स में लेते जो सुख।

अलेखे अनगिनती, सो देत लज्जत माहें दुख॥३५॥

आप इस इश्क को याद कीजिए, जिसके शब्दातीत और अनन्त सुखों का रसास्वादन आप अपने अखण्ड परमधाम में लेते रहे हैं। अब धाम धनी इस दुःखमय संसार में भी उन सुखों का रसास्वादन करा रहे हैं।

भावार्थ— यद्यपि इस पञ्चभौतिक तन से परमधाम के सुखों का विलास तो नहीं हो सकता, किन्तु उसके स्वाद का अनुभव हो ही जाता है। वह भी इतना अधिक (अनन्त) होता है कि जीव उसे सम्भाल ही नहीं पाता।

जो सहूर करो तुम दिल से, खेल में किए बेसक।

तो फुरसत न पाओ दम की, सुख इस्क गिनती हक॥३६॥

हे साथ जी! यदि आप अपने दिल में इस बात का

चिन्तन करें, तो उसका यही निष्कर्ष निकलेगा कि धाम धनी ने आपको इस संसार में पूर्णतया संशय रहित कर दिया है। उन्होंने इश्क के इतने सुख दिये हैं कि यदि आप उन्हें गिनना प्रारम्भ करें, तो आपको श्वांस लेने का भी अवकाश नहीं मिलेगा।

भावार्थ- "सांस लेने की फुर्सत न होना" एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है, पल भर की भी छुट्टी न मिलना।

ए किया तुमारे वास्ते, जो धनी खोले नजर एह।

तो कई देखो माहें बातून, हक का प्रेम सनेह॥३७॥

यह सब कुछ श्री राज जी ने आपके लिये ही किया है। यदि धाम धनी अपनी कृपा (मेहर) से आपकी आत्मिक दृष्टि खोल दें, तो आपको इस संसार में धनी के छिपे हुए प्रेम-स्नेह की बहुत सी रहस्यमयी बातों का अनुभव

होगा।

भावार्थ- हम अपनी मायावी बुद्धि से अक्षरातीत के प्रेम को पहचान नहीं पाते। इसका बोध तो आत्म-दृष्टि के द्वारा ही होता है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है-

महामत कहे ए मोमिनो, तुम पर दम दम जो बरतत।

सो सब इस्क हक का, पल पल मेहेर करत॥

खिलवत १२/१००

ए नजर तुमें तब खुले, जो पूरन करें हक मेहेर।

तो एक हक के इस्क बिना, और देखो सब जेहेर॥३८॥

आपकी आत्मिक दृष्टि तभी खुलेगी, जब आप पर धाम धनी की पूर्ण मेहर हो। आत्मिक दृष्टि खुल जाने पर आपको धाम धनी के प्रेम के अतिरिक्त सारा विश्व विष के

समान कष्टकारी लगने लगेगा।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब पल भर में मेहर करोड़ों गुना बढ़ जाती है और आठों सागर वहदत के अन्दर हैं, तो यहाँ पूर्ण मेहर का तात्पर्य क्या है? क्या अक्षरातीत की मेहर भी अधूरी होती है?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि अक्षरातीत की मेहर दो प्रकार की होती है- १. बाह्य (जाहिरी) २. आन्तरिक (बातिनी)। जब तक आन्तरिक कृपा (मेहर) न हो, तब तक बाह्य कृपा को अधूरा ही कहा जायेगा। यद्यपि परमधाम में वहदत अवश्य है, किन्तु इस संसार में "करनी माफक कृपा" के अनुसार किसी को ज्ञान मिलता है तो किसी को प्रेम। इसी प्रकार किसी पर मात्र बाह्य कृपा होती है, तो किसी पर आन्तरिक। किसी-किसी पर दोनों भी होती हैं।

हकें मेहेर बिध बिध करी, पर किन किन खोली न नजर।
सो भी वास्ते इस्क के, करसी बातें हाँसी कर॥३९॥

धाम धनी ने सुन्दरसाथ पर अनेक प्रकार से कृपा की है, किन्तु किसी-किसी ने अपनी आत्मिक दृष्टि नहीं खोली है। यह भी इश्क के निरूपण के लिये ही हुआ है। जब हम परमधाम में जाग्रत होंगे, तो हँसते हुए इसकी बातें करेंगे।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि आत्मिक दृष्टि कौन खोलता है- श्री राज जी या स्वयं आत्मा? यदि धाम धनी मेहर करते हैं, तो किसी पर कम और किसी पर अधिक मेहर क्यों दिखायी देती है?

यद्यपि इसी प्रकरण की चौपाई ३७ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि धाम धनी ही आत्मिक नजर खोलते हैं, किन्तु चौपाई ४२ में स्वयं खोलने की बात कही गयी है।

इसी प्रकार किरंतन ८३/१ का कथन है- "अंतर आंखा खोलसी, ए सुख सोई देखे।" आन्तरिक रूप से इन कथनों में कोई भी विरोधाभास नहीं है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि धाम धनी के हुक्म के बिना कुछ भी सम्भव नहीं होता। इस प्रकार यह सिद्ध है कि आत्मिक दृष्टि उनकी कृपा से ही खुलती है। आत्मा को जागनी की राह पर चलने के लिये प्रेरित करने के प्रसंग में यही कहा जाता है कि आत्मा को अपनी आत्मिक दृष्टि खोलनी होगी।

धाम धनी की मेहर सब पर समान है, किन्तु अपनी-अपनी करनी के अनुकूल ही लाभ मिलता है। "मेहर सब पर मेहेबूब की, पर पावे करनी माफक।" यद्यपि इस जागनी लीला में श्री महामति जी, श्री लालदास जी, महाराजा छत्रसाल जी, एवं मुकुन्द दास जी पर अलग-

अलग रूपों में पात्रता के अनुसार मेहर हुई है। मेहरबान सबके लिये बराबर है, किन्तु अपनी करनी ही मेहर का द्वार निश्चित करती है।

खेल बनत याही बिध, एक भागे एक लरे।

इनकी हाँसी बड़ी होएसी, जब घरों बैठ बतां करे॥४०॥

इस जागनी लीला में माया का खेल इस प्रकार चल रहा है कि कोई सुन्दरसाथ तो सत्य से विमुख होकर भाग रहा है और कोई विवाद कर रहा है। जब परमधाम में सभी जाग्रत होंगे और इस खेल की बातें करेंगे, तो ऐसा करने वालों की बहुत अधिक हँसी होगी।

भावार्थ— यह संसार विषमताओं और संघर्षों से भरा हुआ है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रेम—घृणा, सत्य—असत्य, ज्ञान—अज्ञान, गुण—अवगुण, पुण्य—पाप आदि

से सभी को कहीं न कहीं जूझना पड़ता है। खेल का रस भी इन्हीं संघर्षों में छिपा हुआ है। यद्यपि सभी आत्मायें समान हैं, किन्तु उनके जीवों के संस्कार अलग-अलग होते हैं जिसके कारण सभी का आचरण अलग-अलग दिखायी पड़ता है। कोई माया के प्रभाव से सत्य को पूर्णतया नकार देता है, तो कोई अपनी मिथ्या बात को भी सत्य सिद्ध करने के लिये विवाद करता है। सभी एक-दूसरे के जीव के स्वभाव को ही देखते हैं, इसलिये राग-द्वेष के बन्धनों में बन्धे रहते हैं। परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् उन्हें सबके बीच हँसी का पात्र बनना पड़ेगा, क्योंकि उनके द्वारा की गयी भूल सबके सामने होगी।

ए खेल सोई हाँसी सोई, और सोई हक का इस्क।

सो सब वास्ते हाँसीय के, जो इत तुमें किए बेसक॥४१॥

यह वही खेल चल रहा है, जो आपने इश्क-रब्द के समय धाम धनी से माँगा था। श्री राज जी ने जिस हँसी की चेतावनी दी थी, वही हँसी की स्थिति अब बनी हुई है। अब उसी इश्क का निरूपण हो रहा है, जो धाम धनी ने दिल में लिया था। तारतम ज्ञान से धाम धनी ने जो आपको संशयरहित कर दिया है, वह भी हँसी का कारण बनेगा।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी से संशयरहित हो जाने के पश्चात् भी सुन्दरसाथ धनी के प्रेम में स्वयं को नहीं डुबा पा रहा है, इसलिये उसकी बहुत बड़ी हँसी होनी है। बेसुध व्यक्ति को तो क्षमा किया जा सकता है, किन्तु समझदार के लिये क्षमा शब्द नहीं होता। इसी आधार पर बेशक होने

पर भी यदि हम प्रेम की राह नहीं अपनाते हैं, तो बहुत बड़ी हँसी होनी निश्चित है।

जो देखे इत आंखां खोल के, तो देखे हक का इस्क अपार।

सोई हाँसी देखे आप पर, तो क्यों कहूँ औरों सुमार॥४२॥

जो सुन्दरसाथ अपनी आत्मिक दृष्टि खोलकर इस खेल को देखेगा, उसे यही अनुभव होगा कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में धाम धनी का अनन्त इश्क लीला कर रहा है। वह अपने से होने वाली भूलों पर स्वयं हँसी करेगा और यही सोचेगा कि जब मुझसे इतनी अधिक भूलें हुई हैं तो दूसरों की थोड़ी सी भूलों को मैं क्यों कहूँ (उनकी हँसी क्यों करूँ)।

मैं बोहोत हाँसी देखी आप पर, अनगिनती हक इस्क।

इलम धनी के देखाइया, मैं दोऊ देखे बेसक॥४३॥

मैंने अपने आत्म-चक्षुओं से देखा है कि अब तक मुझसे जो भूलें हुई हैं, उसके कारण मेरी बहुत हाँसी होने वाली है। मैंने अपने ऊपर धनी का अनन्त प्रेम भी देखा है। इस प्रकार मैंने धाम धनी के तारतम ज्ञान के प्रकाश में इन दोनों बातों को देखा है। इसमें अब कोई भी संशय नहीं है।

मोको धनिँ देखाइया, सब इस्क चौदे तबक।

इत जरा न बिना इस्क, अपना ऐसा देखाया हक॥४४॥

श्री राज जी ने मेरी आत्मा को यह अनुभव कराया कि चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड का एक-एक कण अक्षरातीत के इश्क की महिमा का बखान कर रहा है।

प्रियतम ने अपने इश्क का निरूपण इस प्रकार दे दिया है।

भावार्थ- इस चौपाई के बाह्य शब्दों के आधार पर यह नहीं मान लेना चाहिए कि इस ब्रह्माण्ड का एक-एक कण इश्कमयी है। श्रीमुखवाणी का कथन है-

ब्रह्म इस्क एक संग, सोतो बसत वतन अभंग।

इस्क नाहीं मिने सृष्ट सुपन, जो ढूँढया चौदे भवन।

इस्क है तित सदा अखंड, नाहीं दुनियां बीच ब्रह्मांड।

परिक्रमा १/२,५,६

प्रेम ब्रह्म दोऊ एक हैं, सो दोऊ दुनी में नाहें।

सो तो निराकार के पार के पार, इत दुनी पावे क्योंकर।

परिक्रमा ३९/१०,१२

इससे यह पूर्णतया स्पष्ट है कि इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड

में इश्क नहीं है, किन्तु इस चौपाई में सारे ब्रह्माण्ड के कण-कण में इश्क के विद्यमान होने का भाव यह है कि यह सारा ब्रह्माण्ड ही इश्क के निरूपण के लिये बनाया गया है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में होने वाली प्रत्येक लीला का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में इश्क के ब्योरे से जुड़ा हुआ है। अक्षरातीत के अनन्त इश्क की मारिफत (विज्ञान) की पहचान कराने के कारण ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को इश्कमयी कहा गया है। यह कथन वैसे ही है जैसे यदि किसी धार्मिक या सामाजिक कार्यक्रम में भारत के सभी प्रान्तों के लोग एकत्रित हो जाते हैं तो यही कहा जाता है कि आज सारा भारत यहाँ आ गया है, किन्तु यह कथन व्यवहार में पूर्णतः सत्य नहीं होता। इसी प्रकार चौदह लोक के इश्कमयी हो जाने के सन्दर्भ में भी यही बात माननी चाहिए।

जो जागो सो देखियो, मेरी तो निसां भई।

रुह देखे सो दिल लग न आवहीं, तो क्यों सके जुबां कही॥४५॥

हे साथ जी! आपमें जो भी जाग्रत हो गया हो, वह इस इश्क की लीला को देखे। मुझे तो अब सन्तोष हो गया है। मेरी आत्मा जो देखती है (अनुभव करती है), वह पूरी तरह से दिल में नहीं आ पाता और जो दिल में ही न आये, उसका जिह्वा से वर्णन हो पाना कैसे सम्भव है।

ए तो केहेती हों खेल का, और कहा कहूं अर्स की इत।

अर्स का इस्क तो कहों, जो ठौर जरे की पाऊं कित॥४६॥

ये जो इश्क की बातें मैंने कही हैं, वे जागनी लीला से सम्बन्धित हैं। परमधाम के अनन्त प्रेम को मैं इस नश्वर जगत् में कैसे कहूँ। परमधाम के प्रेम का वर्णन तो तब करूँ, यदि वहाँ के एक कण के बराबर इश्क भी इस

संसार में कहीं पर होता।

भावार्थ- परमधाम का प्रेम शब्दातीत, अनुपम, और अनन्त है। उसे इस स्वप्नवत् जगत् में यथार्थ रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस चौपाई के चौथे चरण का यही भाव है।

मोमिन होए सो समझियो, ए बीतक कहे महामत।

अब बात न रही बोलन की, कह्या चलते जान निसबत॥४७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आप में जो भी ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, उन्हें इन बातों को समझ लेना चाहिए। परमधाम के मूल सम्बन्ध से ही मैंने अपनी आपबीती ये सारी बातें कही हैं। अब मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है।

प्रकरण ॥१२॥ चौपाई ॥९८९॥

सागर छठा खुदाई इलम का

इस प्रकरण में ब्राह्मी ज्ञान (खुदाई इल्म) के सागर का वर्णन किया गया है।

सागर छठा है अति बड़ा, जो खुदाई इलम।

जरा सक इनमें नहीं, जिनमें हक हुकम॥१॥

यह छठा सागर ब्राह्मी ज्ञान का सागर है, जो अक्षरातीत के हृदय में उमड़ा करता है। इसमें नाम मात्र के लिये भी संशय नहीं होता, क्योंकि इसमें धाम धनी का हुक्म निहित होता है।

भावार्थ- परमसत्य (मारिफत) के स्वरूप अक्षरातीत के हृदय में लहराने वाले ज्ञान के सागर के विषय में कल्पना में भी संशय नहीं किया जा सकता। परमसत्य (निरपेक्ष सत्य) का ज्ञान भी परम सत्य ही होता है। इसी

इल्म के सागर की एक बूंद महामति जी के धाम हृदय में आयी और सागर का स्वरूप बन गयी। इस सम्बन्ध में श्रृंगार का कथन है—

एक बूंद आया हक दिल से, तिन कायम किए थिर चर।
इन एक बूंद की सिफत देखियो, ऐसे हक दिल में कई सागर॥

सिनगार ११/४४

इस सम्पूर्ण प्रकरण में एक बूंद स्वरूप श्रीमुखवाणी के ज्ञान की महिमा को दर्शाया गया है, जो संसार में स्वयं ज्ञान का सागर बन गयी है। इससे केवल आँकलन किया जा सकता है कि अक्षरातीत के दिल में उमड़ने वाले इल्म के सागर की गरिमा क्या है। इल्म और इश्क (ज्ञान और प्रेम) एक-दूसरे के प्राण हैं। परमधाम की सभी इश्कमयी लीलाओं के मूल में श्री राज जी की इच्छा (हुक्म) ही कार्य करती है। इस इच्छा का सम्बन्ध ज्ञान

से होता है। यही कारण है कि इस चौपाई के चौथे चरण में इल्म के सागर में श्री राज जी के हुकम का अस्तित्व माना गया है।

जेता तले हुकम के, ए जो कादर की कुदरत।

ए सब बेसक तोलिया, सक न पाइए कित॥२॥

अक्षर ब्रह्म की योगमाया का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड धाम धनी के हुकम से है। धाम धनी द्वारा दिये हुए तारतम ज्ञान से मैंने इसे यथार्थ रूप में जान लिया है। अब मुझे उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का संशय नहीं है।

भावार्थ— अक्षरातीत के सत् अंग अक्षर ब्रह्म हैं, इसलिये परब्रह्म के हुकम की लीला अक्षर ब्रह्म के द्वारा सम्पादित होती है। इस सम्बन्ध में बीतक ६२/५१ में कहा गया है कि "हुकम नूर खुदाए का, जो है नूरजलाल।" इस चौपाई

के पहले चरण में अक्षरातीत के हुक्म में योगमाया के होने के कथन का यही भाव है।

अक्षर ब्रह्म (कादर) की लीला योगमाया (कुदरत) के ब्रह्माण्ड में होती है और उनके मन के स्वप्न के स्वरूप आदिनारायण (कादर) की लीला कालमाया (कुदरत) के ब्रह्माण्ड में होती है। इस प्रकार अक्षर ब्रह्म के हुक्म का स्वाप्निक स्वरूप आदिनारायण को माना जा सकता है, किन्तु अक्षर ब्रह्म के हुक्म के जाग्रत स्वरूपों में उनके चारों अन्तःकरण (सत्स्वरूप, केवल, सबलिक, और अव्याकृत) माने जायेंगे।

आसमान जिमी के बीच में, बेसक हुता न कोए।

जब लग सक दुनियां मिने, तो कायम क्यों कर होए॥३॥

इस ब्रह्माण्ड में आज तक कोई भी संशय रहित नहीं

था। जब तक संसार के प्राणियों का संशय नहीं मिटेगा, तब तक उन्हें अखण्ड मुक्ति कैसे मिल सकती है।

भावार्थ- "आकाश जिमी के बीच में" का तात्पर्य चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड से है। स्वर्ग, वैकुण्ठ आदि लोक आकाश में स्थित हैं, जबकि पाताल लोक पृथ्वी से ही सम्बन्धित है।

अव्वल से आखिर लग, इत जरा न काहूं सक।

रुहअल्ला के इलम से, हुए कायम चौदे तबक॥४॥

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक सारा संसार संशय ग्रस्त था, किन्तु श्यामा जी के तारतम ज्ञान से अब किसी के भी मन में कोई संशय नहीं रह गया। इस प्रकार चौदह लोक का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अखण्ड मुक्ति पाने का अधिकारी बन गया है।

भावार्थ- "सुनियो दुनिया आखिरी" (सनंध ग्रन्थ) के कथन के आधार पर वर्तमान समय "आखिरी" होगा और पूर्व की चौपाई के आधार पर "अव्वल" शब्द का तात्पर्य सृष्टि के प्रारम्भ से होगा। यद्यपि प्रसंग के अनुसार कहीं-कहीं पर इसका भाव व्रज में आने से लिया जाता है, तो कहीं बसरी सूरत से, और कहीं परमधाम से।

इस्क काहूँ ना हुता, तो नाम आसिक कहा हक।

सो बल इन कुंजीय के, पाया इस्क चौदे तबक॥५॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में आज दिन तक किसी को भी वास्तविक प्रेम (इश्क) की पहचान नहीं थी। यह तारतम ज्ञान की ही महान शक्ति है, जिससे इस पूरे ब्रह्माण्ड को यह सौभाग्य प्राप्त हो गया है कि वह इश्क की पहचान कर सकेगा। इस ज्ञान के द्वारा स्वयं अक्षरातीत

ही आशिक के रूप में जाने गये हैं।

भावार्थ- सम्पूर्ण पृथ्वी के निवासी अभी भी अक्षरातीत और उनके प्रेम के सम्बन्ध में अनजान हैं। इसका कारण ब्रह्मवाणी का न फैल पाना है। वस्तुतः यह घटना महाप्रलय के पश्चात् योगमाया के ब्रह्माण्ड में होगी, जहाँ चौदह लोक का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अक्षरातीत और उनके प्रेम की पहचान करेगा।

ए दुनियां पैदा किन करी, हुती न काहूँ खबर।

सो सक मेटी सबन की, इलम खुदाई आखिर॥६॥

अब तक किसी को भी यह ज्ञान नहीं था कि इस सृष्टि को किसने बनाया है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में अवतरित होने वाले इस ब्राह्मी ज्ञान (ब्रह्मवाणी) ने सृष्टि रचना के सम्बन्ध में सभी संशयों को मिटा दिया।

भावार्थ- तारतम ज्ञान के द्वारा ही मोहसागर में आदिनारायण की उत्पत्ति एवं सृष्टि के बनने के रहस्य का पता चला है। इसके पूर्व तो कोई सच्चिदानन्द परब्रह्म को सृष्टिकर्ता मानता था, तो कोई ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवी, सूर्य, गणेश, वायु, और अग्नि आदि को सृष्टिकर्ता मानता था। अक्षरातीत के सत् अंग अक्षर ब्रह्म की छत्रछाया में किस प्रकार असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं और लय होते हैं, इसका ज्ञान तारतम वाणी के बिना नहीं हो सकता। पौराणिकों की तरह सभी पन्थों के लोग सृष्टि रचना के सम्बन्ध में तरह-तरह की भ्रान्तियों से ग्रसित हैं।

वेद और कतेब में, कहूं सुध न होसी मुतलक।

खोल हकीकत मारफत, किन काढ़ी न सुभे सक॥७॥

चारों वेद एवं कतेब (तौरेत, इंजील, जंबूर, और कुरआन) को पढ़कर भी किसी को परम सत्य की पहचान नहीं थी। हकीकत (सत्य) एवं मारिफत (परमसत्य) के रहस्यों को स्पष्ट करके किसी ने भी संसार के लोगों के संशय रहित नहीं किया था।

भावार्थ— कर्मकाण्डों और जड़ पदार्थों की पूजा के जाल में उलझा हुआ संसार परमधाम के ज्ञान से पूर्णतया अनभिज्ञ था। तारतम ज्ञान के बिना सच्चिदानन्द परब्रह्म का वास्तविक ज्ञान हो पाना असम्भव है।

बड़े सात निसान आखिर के, जासों पाइए कयामत।

खिताब हादी जाहेर कर, दर्ई सबों को नसीहत॥८॥

कियामत (आखिरत) का समय आने के सम्बन्ध में सात बड़े-बड़े निशान बताये गये हैं। इनके रहस्यों को

खोलने की शोभा मात्र श्री महामति जी को है। उन्होंने ही धर्मग्रन्थों से इनके रहस्यों को खोलकर सबको वास्तविक सत्य का बोध कराया है।

भावार्थ- कुरआन-हदीसों में कियामत के सात निशान बताये गये हैं, जबकि बाइबल में चार निशान हैं-

१. Arch Angel (हुक्म की शक्ति)
 २. Gabriel (जिबरील)
 ३. Sharp Sword (Trumpet of God) (ज्ञान की तलवार अर्थात् जाग्रत बुद्धि)
 ४. Almighty (न्यायाधीश के रूप में स्वयं परब्रह्म)
- their comrades

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत्, बुद्ध गीता, तथा पुराण संहिता में कुछ दूसरे रूप में इसका वर्णन किया गया है।

आजूज माजूज लेसी सबों, उगे सूरज मगरब।

ईसा मारे दज्जाल को, एक दीन करसी सब॥९॥

कुरआन में लिखा है कि आजूज –माजूज सारी दुनिया को खा जायेंगे। सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम में उदय होगा। ईसा रुहअल्लाह (श्यामा जी) दज्जाल का कत्ल करेंगे और सारे संसार में एक सत्य धर्म की स्थापना करेंगे।

भावार्थ- यह सम्पूर्ण प्रसंग कुरआन के पारः अठ्ठारह (१८) "क़द अफ़-ल हल् मुह्लिनु-न" सूरः नूर चौबीस (२४) में वर्णित है।

दाभा होसी जाहेर, मेंहेंदी मोमिनो इमामत।

उड़ावे सूर असराफील, बेसक पाया बखत॥१०॥

उस समय दाब्ह-तुल-अर्ज नाम का जानवर जाहिर होगा और इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमाँ प्रकट

होकर ब्रह्मसृष्टियों को अलौकिक ज्ञान का उपदेश देंगे। इस्राफील फरिश्ता ज्ञान का सूर फूँकेगा, जिससे संसार को संशय रहित ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होगा।

भावार्थ- यह प्रसंग कुरआन मजीद में अठ्ठारह पार "क़द अफ़-ल हल् मुअमिनु-न" सूर: नूर चौबीस (२४) में वर्णित है कि हश्र के रोज से पहले क्रियामत के दो दौर (छोटा और बड़ा) होंगे। इसमें अरब की ज़मीन से दाब्ह-तुल-अर्ज़ जानवर उत्पन्न होगा। इसको आख़रूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमाँ व हज़रत ईसा रूहुल्लाह क़त्ल करेंगे।

तब इस्राफील तुरही को दो बार फूँक मारेंगे। पहली फूँक से पहाड़ उड़ जाएँगे और सभी मुर्दा हो जायेंगे, और दूसरी फूँक से दोबारा ज़िन्दा होंगे। तब अल्लाह तआला दीदार की मुबारक खुशी देंगे।

इसका बातिनी अभिप्राय श्री जी ने यह बताया है कि जानवर मनुष्य का ही शरीर है जो मायावी विकारों से ग्रस्त है। तारतम ज्ञान से ही इसके अहंकार इत्यादि अवगुणों को समाप्त करके अखण्ड ब्रह्मज्ञान का अनन्त अमृतपान किया जा सकता है, जो कि न्याय दिवस के पूर्व का प्रसंग है। न्याय दिवस पर परब्रह्म समस्त प्राणियों को अनुग्रहित करेंगे। तब सभी प्राणी परब्रह्म का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करेंगे।

काफर और मुनाफक, हँसते थे महंमद पर।

सोई दिन अब आए मिल्या, जो महंमदें कही थी आखिर॥११॥

जब मुहम्मद साहिब कियामत के समय में प्रकट होने वाले इन निशानों (चिह्नों) की बात करते थे, तो काफिर और मुनाफिक लोग उनकी बहुत हँसी उड़ाया करते थे।

उनके द्वारा कहा हुआ वह समय आ गया है।

भावार्थ- काफिर वह है, जो सच्चिदानन्द परब्रह्म के अस्तित्व को न माने। दूसरे मतों के अनुयायियों को घृणापूर्वक काफिर कहना कुरआन के विपरीत है। मुनाफिक वह है, जो सामने कुछ कहता है, किन्तु पीठ पीछे उसके विपरीत बोलता है। इनके द्वारा हँसी उड़ाने का प्रसंग कुरआन के पारः दस (१०) "वअ-लमू" सूरः तौबः (९) आयत ७८ एवं पारः ९ "कालल्म-लऊ" सूरः ८ अन्फाल आयत १०९ में है।

बसरी मलकी और हकी, कही महंमद तीन सूरत।

करें सिफायत आखिर, खासल खास उमत॥१२॥

मुहम्मद की तीन सूरतें कही गयी हैं- १. बशरी (रसूल मुहम्मद साहिब) २. मल्की (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र

जी) ३. हकी (श्री प्राणनाथ जी)। ये सूरतें कियामत के समय में धाम धनी से ब्रह्मसृष्टियों की सिफारिश करेंगी।

भावार्थ- श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में तीनों सूरतें विराजमान हैं। "तीसरी खूबी तीन हादी वजूद" (बड़ा कियामतनामा ५/३६) का कथन यही सिद्ध करता है। सिफारिश (अनुशंसा, सिखापन, आशीष) का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मसृष्टियों को श्री प्राणनाथ जी के द्वारा परमधाम की राह प्राप्त होगी और उनका पल-पल आशीष प्राप्त होगा। एक बन्दगी का हजार गुना फल प्राप्त करने का कथन भी इसी ओर संकेत करता है।

कर्म-कांड और सरीयत, किन किन लई तरीकत।

दुनियां चौदे तबक में, किन खोली ना हकीकत॥१३॥

तारतम ज्ञान के अवतरण से पूर्व हिन्दू जहाँ कर्मकाण्डों

के जाल में फँसे थे, तो मुसलमान शरियत के बन्धन में फँसे थे। इनमें से किसी-किसी ने ही उपासना (तरीकत) का मार्ग अपनाया, किन्तु चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई भी नहीं हुआ जिसने परब्रह्म के साक्षात्कार का वास्तविक मार्ग दर्शाया हो।

नासूत मलकूत लाए की, ना सुध थी जबरूत।

नाम पढ़े जानत हैं, कहें बका लाहूत॥१४॥

इस संसार के ज्ञानीजनों को पृथ्वी लोक, वैकुण्ठ, निराकार, तथा अक्षर धाम (योगमाया के ब्रह्माण्ड) का भी वास्तविक ज्ञान नहीं था। ये लोग धर्मग्रन्थों में अखण्ड परमधाम (बका लाहूत) शब्द पढ़ते तो रहे हैं, किन्तु वैकुण्ठ, निराकार, या योगमाया के ब्रह्माण्ड को ही परमधाम समझने की भूल करते आ रहे हैं।

ए सुध न पाई काहूँ ने, क्यों है कहां ठौर विध किन।

खोज खोज चौदे तबक का, दिल हुआ न किन रोसन॥१५॥

आज तक किसी भी व्यक्ति को यह सुध नहीं हो सकी कि अखण्ड परमधाम इस नश्वर जगत से परे क्यों है, कहाँ है, और वहाँ की लीला किस प्रकार की है। चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी खोज-खोज कर थक गये, किन्तु किसी के भी हृदय में इस ज्ञान का प्रकाश नहीं हो सका।

सो इलम खुदाई लदुन्नी, पोहोंच्या चौदे तबक।

सो इतथें मेहेर पसरी, सबे हुए बेसक॥१६॥

अब परब्रह्म का दिया हुआ तारतम ज्ञान चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आ गया। अब श्री महामति जी के धाम हृदय से ब्रह्मवाणी के रूप में अक्षरातीत की कृपा फैली

और सभी संशय रहित हो गये।

अव्वल कह्या फुरमान में, इत काजी होसी हक।

करसी कायम सबन को, ऐसी मेहेर होसी मुतलक॥१७॥

श्री प्राणनाथ जी के प्रकट होने से पूर्व धर्मग्रन्थों में यह बात बहुत पहले से ही लिख दी गयी थी कि इस ब्रह्माण्ड में सच्चिदानन्द परब्रह्म की ऐसी कृपा होने वाली है कि वे स्वयं न्यायाधीश बनकर इस संसार में आयेंगे और सभी को अखण्ड मुक्ति देंगे।

भावार्थ- सच्चिदानन्द परब्रह्म की आवेश शक्ति के इस संसार में प्रकट होकर सबको मुक्ति देने का प्रसंग पुराण संहिता ३१/५०, १०३, १०४, वृहत्सदाशिव संहिता श्लोक १९, माहेश्वर तन्त्र १५/३३, तथा बुद्धगीता श्लोक ४७, ४८ में है। इसी प्रकार कुरआन पार: १८ सूरे नूर

२४, पारः १६ सूरे मरियम, पारः २८ आयत ३० में है।

बाइबल में यह कथन है— Yes, be patient and take courage for the coming of the lord is near..... for see! the great judge is coming.
(James 5/8,9)

ए खेल किया किन वास्ते, और हुआ किनके हुकम।

ए सुध काहूँ ना परी, कहाँ अर्स बका खसम॥१८॥

तारतम ज्ञान के अवतरण के पहले किसी को भी यह सुध नहीं थी कि माया का यह खेल किसके लिये बनाया गया है और इसे बनाने में किसका आदेश है? अखण्ड परमधाम और अक्षरातीत कहाँ है?

गिरो रूहें फरिस्ते लैल में, किन वास्ते पाए उतर।

कुंन केहेते खेल पैदा किया, ए किनने किन खातिर॥१९॥

ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि इस मायावी जगत में किस लिये आयी हैं? "कुंन" कहकर किसने किनके लिये इस खेल को बनाया है?

किन कौल किया बीच अर्स के, अरवाहें जो मोमिन।

सो पढ़े वेद कतेब को, ए खोली ना हकीकत किन॥२०॥

यद्यपि इस संसार के लोग वेद और कतेब ग्रन्थों को पढ़ते तो हैं, लेकिन किसी ने भी इस रहस्य को उजागर नहीं किया कि परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों से इस खेल में आने के लिये किसने वायदा किया (वचन दिया) था?

ए इलमें सब विध समझे, सांचा इलम जो हक।

सब मर मर जाते हुते, किए इलमें बका मुतलक॥२१॥

अक्षरातीत का दिया हुआ यह तारतम ज्ञान पूर्णरूपेण सत्य है। इस ज्ञान के द्वारा समस्त संशयों का निवारण होता है और वास्तविक सत्य का बोध होता है। आज दिन तक सभी लोग जन्म-मरण के चक्र में फँसे हुए थे, किन्तु धाम धनी के इस अद्वितीय ज्ञान ने सबको निश्चित रूप से अखण्ड मुक्ति की सौगात दे दी है।

क्यों सदर-तुल-मुन्तहा, क्यों है अर्स अजीम।

क्यों कौल फैल हकके, क्यों हक सूरत हलीम॥२२॥

अक्षर धाम और परमधाम कहाँ है? अक्षरातीत की लीला (कथनी-करनी) कैसी है और उनकी अति कोमल शोभा कैसी है?

क्यों अर्स आगूं जोए है, क्यों अर्स ढिग है ताल।

क्यों पसु पंखी अर्स के, क्यों बाग लाल गुलाल॥२३॥

रंगमहल के सामने यमुना जी किस प्रकार बह रही हैं तथा रंगमहल के पास में हौज कौसर ताल की शोभा कैसी आयी है? परमधाम के पशु-पक्षी कैसे हैं और सुन्दर-सुन्दर फूलों की शोभा से युक्त वहाँ के नूरमयी बाग कैसे हैं?

क्यों खासल खास उमत, बीच नूरतजल्ला जे।

क्यों खास उमत दूसरी, जो कही बीच नूर के॥२४॥

परमधाम में रहने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ कैसी हैं? इसी प्रकार अक्षर धाम की ईश्वरी सृष्टि का स्वरूप क्या है?

ए नाम निसान सब लिखे, खुसबोए जिमी उज्जल।

और कहया पानी दूध सा, ताल जोए का जल॥२५॥

इस प्रकार धर्मग्रन्थों में नाम तथा पहचान के साथ सारा वर्णन है। यह भी लिखा है कि वहाँ की धरती अति उज्ज्वल है और सुगन्धि से भरपूर है। हौज कौसर तथा यमुना जी का जल दूध की तरह सफेद है।

भावार्थ— पुराण संहिता के अध्याय ३२ श्लोक ४५, २०२ तथा माहेश्वर तन्त्र में अध्याय ४२ श्लोक ८-३० में यमुना जी की शोभा का विस्तृत वर्णन है। इन दोनों ग्रन्थों में परमधाम की शोभा पर काफी प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार कुरआन के मंजिल सूर: तीस (३०) अम्म: सूर: कौसर १०८ आयत १-३ में यह वर्णन है।

जोए किनारे जरी दयोहरी, पूर जवेर दरखत।

ए नाम निसान सबे लिखे, पर कोई पावे ना हकीकत॥२६॥

यमुना जी का किनारा जवाहरातों से जड़ा हुआ है। किनारे पर दयोहरियाँ बनी हुई हैं तथा पाल के ऊपर जवाहरातों के वृक्षों की शोभा आयी है। धर्मग्रन्थों में नाम सहित पहचान भी लिखी है, किन्तु कोई भी वास्तविक सत्य को नहीं जान पाता।

भावार्थ- वेद, पुराण संहिता, तथा माहेश्वर तन्त्र को पढ़ने के पश्चात् भी हिन्दू जन जहाँ स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला के प्रति पूरी निष्ठा नहीं रख पाते और जड़-पूजा में ही उलझे रहते हैं, उसी प्रकार कुरआन-हदीसों को पढ़कर भी मुस्लिम जन परमधाम की शोभा एवं परब्रह्म के स्वरूप को स्वीकार नहीं कर पाते। तारतम ज्ञान की शरण लिये

बिना वास्तविक ज्ञान कदापि नहीं हो सकता।

नेक नेक निसान केहेत हों, वास्ते साहेदी महंमद।

ए पट खुल्या नूर पार का, कहीं कहां लग कहूं न हद॥२७॥

मुहम्मद साहिब ने कुरआन में जो साक्षियाँ दी हैं, उसकी थोड़ी-थोड़ी पहचान मैंने दी है। अब तारतम ज्ञान के द्वारा अक्षर धाम से भी परे का ज्ञान प्राप्त हो गया है। हे साथ जी! अब आप ही बताइये, इस ज्ञान की महिमा को कितना कहूँ। इसकी कोई सीमा नहीं है।

इलम खुदाई लदुन्नी, रूह अल्ला ल्याए इत।

उमियों पट खोल बका मिने, बैठाए कर निसबत॥२८॥

अक्षरातीत के दिये हुए तारतम ज्ञान को लेकर श्यामा जी इस संसार में आयीं। उन्होंने इस ज्ञान के द्वारा

सुन्दरसाथ, जो परमधाम को पूर्णतया भूल चुके थे, के मायावी पर्दे को हटा दिया तथा अक्षरातीत से सम्बन्ध जोड़कर परमधाम का ज्ञान दिया।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन परमधाम में ही विराजमान हैं। उन्हें परमधाम में बैठाने का तात्पर्य परमधाम का ज्ञान देने से है, जिसे उन्होंने व्रज-रास में भुला दिया था। इसी प्रकार उनकी धनी से अखण्ड निस्वत तो है, किन्तु इस चौपाई के चौथे चरण का भी यही आशय है कि जिस मूल सम्बन्ध को उन्होंने इस खेल में भुला दिया था, उसकी पहचान करा दी।

ए बल इन कुंजीय का, काहूं हुता न एते दिन।

रुहअल्ला पैगाम उमत को, द्वार खोल्या बका वतन॥२९॥

यह तारतम ज्ञान की ही महान शक्ति है, जिसने उस

परमधाम का ज्ञान दिया है, जो आज तक किसी के भी पास नहीं था। श्यामा जी के तारतम ज्ञान ने ब्रह्मसृष्टियों के लिये अखण्ड परमधाम का दरवाजा खोल दिया है।

भावार्थ- यद्यपि इस संसार में ज्ञान के सागर कहलाने वाले बड़े-बड़े ज्ञानी जन हो चुके हैं, किन्तु निराकार-बेहद को पार कर अक्षर-अक्षरातीत का वास्तविक ज्ञान आज तक किसी ने भी नहीं दिया है। श्यामा जी के इस तारतम ज्ञान की महिमा अद्वितीय है, जिसने सभी को परमधाम का ज्ञान सुलभ करा दिया है।

ए कायम अर्स अपार है, जो कहावत है वाहेदत।

कोई पोहोंचे न अर्स रूहों बिना, जिनकी ए निसबत॥३०॥

यह अखण्ड परमधाम अनन्त है और यहाँ कण-कण में एकदिली (वहदत) है। अक्षरातीत की अँगरूपा

ब्रह्मसृष्टियों का ही परमधाम से मूल सम्बन्ध है और उनके अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई भी नहीं आ सकता।

भावार्थ— परमधाम पूर्णातिपूर्ण है। उसमें किसी भी नयी वस्तु का प्रवेश या किसी का निष्कासन असम्भव है। जिनके मूल तन (परात्म) वहाँ विराजमान हैं, वे ब्रह्मात्मायें ही वहाँ जाती हैं। हाँ! साक्षात्कार करने का अधिकार सबको है। इस प्रकरण के बाद अगले प्रकरण की चौपाई २५, २६, २७ में यही बात दर्शायी गयी है।

ए बल देखो कुंजीय का, जिन बेवरा किया बेसक।

ए भी बेवरा देखाइया, जो गैब खिलवत का इस्क॥३१॥

हे साथ जी! इस तारतम वाणी की शक्ति देखिए, जिसने हृद से लेकर परमधाम तक का संशय रहित करने वाला सम्पूर्ण विवरण दे दिया। धाम धनी की छिपी हुई खिल्वत

के इश्क का भी विवरण (ब्योरा) तारतम ज्ञान ने दे दिया है।

ए बल देखो कुंजी का, जिन देखाई निसबत।

ए जो रूहें जात हक की, जिन बेसक देखी वाहेदत॥३२॥

इस तारतम वाणी का बल देखिए, जिसने धाम धनी से मूल सम्बन्ध की पहचान करायी। अक्षरातीत की अँगरूपा आत्माओं ने इस ज्ञान के द्वारा परमधाम की एकदिली (वहदत) को जाना है, यह निश्चित है।

ए बल देखो कुंजीय का, खूब देखी हक सूरत।

हक के दिल के भेद जो, सो इलमें देखी मारफत॥३३॥

यह तारतम ज्ञान की ही महिमा है, जिसके कारण ब्रह्मसृष्टियों ने धाम धनी के स्वरूप को बहुत अच्छी तरह

से देखा है। अक्षरातीत के दिल में छिपे हुए मारिफत के भेदों को इस ज्ञान के द्वारा ही जाना जा सका है।

भावार्थ- श्यामा जी और सखियाँ श्री राज जी के दिल की हकीकत के स्वरूप हैं। ये हकीकत के इश्क और आनन्द में इतनी डूब गयी थीं कि इन्हें इश्क , आनन्द, वहदत, निस्बत, और खिल्वत की मारिफत का कुछ भी पता नहीं था। मारिफत (परमसत्य) के उस स्वरूप की पहचान इस जागनी ब्रह्माण्ड में मात्र तारतम ज्ञान से ही हो सकी है, जो परमधाम, ब्रज, या रास में नहीं थी।

कहा कहूं बल कुंजीय का, रूहें बड़ी रूह निसबत।

और हक बड़ी रूह रूहन की, इन इलमें देखी खिलवत॥३४॥

इस ब्रह्मवाणी (तारतम ज्ञान) की शक्ति का मैं क्या वर्णन करूँ। इस अद्वितीय ज्ञान के द्वारा ही यह बोध हुआ

कि श्यामा जी तथा सखियों के बीच लीला में क्या सम्बन्ध है और श्री राज जी का श्यामा जी तथा सखियों से कैसा सम्बन्ध है। इस वाणी द्वारा ही श्री राज जी के दिल स्वरूप खिल्वत का ज्ञान हुआ है।

भावार्थ- खिल्वत के रूप में श्री राज जी का दिल ही लीला कर रहा है। खिल्वत का स्वरूप हकीकत का है, किन्तु इसकी मारिफत है- श्री राज जी का मारिफत स्वरूप दिल, जिसने अपने अन्दर निस्बत, वहदत, खिल्वत, और सम्पूर्ण परमधाम को निहित कर रखा है।

ए बल देखो कुंजीय का, नीके देख्या हक-इस्क।

जुदे बैठाए लिखी इसारतें, जासों समझे रूह बेसक॥३५॥

हे साथ जी! इस तारतम ज्ञान की शक्ति को देखिए, जिससे धाम धनी के इश्क (प्रेम) की अच्छी तरह से

पहचान हो गयी है। श्री राज जी ने सखियों को भले ही मूल मिलावा में अपने पास बैठाया है, किन्तु इस संसार में अलग-अलग स्थानों और पन्थों में भेज दिया है और धर्मग्रन्थों में संकेत में सारी बातें लिख रखी हैं। तारतम ज्ञान का अवतरण ही इसलिये हुआ है, ताकि आत्मायें वास्तविकता को जानकर संशय रहित हो जायें।

ए बल देखो इन कुंजीय का, बातें छिपी हक दिल की।

सो सब समझी जात हैं, हैं अर्स की गुझ जेती॥३६॥

इस श्रीमुखवाणी का बल देखिए कि इससे श्री राज जी के दिल की छिपी हुई सारी बातें विदित हो गयी हैं। परमधाम से सम्बन्धित मारिफत की सभी रहस्यमयी बातें अब इस ज्ञान द्वारा आसानी से जान ली जाती हैं।

भावार्थ— इस प्रकरण में कथित तारतम ज्ञान (कुञ्जी)

का तात्पर्य मात्र एक चौपाई या छः चौपाइयों का तारतम नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण श्रीमुखवाणी ही तारतम ज्ञान है जिसका अवतरण श्री महामति जी के धाम हृदय से हुआ है। एक या छः चौपाइयों का तारतम तो बीज रूप है। "ए कहे तारतम बीज वचन" (बीतक) के कथन से यह बात स्पष्ट होती है।

देखो बल इन कुंजीय का, ए जो लिखी रमूजें हक।

आखिर रसूल होए आवहीं, दे इलम खोलावे बेसक॥३७॥

धाम धनी ने धर्मग्रन्थों में जो रहस्य भरी बातें लिखी हैं, उसमें यह भी लिखा है कि स्वयं परब्रह्म ही आखिरत में संदेशवाहक (महामति जी) के रूप में आयेंगे और तारतम ज्ञान देकर सभी धर्मग्रन्थों के छिपे हुए रहस्यों को खोलेंगे। इस बात में किसी प्रकार का संशय नहीं

करना चाहिए। यह ब्रह्मवाणी की महान महिमा है, जो हृदय में बसाने योग्य है।

भावार्थ- इस चौपाई में "रसूल" शब्द से तात्पर्य मुहम्मद साहिब से नहीं है, बल्कि महामति जी से है, जिनके धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी ने जागनी लीला की है।

ए बल देखो कुंजीय का, रुहें बैठाई जुदी कर।

आप केहे संदेसे कहावहीं, आप ल्यावें जुदे नाम धर॥३८॥

यद्यपि धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों को इस संसार में अलग-अलग तो कर दिया है, किन्तु महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर स्वयं इस ब्रह्मवाणी को अपने सन्देश के रूप में कह रहे हैं। यह तारतम वाणी की महिमा है। कहने वाले वे स्वयं हैं, किन्तु श्री महामति जी

के नाम से कहलवा रहे हैं।

बल क्यों कहूं इन कुंजीय का, जो हक दिल गुझ इस्क।

तिन दरियाव की नेहेरें, उतरी नासूत में बेसक॥३९॥

इस बात में कोई भी संशय नहीं है कि अक्षरातीत के दिल में मारिफत के इश्क का अनन्त सागर लहरा रहा है, उसका रस हकीकत के रूप में इस नश्वर जगत में आया है जिसका स्वरूप यह ब्रह्मवाणी है। यह तारतम वाणी की अपार महिमा है।

भावार्थ- "इल्म चातुरी खूबी अंग की" चौपाई को उद्धृत करके ज्ञान की हँसी उड़ाना उचित नहीं है। मायावी बुद्धि के द्वारा सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध करने की प्रवृत्ति को चतुराई कहते हैं, किन्तु इस ब्रह्मवाणी में तो अक्षरातीत के हृदय में उमड़ने वाले

सागर से प्रवाहित होने वाली नहरों का रस भरा हुआ है।

इश्क का प्राण इल्म है और इल्म का प्राण इश्क है। इस प्रकार इस ब्रह्मवाणी में इश्क का रस छिपा हुआ है। इसे अन्य ग्रन्थों की तरह बौद्धिक चातुर्य से भरा हुआ शुष्क ज्ञान का ग्रन्थ नहीं समझना चाहिए। हाँ! हमें इसे मात्र कण्ठ की शोभा न बनाकर हृदय में आत्मसात् करने की राह अपनानी पड़ेगी।

बल कहा कहूं कुंजीय का, ए जो झूठा खेल रंचक।

सो रूहों सांच कर देखाइया, बन्ध बांधे कई बुजरक॥४०॥

मैं इस तारतम वाणी की महिमा का वर्णन कैसे करूँ। माया का यह ब्रह्माण्ड (खेल) नाम मात्र का है और नश्वर अर्थात् लय हो जाने वाला है। फिर भी तारतम ज्ञान से ब्रह्मसृष्टियों ने परब्रह्म की वास्तविक पहचान कराकर

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिये अखण्ड मुक्ति का द्वार खोल दिया। अब तक परब्रह्म की पहचान के सम्बन्ध में ज्ञानी जनों ने अपने संशयात्मक विचारों की गाँठ लगा रखी थी।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टियों के इस खेल में आने के कारण इसे अखण्ड मुक्ति पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सत्य (अखण्ड) करके दिखाने का यही भाव है।

"बन्ध" का तात्पर्य होता है – गाँठ बाँधना, नियम बाँधना आदि।

मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, तथा परब्रह्म का धाम, स्वरूप और लीला क्या है, सृष्टि के प्रारम्भ से चले आ रहे इन प्रश्नों का अभी तक कोई उत्तर नहीं था। ज्ञानी कहलाने वाले लोगों ने इनके उत्तर में अपने अनुमान से संशयात्मक विचारों की गाँठ लगा रखी थी, जिसे

खोलकर ब्रह्मसृष्टियों ने इस ब्रह्माण्ड की मुक्ति का द्वार खोल दिया।

ए बल देखो कुंजीय का, रूहें बीच चौदे तबक के आए।

सो इलमें देखाया झूठ कर, बीच अर्स के बैठाए॥४१॥

चौदह लोक के इस नश्वर जगत् में जब ब्रह्मसृष्टियाँ आयीं, तो इस तारतम ज्ञान ने उन्हें यह अहसास करा दिया कि यह संसार स्वप्नवत् है और वे मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठे-बैठे ही खेल को देख रही हैं। यहाँ पर तो वे मात्र हुक्म के द्वारा सुरता रूप में आयी हैं। इस ब्रह्मवाणी की शक्ति को देखिए।

इन हक का इस्क दुनी मिने, न पाइए लदुन्नी बिन।

बिना इस्क न इलम आवहीं, दोऊ तौले अरस परस बजन॥४२॥

इस संसार में बिना तारतम वाणी के अक्षरातीत का प्रेम नहीं पाया जा सकता। बिना इश्क के धनी के इल्म (ज्ञान) को भी यथार्थ रूप में नहीं जाना जा सकता। दोनों ही आपस में एक-दूसरे की गरिमा का मूल्यांकन करते हैं।

भावार्थ- भार (वजन) तोलना एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है महिमा दर्शाना (मूल्यांकन करना)।

श्री राज जी के इश्क (प्रेम) से दूर होकर कोई भी सुन्दरसाथ ब्रह्मवाणी के गुह्य रहस्यों को नहीं जान सकता। इसी प्रकार यदि वह ब्रह्मवाणी के चिन्तन-मनन से दूर हो जाता है, तो धनी की वास्तविक पहचान न होने से प्रेम मार्ग से भी दूर हो जायेगा। वस्तुतः प्रेम और ज्ञान में चोली-दामन का साथ है। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं।

ए कुंजी बल अपार है, जिनसों पाया अपार।

लिया हक दिल गुझ इस्क, जिनको काहूं न सुमार॥४३॥

इस तारतम वाणी की शक्ति अनन्त है। इसके द्वारा ही उस अनन्त परमधाम का ज्ञान प्राप्त हुआ है और श्री राज जी के दिल में इश्क का जो असीम सागर लहरा रहा है, उसका भी गुह्य भेद प्राप्त हुआ है।

ए इलम कुंजी अर्स की, रूह अल्ला ल्याए हकपें।

माहें कई गुझ हक दिल की, सो सब देखी इन कुंजी से॥४४॥

यह श्रीमुखवाणी परमधाम के गुह्य रहस्यों को स्पष्ट करने वाली कुञ्जी (चाबी) है, जिसे श्यामा जी अपने प्राण प्रियतम श्री राज जी से लेकर आयी हैं। अक्षरातीत के हृदय में मारिफत (परमसत्य) की जो भी छिपी हुई गुह्य बातें हैं, वे भी इसके द्वारा विदित हो जाती हैं।

आसमान जिमी के बीच में, बातें बिना हिसाब।

तिनमें बातें जो हक की, सो लिखी मिने किताब॥४५॥

इस ब्रह्माण्ड में अध्यात्म के नाम पर अनन्त बातें की जाती हैं, किन्तु अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, तथा लीला से सम्बन्धित बातें मात्र श्रीमुखवाणी में हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में कुरआन का कोई प्रसंग नहीं है। यदि संसार के धर्मग्रन्थों में अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, और लीला सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान होता, तो संसार भवसागर से पार हो गया होता। कुरआन-हदीसों में साक्षी रूपी वर्णन अवश्य है। इसी प्रकार वेद, पुराण संहिता, तथा माहेश्वर तन्त्र में सच्चिदानन्द परब्रह्म से सम्बन्धित प्रामाणिक सामग्री बहुत है।

या जाहेर या बातून, रमूजें या इसारत।

सो खोल्या सब इन कुंजिए, हकीकत या मारफत॥४६॥

सभी धर्मग्रन्थों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संकेत में जो भी रहस्यमयी बातें लिखी गयी थीं, उनके भेदों को तारतम ज्ञान ने स्पष्ट कर दिया है। परमधाम की हकीकत और मारिफत का ज्ञान भी इस ब्रह्मवाणी से ही सम्भव हो सका है।

अव्वल से आखिर लग, किया कुंजिएं सबका काम।

हैयाती चौदे तबकों, दर्ई कायम भिस्त तमाम॥४७॥

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर महाप्रलय तक सभी प्राणियों का एक ही लक्ष्य रहता है, भवसागर से पार हो जाना। तारतम वाणी ने इनका यह कार्य कर दिया अर्थात् चौदह लोकों के सभी प्राणियों के लिये आठ बहिश्तों में अखण्ड

मुक्ति का द्वार खोल दिया है।

कहूं दुनियां चौदे तबक में, कहया न हक का एक हरफ।

तो हक सूरत क्यों केहेवहीं, किन पाई न बका तरफ॥४८॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आज दिन तक कहीं भी किसी ने अक्षरातीत के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा था। जब इस संसार के लोगों ने अखण्ड परमधाम का ज्ञान ही नहीं पाया, तो अक्षरातीत की शोभा-श्रृंगार का वर्णन कैसे करते।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब संसार के लोगों को अक्षरातीत का कोई ज्ञान था ही नहीं, तो धर्मग्रन्थों में कैसे वर्णन हुआ?

इसका समाधान यह है कि इस चौपाई में जीव सृष्टि की उपलब्धियों के बारे में कहा गया है। अखण्ड का ज्ञान या

तो ईश्वरी सृष्टि (शिव, विष्णु, कबीर, शुकदेव, सनकादिक) के द्वारा उतरा है, या परब्रह्म के आदेश से समाधि अवस्था में उतरा है। वेद और कुरआन तो अपौरुषेय हैं ही, तफ्सीर-ए-हुसैनी, पुराण संहिता, और माहेश्वर तन्त्र भी परब्रह्म की विशेष कृपा से लिखे गये हैं। ऐसी स्थिति में इस चौपाई का कथन उचित ही है।

तिन हक के दिल का गुझ जो, सो कुंजिएं खोल्या इन।
तो बात दुनी की इत कहां रही, कुंजी ऐसी नूर रोसन॥४९॥

इस ब्रह्मवाणी ने तो अक्षरातीत के दिल के गुह्य रहस्यों को भी उजागर कर दिया है। स्वप्न की बुद्धि का होने के कारण संसार का ज्ञान संशयात्मक है। भला वह तारतम्य ज्ञान के अनन्त उजाले के समक्ष कैसे ठहर सकता है।

सदर-तुल-मुंतहा अर्स अजीम, जबरुत या लाहूत।

इत जरा सक कहूं ना रही, ए बल कुंजी कूवत॥५०॥

तारतम ज्ञान की इतनी अधिक शक्ति है कि इस विषय में जरा भी संशय नहीं रह गया कि अक्षरातीत के परमधाम में अक्षर अक्षर धाम कहाँ है, तथा योगमाया का ब्रह्माण्ड और परमधाम कहाँ और कैसे हैं।

भावार्थ- जबरुत और सदरतुल मुन्तहा में अन्तर है। जबरुत योगमाया के ब्रह्माण्ड को कहते हैं, यानि अव्याकृत से सत्स्वरूप तक, जबकि परमधाम में सर्वरस सागर से भी आगे अक्षर ब्रह्म का जो रंगमहल है, उसे सदरतुल मुन्तहा कहते हैं।

अर्स अजीम के बाग जो, हौज जोए जानवर।

इत सक जरा न काहू में, मोहोलात या अन्दर॥५१॥

परमधाम के बागों, हौज कौशर, यमुना जी, नूरी शोभा वाले जानवरों, महलों, या उनके अन्दर की लीलाओं के सम्बन्ध में अब किसी प्रकार का नाम मात्र भी संशय नहीं रह गया है।

इन अर्सों की भी क्या कहूं, इन कुंजी अतन्त बूझ।

और बात इत कहां रही, काढया हक के दिल का गुझ॥५२॥

इस ब्रह्मवाणी में अनन्त ज्ञान छिपा हुआ है। जब इस वाणी ने श्री राज जी के दिल (मारिफत) के रहस्यों को ही उजागर कर दिया है, तो उससे प्रकट होने वाले अक्षर धाम तथा परमधाम के पच्चीस पक्षों (हकीकत) के बारे में मैं कितना कहूँ। अब तो यहाँ कुछ भी कहने की स्थिति नहीं रह गयी।

महामत कहे ए मोमिनोँ, ए ऐसी कुंजी इलम।

ए मेहेर देखो मेहेबूब की, तुमको पढ़ाए आप खसम॥५३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! तारतम वाणी की महिमा इस प्रकार की है। प्रियतम अक्षरातीत की इस कृपा को देखिये कि वे स्वयं आपके धाम हृदय में विराजमान होकर ब्रह्मवाणी का रस पिला रहे हैं।

भावार्थ— इस चौपाई का यह स्पष्ट आशय है कि अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप को बसाने पर ही ब्रह्मवाणी के रहस्य खुलते हैं। अन्य किसी से शब्दों के बाह्य अर्थों को तो जाना जा सकता है, आन्तरिक रहस्यों को नहीं। इस सम्बन्ध में श्रृंगार ४ / १२ का यह कथन महत्वपूर्ण है—

ए हक बातन की बारीकियां, सो हक के दिए आवत।

ना सीखे सिखाए ना सोहोबतें, हक मेहरें पावत॥

प्रकरण ॥१३॥ चौपाई ॥१०४२॥

सागर सातमा निसबत का

इस प्रकरण में अक्षरातीत के दिल में लहराने वाले मूल सम्बन्ध के सागर का वर्णन किया गया है।

अब कहूँ दरिया सातमा, जो निसबत भरपूर।

या को वार न पार काहूँ, जो नूर के नूर को नूर॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि अब मैं धाम धनी के हृदय में उमड़ने वाले निस्बत के उस अनन्त सागर का वर्णन कर रही हूँ, जिसमें मूल सम्बन्ध का रस भरा हुआ है। यह अक्षरातीत की हृदय स्वरूपा श्यामा जी और उनकी अँगरूपा सखियों के अपने धाम धनी से मूल सम्बन्ध का सागर है।

भावार्थ— अक्षरातीत का मारिफत स्वरूप दिल ही श्यामा जी एवं सखियों के रूप में प्रकट होकर लीला कर

रहा है। अतः यह स्पष्ट है कि अक्षरातीत के दिल में जो कुछ भी प्रेम (इश्क), आनन्द, सौन्दर्य, ज्ञान आदि गुण विद्यमान हैं, वे स्वाभाविक रूप से श्यामा जी और सखियों में भी उसी प्रकार विद्यमान होंगे, जिस प्रकार एक आम की गुठली (बीज) से पैदा होने वाले सभी आमों में वे गुण होंगे जो गुठली में विद्यमान थे। इसका मूल कारण गुठली और आम का अटूट सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध को इस सागर के रूप में दर्शाया गया है।

धाम धनी के दिल में विद्यमान इश्क, आनन्द, सौन्दर्य, और इल्म आदि गुणों को "नूर" कहा गया है, जिसका प्रकट स्वरूप श्यामा जी एवं सखियाँ हैं। इस चौपाई के चौथे चरण का यही भाव है।

बेसुमार ल्याए सुमार में, ए जो करत हों मजकूर।

क्यों आवे बीच हिसाब के, जो हक अंग सदा हजूर॥२॥

अक्षरातीत की अँगरूपा श्यामा जी एवं सखियाँ पल-पल उनके सम्मुख रहती हैं। धनी से इनके जिस मूल सम्बन्ध के सागर के बारे में मैं वर्णन कर रही हूँ, वह असीम है। मैंने उसे सीमाबद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु वह किसी भी सीमा की परिधि में नहीं आ रहा है।

खूबी क्यों कहूं निसबत की, वास्ते निसबत खुली हकीकत।

तो पाई हक मारफत, जो थी हक निसबत॥३॥

मैं इस मूल सम्बन्ध के सागर की विशेषताओं का वर्णन कैसे करूँ। मूल सम्बन्ध के कारण ही परमधाम की हकीकत के रहस्यों का स्पष्टीकरण हुआ तथा धाम धनी के मारिफत स्वरूप दिल के भेदों का पता चला।

निसबत असल सबन की, जित निसबत तित सब।

सब निसबत के वास्ते, इलमें जाहेर किए अब॥४॥

सभी सखियों का मूल सम्बन्ध श्री राज जी के दिल से है। उस मूल सम्बन्ध में ही सब कुछ (इश्क, इल्म, आनन्द आदि) छिपा हुआ है। इस सम्बन्ध के कारण ही तारतम ज्ञान का अवतरण हुआ, जिसने हकीकत एवं मारिफत के सभी रहस्यों को उजागर किया है।

भावार्थ- परमधाम में इस प्रकार की भावना नहीं की जा सकती कि सखियों का श्री राज जी से सीधे सम्बन्ध नहीं है, बल्कि श्यामा जी से है। वस्तुतः परमधाम में वहदत होने से सबका एक ही स्वरूप है और सभी श्री राज जी के मारिफत स्वरूप दिल से जुड़े हुए हैं। इस सम्बन्ध में खिल्वत १३ / ६, ७ का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है-

बड़ी रूह कहे प्यारे मुझे, मेरा साहेब बुजरक।
 और प्यारी रूहें मेरे तन हैं, ए जानो तुम बेसक॥
 तुम रूहें नूर मेरे तन का, इन विध केहेवें हक।
 बोहोत प्यारी बड़ी रूह मुझे, मैं तुमारा आसिक॥

निसबत हक की जात है, निसबत में इस्क।

निसबत वास्ते इलम, इत आया बेसक॥५॥

श्यामा जी तथा सखियाँ श्री राज जी की अँगरूपा हैं।
 इनके अन्दर ही इश्क है तथा इनके लिये ही इस संसार
 में यह संशय रहित तारतम ज्ञान अवतरित हुआ है।

भावार्थ- निसबत का स्वरूप केवल श्यामा जी ही नहीं,
 बल्कि सखियाँ भी हैं। यह श्रृंगार २३ / ३ के इस कथन
 से सिद्ध है-

और तो कोई है नहीं, बिना एक हक जात।

जात मांहे हक वाहेदत, हक हादी गिरो केहेलात॥

ए हकें किया इस्क सों, कई बंध बांधे जहूर।

सो जानत हैं निसबती, जो खिलवत हुई मजकूर॥६॥

धाम धनी ने इश्क के कई बन्ध बाँधकर प्रत्यक्ष रूप में अपने मूल सम्बन्ध को दर्शाया है। इस बात को मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही अच्छी तरह से जानती हैं, क्योंकि उनके बीच मूल मिलावा में इसी विषय पर वार्ता हुई थी।

हकें निसबत वास्ते, कई बंध बांधे माहे खेल।

सब सुख देने निसबत को, तीन बेर आए माहे लैल॥७॥

धाम धनी ने मूल सम्बन्ध के कारण ही खेल में कई

बन्ध बाँधे। श्यामा जी तथा अपनी अँगनाओं को हर प्रकार का सुख देने के लिये वे माया के खेल में तीन बार आये।

भावार्थ— पूर्वोक्त दोनों चौपाइयों में प्रेम के बन्ध बाँधने की बात कही गयी है। बन्ध (गाँठ, बाँध) बाँधने का उद्देश्य होता है कि वह वस्तु बिखरने या बहने न पाये। धाम धनी ने अपना अखण्ड प्रेम अनेक रूपों में दर्शाया है, जिसे बन्ध बाँधना कहा गया है। वे बन्ध इस प्रकार हैं—

१. श्री राज जी तीनों लीलाओं में पल-पल हमारे साथ रहे हैं।

२. व्रज या जागनी में प्रत्येक कष्ट से उन्होंने अपनी अँगनाओं की रक्षा की है।

३. इस जागनी ब्रह्माण्ड के छठे दिन की लीला में

ब्रह्मसृष्टियों के धाम हृदय में विराजमान होकर उन्होंने अनेक प्रकार की शोभा दी है।

४. श्री इन्द्रावती जी के अन्दर अपनी पाँचों शक्तियों सहित विराजमान होकर उन्होंने अपने से भी बड़ी शोभा दी है। "बड़ी बड़ाई दर्ई आप थें " (प्रकास हिंदुस्तानी) का कथन यही सिद्ध करता है।

५. यहाँ बैठे-बैठे परमधाम पच्चीस पक्षों तथा अष्ट प्रहर की लीला सहित सभी सुखों का रसपान कराया है।

६. परात्म की तरह यहाँ भी शाहरग से नजदीक रहे हैं।

७. व्रज में जहाँ गोपियों को रिझाया, तो जागनी ब्रह्माण्ड में श्री देवचन्द्र जी का सामान उठाकर चले और श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर अपनी आत्माओं को जगाने के लिये गाँव-गाँव, जँगल-जँगल पैदल चले।

अव्वल देखाया लैल में, निसबत जान इस्क।

दूसरी बेर देखाइया, गुझ इस्क मुतलक॥८॥

धाम धनी ने व्रज में मूल सम्बन्ध के कारण ही अपना इश्क दिखाया। निश्चित रूप से इसी सम्बन्ध के कारण दूसरी बार रास लीला में भी प्रियतम ने अपना प्रेम दर्शाया।

वास्ते निसबत बेर तीसरी, खेल दिखाया हक।

इलम बढ़ाई इस्क, देख्या गुझ बका का बेसक॥९॥

मूल सम्बन्ध के कारण ही धाम धनी ने तीसरी बार यह जागनी का खेल दिखाया। इसमें तारतम ज्ञान के द्वारा ब्रह्मसृष्टियों ने इश्क की महिमा और परमधाम की रहस्यमयी बातों को जाना।

निसबत वास्ते इस्क, निसबत वास्ते इलम।

खुसाली निसबत वास्ते, आखिर ल्याए खसम॥१०॥

ब्रह्मसृष्टियों से अपना अखण्ड सम्बन्ध होने के कारण ही श्री राज जी यह ब्रह्मवाणी लेकर आये हैं। प्रेम और आनन्द की लज्जत (स्वाद) भी इसी कारण से आ सकी है।

ए इलम अन्दर यों केहेत है, ए जो निसबत देखत दुख।

इन दुख में बका अर्स के, हैं हक दिल के कई सुख॥११॥

यद्यपि इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों को माया के दुःख देखने पड़ते हैं, किन्तु श्रीमुखवाणी का कथन है कि इस दुःख की लीला में भी अखण्ड परमधाम (हकीकत) तथा श्री राज जी के दिल के अनेक सुखों (मारिफत) का अनुभव होता है।

ए सुख सागर निसबत का, तिनका सुमार न आवे क्याहें।
सब हकें मपाए सागर, पर निसबत तौल कोई नाहें॥१२॥

निस्बत (मूल सम्बन्ध) का यह सागर अनन्त आनन्द से भरपूर है। किसी प्रकार से भी इसकी सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। धाम धनी ने अपनी मेहर से अपने दिल के सभी सागरों की माप करा दी, किन्तु मूल सम्बन्ध के इस सागर के समान अन्य कोई भी नहीं लगा।

भावार्थ— यद्यपि मानवीय बुद्धि में समझ आने के लिये धाम धनी ने अपने सागरों का अलग-अलग वर्णन किया है, किन्तु बातिनी रूप में सभी सागर एक-दूसरे में समाहित हैं। किसी की भी शोभा को कम या अधिक करके नहीं कहा जा सकता। वहदत में कम या अधिक शब्द का चिन्तन ही नहीं होता। वैसे इस संसार के

धरातल पर इस प्रकार अवश्य कहा जाता है।

मापे गेहरे सागर, जिनको थाह न देखे कोए।

तिन हक दिल अन्दर पैठ के, मापे इस्क सागर सोए॥१३॥

मैंने प्रेम के द्वारा श्री राज जी के दिल में पैठकर उस अनन्त प्रेम (इश्क) के सागर को माप डाला। इसके अन्य सभी गहरे सागरों को मापा, जिनकी आज दिन तक कोई भी थाह नहीं ले सका था।

भावार्थ- "मैं हक देखूं हक देखें मुझे, यों दोऊ अरस-परस भैयां " (सिनगार १४/३५) की स्थिति में ही धाम धनी के दिल में बैठा जा सकता है। इसके लिये गहन प्रेम की स्थिति में युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में बसाना होता है।

सागरों को मापने का तात्पर्य है, श्री राज जी के दिल में

डुबकी लगाकर उनकी (सागरों की) स्पष्ट पहचान कर लेना।

जो हक काहूँ न पाइया, ना किन सुनिया कान।

पाया न वाके अर्स को, जो कौन ठौर मकान॥१४॥

आज दिन तक इस सृष्टि में किसी भी प्राणी ने अक्षरातीत परब्रह्म को नहीं पाया था और न अपने कानों से उनके बारे में कुछ सुना था। उस अनादि परमधाम के बारे में भी कोई जान नहीं पाया था कि वह कहाँ पर है।

सब बुजरकों ढूँढया, किन पाई न बका तरफ।

दुनियां चौदे तबक में, किन कहया न एक हरफ॥१५॥

सभी ज्ञानीजनों ने उस परब्रह्म को ढूँढा, किन्तु कोई भी अखण्ड परमधाम का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सका। चौदह

लोक के इस ब्रह्माण्ड में रहने वालों ने परमधाम के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा है।

तिन हक दिल अन्दर पैठके, माप्या सागर इस्क।

इन हकके इलमें रोसनी, सब मापे सागर बेसक॥१६॥

मैंने उस अक्षरातीत के हृदय में बैठकर उसमें लहराने वाले इश्क (प्रेम) के अनन्त सागर को माप (पहचान) लिया। धाम धनी के दिये हुए तारतम ज्ञान से मैंने निश्चित रूप से सभी सागरों की पहचान कर ली है।

सो इस्क इलम सुख सागर, वास्ते आए निसबत।

इन निसबत के तौल कोई, ल्याऊं कहां से हक न्यामत॥१७॥

इस प्रकार "इश्क और इल्म" सुख के अनन्त सागर हैं, जो श्यामा जी तथा सखियों के इस खेल में आने के

कारण ही संसार में आये। मूल सम्बन्ध के इस सागर के समान और कौन सी निधि (सम्पदा, नेमत) है, जिसे मैं लाऊँ (वर्णन करूँ)।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी का अवतरण ही इल्म के सागर का अवतरण है तथा इस वाणी से प्रियतम के स्वरूप को पहचानकर उनकी शोभा-श्रृंगार में डूब जाना आत्मा के लिये इश्क के सागर का इस संसार में आ जाना है। यह सब मूल सम्बन्ध (निस्बत) के कारण ही सम्भव हो पाया है।

ए निसबत जो सागर, जानें निसबती मोमिन।

कहूँ थाह न गेहेरा सागर, कोई पावे न निसबत बिन॥१८॥

धाम धनी के दिल में विराजमान निस्बत का यह सागर इतना गहरा है कि इसकी कोई थाह (सीमा) नहीं है।

ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई न तो इसे जानता है और न इसमें डुबकी लगा पाता है (अनुभव कर पाता है)।

तो क्यों कहूं जोड़ निसबत की, जो दीजे निसबत मान।

निसबत हक की जात हैं, जो हक वाहेदत सुभान॥१९॥

श्यामा जी और सखियाँ श्री राज जी की अँगरूपा हैं और उनकी एकदिली का स्वरूप हैं, अर्थात् श्री राज जी का मारिफत स्वरूप दिल ही हकीकत में श्यामा जी और सखियों के स्वरूप में लीला कर रहा है। इसलिये इनके समान कोई और दूसरा है ही नहीं, जिससे इनकी उपमा दी जा सके।

बोहोत लेहेरी इन सागर की, मेहेर इस्क इलम।

सोभा तेज सुख कई बका, इन निसबत में जात खसम॥२०॥

मूल सम्बन्ध (निस्बत) के इस सागर में मेहर, इश्क, इल्म, शोभा, तेज, और परमधाम के अन्य कई प्रकार के सुखों की अनन्त लहरें उमड़ा करती हैं। श्यामा जी और सखियों के स्वरूप में स्वयं धाम धनी ही लीला करते हैं।

एह इलम ए इस्क, और निसबत कही जो ए।

ए तीनों सिफत माहें मोमिनो, निसबत हक की जे॥२१॥

तारतम वाणी का ज्ञान, धनी के प्रति अटूट प्रेम, और उनके चरणों (स्वरूप) से अखण्ड सम्बन्ध की महिमा को मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही यथार्थ रूप से जानती हैं, जिनका श्री राज जी से मूल सम्बन्ध होता है।

किन पाया न इन इलम को, किन पाया ना ए इस्क।

तो क्यों पावे ए निसबत, पेहेलें सूरत न पाई हक॥२२॥

आज दिन तक जब किसी को यह तारतम ज्ञान मिला ही नहीं था, तो वह अक्षरातीत के स्वरूप के बारे में क्या जान सकता था। जब स्वरूप का ही ज्ञान नहीं, तो वह धनी से प्रेम भी कैसे करता। ऐसी स्थिति में अक्षरातीत से अंगना भाव पैदा होने का प्रश्न ही नहीं था।

ए गुझ भेद हक रूहन के, हक दिल की भी और।

ए जानें हक निसबती, जाको हक कदम तले ठौर॥२३॥

अक्षरातीत तथा ब्रह्मसृष्टियों के बीच के मूल सम्बन्ध एवं श्री राज जी के मारिफत (परमसत्य) स्वरूप दिल के ये गुह्य भेद हैं। इन्हें मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जो मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठी हुई हैं।

भावार्थ- इस चौपाई से पूर्व इस प्रकरण में जो बातें बतायी गयी हैं, उन्हें ही इस चौपाई में गुह्य भेद कहकर वर्णित किया गया है।

जब देखों हक निसबत, तब एकै हक निसबत।

और हक का हुकम, कछू ना हुकम बिना कित॥२४॥

जब मैं धनी से अपने मूल सम्बन्ध के बारे में विचार करती हूँ (देखती हूँ), तब परमधाम में सर्वत्र उस सम्बन्ध का ही प्रकटीकरण दिखायी देता है। और जब मैं धनी के हुकम के विषय में सोचती हूँ, तो यही स्पष्ट होता है कि श्री राज जी के हुकम के बिना कहीं भी – कुछ भी नहीं है।

भावार्थ- धाम धनी का हुकम परमधाम, योगमाया, तथा कालमाया तीनों ब्रह्माण्ड में चलता है। इस सम्बन्ध में

खिल्वत ५/३७,३९ का कथन देखने योग्य है—

हकें किया हुकम वतन में, सो उपजत अंग असल।

जैसा देखत सुपन में, ए जो बरतत इत नकल॥

कहे लदुन्नी भोम तलेय की, हक बैठे खेलावत।

तैसा इत होता गया, जैसा हजूर हुकम करत॥

जागनी लीला धनी के हुकम से चल रही है तथा श्री राज जी के ही हुकम स्वरूप अक्षर ब्रह्म की लीला योगमाया में होती है। "हुकम नूर खुदाए का, जो है नूर जलाल" (बीतक ६२/५१) का कथन यही दर्शा रहा है।

जो कोई हक के हुकम का, ताए जो इलम करे बेसक।

लेवे अपनी मेहेर में, तो नेक दीदार कबूं हक॥२५॥

धाम धनी के हुकम से बने हुए इस खेल में यदि व्यक्ति

(जीव सृष्टि) तारतम वाणी से संशय रहित हो जाता है तथा धनी की कृपा का पात्र बन जाता है, तो उसे भी कभी राज जी का कुछ दर्शन हो सकता है (झलक मिल सकती है)।

भावार्थ- इस चौपाई में उन जीवों का वर्णन है, जो तारतम वाणी के प्रकाश में अटूट विश्वास (ईमान) पर खड़े हो जाते हैं तथा ब्रह्मसृष्टियों की तरह प्रेम की राह अपना लेते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें भी पच्चीस पक्षों सहित श्री राज जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। हाँ! उन्हें श्यामा जी एवं सखियों की परात्म का दर्शन नहीं हो सकता। यह बात आगे की चौपाइयों में बतायी गयी है।

पर कबूँ दीदार ना निसबत का, ना काहूँ को ए न्यामत।

ए जुबां इन निसबत की, कहा करसी सिफत॥२६॥

किन्तु उसे श्यामा जी या सखियों की परात्म का दर्शन नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त अन्य किसी ईश्वरी सृष्टि को भी श्यामा जी या सखियों की परात्म के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में श्यामा जी तथा सखियों की महिमा का वर्णन कैसे किया जाये, जिनके दर्शन का अधिकार ईश्वरी सृष्टि को भी नहीं है।

ए जो सरूप निसबत के, काहूँ न देवें देखाए।

बदले आप देखावत, प्यारी निसबत रखें छिपाए॥२७॥

श्री राज जी अपनी अँगनाओं तथा श्यामा जी के स्वरूप का दर्शन किसी को भी नहीं कराते। उनकी जगह वे स्वयं ही दर्शन दे देते हैं और अपनी प्यारी अँगनाओं को

छिपाकर रखते हैं।

भावार्थ- इस कथन को लौकिक भावों से नहीं देखना चाहिये। वस्तुतः इस प्रकार की लीला अपनी अँगनाओं के प्रति धाम धनी के अनन्त प्रेम को दर्शाती है।

निमूना इन निसबत का, कोई नहीं इन समान।

ज्यों निमूना दूसरा, दिया न जाए सुभान॥२८॥

जिस प्रकार श्री राज जी की उपमा किसी से नहीं दी जा सकती, उसी प्रकार श्यामा जी एवं सखियों की तुलना भी किसी के भी साथ करने का प्रश्न ही नहीं है। ये अद्वितीय हैं।

क्यों दीजे निमूना इनका, जो कही हक की जात।

निसबत इस्क इलम, ज्यों बिरिख फल फूल पात॥२९॥

अक्षरातीत की अँगरूपा श्यामा जी एवं सखियों की उपमा भला किसी के साथ कैसे की जा सकती है। जिस प्रकार किसी वृक्ष में पत्तियाँ, फल, और फूल लगे होते हैं, उसी प्रकार श्यामा जी एवं ब्रह्मात्माओं में प्रेम और परम सत्य का ज्ञान निहित होता है।

सब लगे हैं निसबत को, इस्क इलम हुकम।

ना तो कैसे इत जाहेर होए, हम तुम इस्क इलम॥३०॥

श्यामा जी एवं सखियों के अन्दर प्रेम (इश्क), ज्ञान (इल्म), तथा आदेश (हुकम) स्वभावतः विद्यमान है। यही कारण है कि धाम धनी के साथ श्यामा जी, सखियाँ, इश्क, और इल्म भी इस संसार में जाहिर हो रहे हैं, अन्यथा यह सम्भव ही नहीं था।

भावार्थ— परमधाम में वहदत (एकदिली) होने के कारण

श्री राज जी के दिल में जो इच्छा होती है, वह श्यामा जी एवं सखियों में भी आ जाती है। इसे ही हुक्म कहते हैं।

ए सब निसबत वास्ते, जो कछू सब्द उठत।

ए जो नजरों देखत, या जो कानों सुनत॥३१॥

इस चौपाई में श्री राज जी ब्रह्मसृष्टियों से कहते हैं कि इस जागनी लीला में तुम जिस संसार को देख रही हो या ब्रह्मवाणी का अवतरण देख रही हो अथवा अपने कानों से धर्मग्रन्थों के कथनों को सुन रही हो, सब कुछ मेरे हुक्म से तुम्हारे लिये ही हो रहा है।

ज्यों हाथ पांउं सूरत के, मुख नेत्र नासिका कान।

त्यों सब मिल एक सूरत, यों वाहेदत अंग सुभान॥३२॥

जिस प्रकार एक ही स्वरूप के अन्दर हाथ, पैर, मुख,

नेत्र, नासिका, और कान आदि अंग होते हैं तथा ये सभी मिलकर एक स्वरूप बनते हैं, उसी प्रकार श्यामा जी और सखियाँ श्री राज जी की अँगरूपा हैं।

अब कहा कहूं निसबत की, दिया न निमूना जात।

और सब्द न इन ऊपर, अब कहा कहूं मुख बात॥३३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अब मैं श्यामा जी एवं सखियों की महिमा का वर्णन कैसे करूँ। इनकी किसी से भी उपमा नहीं दी जा सकती। इस कथन (अनुपम) के बाद तो अब मेरे पास ऐसा कोई शब्द भी नहीं है, जिसे मैं अपने मुख से व्यक्त कर सकूँ।

सिफत अलेखे निसबत, ज्यों सिफत अलेखे हक।

सब्दातीत न आवे सब्द में, मैं कही इन बुध माफक॥३४॥

जिस प्रकार अक्षरातीत की महिमा को किसी प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार श्यामा जी एवं सखियों की महिमा को भी शब्दों में कह पाना सम्भव नहीं है। मैंने तो अपनी बुद्धि के अनुसार बहुत थोड़ा सा वर्णन किया है, अन्यथा श्री राज जी, श्यामा जी, एवं सखियों की शब्दातीत महिमा का वर्णन कर पाना किसी प्रकार से सम्भव नहीं है।

कहिए सारी उमर लग, तो सिफत न आवे सुमार।

ए दरिया निसबत का, याकी लेहेरें अखंड अपार॥३५॥

इस निस्बत सागर की लहरें अखण्ड और अनन्त हैं। यदि सारी उम्र भी इसकी महिमा गायी जाये, तो भी पूर्ण वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

ए बात बड़ी हक निसबत, सो झूठे खेल में नाहें।

ए बात होत बका मिने, हक खिलवत के माहें॥३६॥

धाम धनी से निस्बत की यह बात बहुत बड़ी है, जो इस झूठे खेल में सांसारिक जीवों के साथ नहीं है। वस्तुतः अखण्ड निस्बत (सम्बन्ध) तो परमधाम के मूल मिलावे में ही है, जहाँ सभी ब्रह्मसृष्टियाँ धाम धनी के चरणों में बैठी हैं।

भावार्थ- आत्माओं के साथ तो धनी की अखण्ड निस्बत है, चाहे वह परमधाम हो या स्वप्न का ब्रह्माण्ड। यह बात श्रीमुखवाणी के इन कथनों से सिद्ध है-

ए होए बिना निसबतें, इतहीं हुई वाहेदत।

निसबत वाहेदत एकै, तो क्यों जुदी कहिए खिलवत॥

सिनगार ११/२७

इन गुन्हेगारों के दिल को, अर्स कर बैठे मेहरबान।

खुलासा ३/७०

जीव सृष्टि तारतम ज्ञान ग्रहण कर अवश्य धनी से अपना सम्बन्ध जोड़ती है, किन्तु यह मूल (अनादि) निस्बत नहीं है। निस्बत का वास्तविक स्वरूप परमधाम में ही है।

जो खेल में खबर ना हक की, तो निसबत खबर क्यों होए।

हक आसिक निसबत मासूक, वाहेदत में ना दोए॥३७॥

इस नश्वर जगत में जब किसी को अक्षरातीत की ही पहचान नहीं है, तो उनकी अँगरूपा श्यामा जी एवं सखियों की पहचान कैसे हो सकती है। श्री राज जी आशिक हैं और श्यामा जी तथा सखियाँ उनकी माशूक हैं। परमधाम की एकदिली में सभी का स्वरूप एक है।

इन्हें दो कदापि नहीं समझना चाहिए।

ए बात सुने जो खेल में, बड़ा अचरज होवे तिन।

किन पाई ना तरफ हक की, ए तो हक मासूक वतन॥३८॥

इस मायावी जगत में इस तरह की बातें सुनने पर किसी को भी बहुत आश्चर्य होता है, क्योंकि आज तक किसी को यह पता नहीं चल सका था कि सच्चिदानन्द परब्रह्म कहाँ हैं। यह बात तो उस परमधाम की है, जहाँ धाम धनी की अँगनायें प्रेम और आनन्द की लीला में मग्न रहती हैं।

तीन सूरत महंमद की, गुझ हक का जानें सोए।

हक जानें या निसबती, और कोई जानें जो दूसरा होए॥३९॥

अक्षरातीत के दिल की गुह्य बातें या तो स्वयं धाम धनी

जानते हैं, या उनकी अँगरूपा श्यामा जी और ब्रह्मसृष्टियाँ, अथवा तीनों सूरतें बसरी (मुहम्मद साहिब), मलकी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) और हकी (श्री प्राणनाथ जी)। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी मारिफत के भेदों को नहीं जानता, क्योंकि उनका सम्बन्ध मात्र इस कालमाया या योगमाया के ब्रह्माण्ड से रहा है।

वाहेदत की ए पेहेचान, अर्स दिल कह्या मोमिन।

मासूक कह्या महंमद को, जो अर्स में याके तन॥४०॥

ब्रह्मसृष्टियों का दिल धनी का अर्श (परमधाम) होता है और उनके मूल तन परमधाम में ही विराजमान होते हैं जो वहदत (एकदिली) के स्वरूप होते हैं। धाम धनी ने श्यामा जी को अपनी प्रियतमा (माशूक) कहा है। इस प्रकार श्री राजश्यामा जी और सखियों के अन्दर वहदत

का स्वरूप है।

महामत कहे ए मोमिनोँ, ए निसबत इस्क सागर।

ल्यो प्याले हक हुकमें, पिओ फूल भर भर॥४१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! इस निस्बत के सागर में अनन्त इश्क (प्रेम) भरा हुआ है। अब धाम धनी के हुक्म (आदेश) से अपने दिल रूपी प्याले में परमधाम का अखण्ड प्रेम भरिए और अति आनन्द में भरकर उसका रसपान कीजिए।

भावार्थ- वहदत की यही विशेषता है कि जिस प्रकार अक्षरातीत श्री राज जी को इश्क का अनन्त सागर कहते हैं, उसी प्रकार उनकी अँगरूपा श्यामा जी एवं ब्रह्मात्माओं को भी इश्क का सागर कहा जाता है।

प्रकरण ॥१४॥ चौपाई ॥१०८३॥

सागर आठमा मेहेर का

इस प्रकरण में मेहर सागर की विशेषताओं पर विशेष विवेचना की गयी है।

और सागर जो मेहेर का, सो सोभा अति लेत।

लेहेरें आवें मेहेर सागर, खूबी सुख समेत॥१॥

और यह आठवाँ सागर प्रियतम परब्रह्म की कृपा (मेहर) का सागर है, जिसकी शोभा अनन्त है। इस सागर में अन्य सातों सागरों की विशेषतायें अपने आनन्द सहित छिपी हुई हैं। इस सागर में पूर्व के सात सागरों की अनन्त लहरें उमड़ती रहती हैं।

भावार्थ- सच्चिदानन्द परब्रह्म अनन्त निधियों का मूल है, पूर्णातिपूर्ण है। ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण ने जहाँ उसे "एकमेव अद्वितीयम्" कहा, तो तैत्तरीयोपनिषद् ने

"आनन्दो ब्रह्म" कहा, और अथर्ववेद १०/८/१ ने "स्वर्यस्य च केवलं" (मात्र आनन्द स्वरूप) कहकर मौन धारण कर लिया। इसी प्रकार कतेब परम्परा में परब्रह्म को तेज, शोभा, और सौन्दर्य का सागर (नूरजमाल) कहा गया है।

किन्तु जब तक इन अनन्त निधियों का लीला रूप में प्रकटीकरण न हो, तब तक क्या इन गुणों की सार्थकता सिद्ध हो सकती है?

फारसी भाषा का शब्द "मेहर" संस्कृत में कृपा कहलाता है। "कृ" धातु का तात्पर्य करने से होता है। इस प्रकार (उप+कृ+घ्) से उपकार (अनुग्रह) शब्द सिद्ध होता है। लीला रूप में परब्रह्म की अनन्त निधियों के आत्मा में प्रवाहित होने की प्रक्रिया ही अनुग्रह (मेहर) कहलाती है।

स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म का हृदय समस्त निधियों का भण्डार है, जिनका प्रकटीकरण ही उनके सम्पूर्ण रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। यद्यपि परमधाम में अन्दर-बाहर एक ही स्वरूप होने से रूप और स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु यहाँ के भावों से समझने के लिये इन शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसे श्रीमुखवाणी में इस प्रकार कहा गया है—

आसिक अपने सौक को, विध विध सुख चहे।

सोई विध विध रूप सरूप के, नई नई लज्जत लहे॥

दिल रुहें बारे हजार को, रूप नए नए चाहे दमदम।

दे चाह्या सरूप सबन को, इन बिध कादर खसम॥

सिनगार २१/३१,३२

इसी प्रकार नख से शिख तक श्री राज जी का स्वरूप ही श्यामा जी, सखियों, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, एवं

परमधाम के २५ पक्षों के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। इसे ही मारिफत का हकीकत में प्रकटीकरण कहते हैं। ऋग्वेद की भाषा में इसे "ऋत्" से सत्य का प्रकटीकरण कहते हैं। ऋत् का भावार्थ है— वह परमसत्य जिसकी प्रामाणिकता में किसी की अपेक्षा न हो। दूसरे शब्दों में, हम ऐसा भी कह सकते हैं कि अक्षरातीत की समस्त निधियाँ सत्य (हकीकत) के रूप में लीला कर रही हैं, किन्तु उनका मूल अक्षरातीत के दिल में है।

परब्रह्म के पूर्ण होने से यद्यपि हकीकत के कण-कण में मारिफत (परमसत्य) की अनुभूति की जाती है, किन्तु उसका मूल श्रोत अक्षरातीत का निज स्वरूप ही होता है। इस प्रकार अक्षरातीत परब्रह्म के हृदय में उमड़ने वाले सातों सागरों की लहरों का रसास्वादन करना ही मेहर सागर को प्राप्त करना है। इस तथ्य को ऐसे भी कह

सकते हैं कि धाम धनी के मारिफत स्वरूप दिल की पहचान ही मेहर सागर की पहचान है।

संक्षेप में मेहर सागर की लहरें इस रूप में आत्मा को अनुभूत होनी चाहिए—

१. आत्मा को युगल स्वरूप सहित अपनी परात्म, सभी ब्रह्मात्माओं, तथा सम्पूर्ण २५ पक्षों के नूरी स्वरूप का साक्षात्कार हो जाये।

२. उसे अपनी परात्म के नख से शिख तक की सम्पूर्ण शोभा का अनुभव हो जाये।

३. उसे यह अनुभव हो जाये कि उसका दिल भी श्री राज जी का ही दिल है तथा सभी ब्रह्माँगनाओं में उसी का अद्वैत स्वरूप विराजमान है।

४. युगल स्वरूप के नख से शिख तक की शोभा उसके धाम हृदय में बस जाये।

५. प्रियतम के प्रेम के अतिरिक्त सारा ब्रह्माण्ड उसे विष के समान लगने लगे।

६. बिना किसी के बताये ब्रह्मवाणी के गुह्यतम रहस्यों का उसे बोध हो जाये।

७. अक्षरातीत के दिल से उसका एकत्व स्थापित हो जाना चाहिये। उसे यह स्पष्ट रूप से अनुभव होना चाहिए कि उसका स्वरूप श्री राज जी का ही स्वरूप है। दोनों में मूलतः कोई अन्तर नहीं है। यद्यपि लीला रूप में वह इस पञ्चभौतिक तन से पृथक् श्यामा स्वरूपा है, किन्तु उसका मूल स्वरूप अक्षरातीत का दिल है। अक्षरातीत से एकत्व के सम्बन्ध में ऋग्वेद का यह कथन देखने योग्य है—

यदग्रे स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।

स्युष्टे सत्या इहाशिषः॥

ऋ. ८/४४/२३

अर्थात् हे परब्रह्म! जो "तू" है वह "मैं" हो जाऊँ और जो "मैं" हूँ वह "तू" हो जाये। इस सम्बन्ध में तुम्हारा यह अनुग्रह (आशीष) सत्य हो।

यदि इस प्रकार की अनुभूति आत्मा को होती है, तो वह कह सकती है कि मैंने धाम धनी की मेहर (अनुग्रह) को प्राप्त कर लिया है।

हुकम मेहेर के हाथ में, जोस मेहेर के अंग।

इस्क आवे मेहेर से, बेसक इलम तिन संग॥२॥

धनी का हुकम मेहेर के अन्दर निहित है। इसी प्रकार जोश भी मेहेर का ही अंग है। धनी की मेहर से ही आत्मा के अन्दर धनी का प्रेम (इश्क) आता है और उसके साथ ही संशयों को दूर करने वाले तारतम ज्ञान का प्रकाश होता है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब पूर्व में यह वर्णित किया जा चुका है कि श्री राज जी के दिल की इच्छा को हुक्म कहते हैं, तो इस चौपाई के पहले चरण में वर्णित "हुक्म" का स्वरूप क्या है जो मेहर में विद्यमान है?

इसके समाधान में ऐसा कहा जा सकता है कि जब आत्मा धाम धनी का साक्षात्कार करके एकरूप हो जाती है, तो उस अवस्था में लौकिक इच्छाओं से उसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रह जाता। धनी की प्रेरणा से वह यन्त्रवत् कार्य करती है। अब उसकी इच्छा धनी की इच्छा बन जाती है और धनी की इच्छा उसकी इच्छा बन जाती है। इसे ही श्रृंगार २/९ में कहा गया है कि "हैं हमहीं हक हुक्म।"

इसी अवस्था में आत्मा को धनी के जोश का अनुभव

होता है, जो बाह्यी अवस्था का परिचायक होता है।

प्रेम और ज्ञान एक-दूसरे के पूरक हैं। धाम धनी की मेहर (कृपा) से ही आत्मा में परमधाम का इश्क आता है, जिससे वह संशय रहित ज्ञान का अधिकार प्राप्त कर लेती है।

पूरी मेहेर जित हक की, तित और कहा चाहियत।

हक मेहेर तित होत है, जित असल है निसबत॥३॥

जहाँ अक्षरातीत की पूर्ण कृपा होती है, वहाँ और क्या चाहिए। धाम धनी की वास्तविक कृपा वहीं पर होती है, जहाँ परमधाम का मूल अँकुर (आत्मा) होता है।

भावार्थ- जिस आत्मा के धाम हृदय में परब्रह्म के सागरों की रसधारा प्रवाहित हो रही होती है, उसके लिये करोड़ों वैकुण्ठ के राज्य भी तुच्छ प्रतीत होते हैं। किरंतन

१७८/२ का कथन "कई कोट राज बैकुण्ठ के, न आवे इतके खिन समान" इसी सन्दर्भ में है, किन्तु इस प्रकार की अवस्था मात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही प्राप्त होती है। धनी के चरणों में आने के बाद, अर्थात् ब्रह्मवाणी का चिन्तन-मनन करने के पश्चात्, भी जीव सृष्टि न तो सांसारिक इच्छाओं का परित्याग कर पाती है और न प्रेम की राह अपना कर ब्राह्मी अवस्था की प्राप्ति कर पाती है। इस प्रकार, वह श्री राज जी की पूर्ण मेहर से वंचित रह जाती है।

मेहेर होत अव्वल से, इतहीं होत हुकम।

जलूस साथ सब तिनके, कछू कमी न करत खसम॥४॥

अपनी अँगनाओं पर धनी की मेहर परमधाम से ही रही है और इस खेल में भी उन्हीं की इच्छा से मेहर बरस

रही है। मेहर की इस शोभा यात्रा में धाम धनी की सम्पूर्ण निधियाँ साथ में हैं। प्रियतम अक्षरातीत इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं करते हैं।

भावार्थ- श्री राज जी के हृदय की रसधारा तो परमधाम में पल-पल अखण्ड रूप से प्रवाहित होती ही है। इस खेल में भी आत्म-जाग्रति की अवस्था में उसका अनुभव हो सकता है। जिस प्रकार किसी राजा की शोभा यात्रा में उसका सम्पूर्ण ऐश्वर्य- मन्त्री और सेना आदि के रूप में- दिखायी देता है, उसी प्रकार जब अक्षरातीत इस नश्वर ब्रह्माण्ड में अपने आवेश स्वरूप से आये हैं तो उनके साथ उनके हृदय के सभी सागरों का रस भी आया है जिसका स्वाद ब्रह्मसृष्टियाँ ले रही हैं।

ए खेल हुआ मेहेर वास्ते, माहें खेलाए सब मेहेर।

जाथें मेहेर जुदी हुई, तब होत सब जेहेर॥५॥

माया का यह खेल धाम धनी ने अपने पूर्ण स्वरूप की पहचान देने के लिये बनाया है। इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों के साथ होने वाली सारी लीला मेहर की छत्रछाया में ही हो रही है। यदि किसी से अक्षरातीत की यह मेहर अलग हो जाये, तो उसे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विष के समान कष्टकारी लगने लगता है।

भावार्थ- परमधाम में श्री राज जी ने अपनी हकीकत के आनन्द में श्यामा जी एवं ब्रह्मात्माओं को डुबो रखा था, जिसके कारण उनके मारिफत स्वरूप दिल की पहचान किसी को भी नहीं थी। उस पहचान को बताने के लिये ही यह खेल बनाया गया है। "मेहर का दरिया दिल में लिया तो रुहों के दिल में खेल देखने का ख्याल उपजा"

का कथन इसी प्रसंग में है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिस मेहर की पहचान देने के लिये यह खेल बना है, सभी लीलाओं के केन्द्र में वही रहेगी। इस सम्बन्ध में खिल्वत १२ / १०० का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है—

महामत कहे ऐ मोमिनो, तुम पर दम-दम जो बरतत।

सो सब इस्क हक का, पल-पल मेहर करत॥

अपने प्राणवल्लभ के हृदय की पहचान ही तो अँगनाओं के जीवन का आधार है। उससे (मेहर से) अलग होकर भला वे इस झूठे संसार में प्रसन्नतापूर्वक कैसे रह सकती हैं।

दोऊ मेहेर देखत खेल में, लोक देखें ऊपर का जहूर।

जाए अन्दर मेहेर कछू नहीं, आखिर होत हक से दूर॥६॥

आत्मा इस खेल में दोनों तरह की मेहर का अनुभव कर

रही है- १. जाहिरी २. बातिनी (गुह्य)। संसार के जीव तो चमत्कारों आदि से केवल ऊपरी पहचान ही ले पाते हैं। जिनके अन्दर थोड़ी भी मेहर नहीं होती, वे अन्ततोगत्वा धाम धनी से दूर हो जाते हैं।

भावार्थ- आत्मिक धरातल पर परमधाम के पच्चीस पक्षों तथा युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार आदि का अनुभव होना बातिनी (गुह्य) मेहर है।

शरीर, इन्द्रियों, एवं अन्तःकरण के द्वारा जिस कृपा का अहसास होता है, उसे जाहिरी (प्रत्यक्ष) मेहर कहते हैं। ब्रज लीला एवं जागनी लीला में धाम धनी ने अपनी अलौकिक लीलाओं से सुन्दरसाथ को मायावी कष्टों से बचाया तथा उन्हें सुखों में डुबोये रखा। यह भी प्रत्यक्ष कृपा के अन्तर्गत है। मात्र चमत्कारों की बात सुनकर जो लोग धाम धनी के चरणों में आते हैं, उनका ईमान रूपी

महल बालू की दीवार पर खड़ा होता है, जो मायावी कष्टों में भरभराकर गिर जाता है। ऐसे लोगों पर इश्क-इल्म की कृपा नहीं होती, जिसके कारण माया के थपेड़ों से घबराकर ये लोग श्री राज जी के चरणों से दूर हो जाते हैं।

मेहेर सोई जो बातूनी, जो मेहेर बाहेर और माहें।

आखिर लग तरफ धनी की, कमी कछुए आवत नाहें॥७॥

ब्रह्मसृष्टियों पर जो बाह्य और आन्तरिक मेहर होती है, उसमें आत्मा के लिये होने वाली मेहर ही वास्तविक मेहर (कृपा) है। इस प्रकार की मेहर में पल-पल धनी से अखण्ड सम्बन्ध बना रहता है तथा प्रेम एवं आनन्द में किसी प्रकार की कमी नहीं होती।

भावार्थ- बातिनी (आन्तरिक) मेहर को ही वास्तविक

मेहर कहने का कारण यह है कि आत्मिक आनन्द अखण्ड होता है, जबकि बाह्य कृपा (मेहर) का प्रभाव कुछ समय के लिये ही होता है। शरीर और इन्द्रियों के नश्वर होने के कारण इनके द्वारा होने वाली अनुभूति भी अपना अखण्ड प्रभाव नहीं छोड़ पाती।

मेहेर होत है जिन पर, मेहेर देखत पांचों तत्व।

पिंड ब्रह्माण्ड सब मेहेर के, मेहेर के बीच बसत॥८॥

जिनके ऊपर धाम धनी की वास्तविक कृपा होती है, उन्हें यही प्रतीत होता है कि सब कुछ मेहर की छत्रछाया में हो रहा है। उन्हें पाँच तत्वों वाला अपना शरीर तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी मेहर से ही भरा हुआ दिखायी देता है।

भावार्थ— जिस प्रकार आँखों पर जिस रंग का चश्मा

चढ़ाते हैं सभी वस्तुएँ उसी रंग की दिखायी देती हैं, उसी प्रकार आत्मा जब माया से अपनी दृष्टि हटाकर धनी की मेहर को देख (पहचान) लेती है तो उसे प्रत्येक वस्तु उसी रूप में दृष्टिगोचर होने लगती है।

दुख रूपी इन जिमी में, दुख न काहूँ देखत।

बात बड़ी है मेहेर की, जो दुख में सुख लेवत॥९॥

जिसके ऊपर प्रियतम की कृपा बरसती है, उसे इस दुःखमय संसार में भी दुःख का अनुभव नहीं होता। दुःखों से भरपूर इस ब्रह्माण्ड में अखण्ड सुख का रसपान करना धाम धनी की मेहर से ही सम्भव है। यह मेहर की बहुत बड़ी महिमा है।

भावार्थ— दुःखों का कारण अज्ञानतावश होने वाला तृष्णा का बन्धन है। जब आत्मा के धाम हृदय में प्रियतम

के आनन्द का सागर लहराने लगता है, तो उसे सांसारिक कष्टों का वैसे ही कोई आभास ही नहीं होता जैसे महाहिमालय अपनी तलहटी में बहने वाली नदी की धारा के टकराव से विचलित नहीं होता।

कृपा (अनुग्रह) और मेहर शब्द में केवल भाषा भेद है। इनमें मूलतः भेद नहीं है। इतना अवश्य है कि श्री राज जी की कृपा को सांसारिक भाव वाली दया की कृपा नहीं समझना चाहिए, बल्कि प्रियतम श्री राज जी में अपनी प्रियतमा श्यामा जी एवं ब्रह्मसृष्टियों को प्रेम द्वारा रिझाने के लिये अपना सर्वस्व लुटाने या न्योछावर करने की जो प्रवृत्ति है, उसे ही कृपा या मेहर कहते हैं। श्रीमुखवाणी के इन कथनों में यही बात दर्शायी गयी है।

कृपा है कई विध की, ए जो तीनों सृष्ट ऊपर।

कृपा करनी माफक, कृपा माफक करनी।

किरंतन ७९/१४,१५

और मेहेर ए देखियो, कर दियो धाम वतन।

साख पुराई सब अंगों, यों कई विध कृपा रोसन॥

किरंतन ८२/७

सुख में तो सुख दायम, पर स्वाद न आवत ऊपर।

दुख आए सुख आवत, सो मेहेर खोलत नजर॥१०॥

परमधाम में अखण्ड सुख है, किन्तु एकरसता होने से उसका स्वाद नहीं मिल पाया था। अब इस दुःख के ब्रह्माण्ड में आने से परमधाम के सुख का स्वाद मिला है। इस प्रकार का अनुभव मेहर के द्वारा ही सम्भव हो पाया है।

इन दुख जिमी में बैठ के, मेहेरें देखें दुख दूर।

कायम सुख जो हक के, सो मेहेर करत हजूर॥११॥

इस दुःखमय संसार में आत्मा ने धनी की मेहर से स्वयं को दुःखों से दूर होने का अनुभव किया है। श्री राज जी की मेहर से ही परमधाम के अखण्ड सुखों का अनुभव इस संसार में होने लगता है।

भावार्थ- यद्यपि लौकिक सुख-दुःख का भोक्ता जीव है, आत्मा नहीं। आत्मा तो मात्र द्रष्टा है, किन्तु किसी को दुःखी देखकर कुछ दुःख का अनुभव होता ही है। इस चौपाई में आत्मा के साथ दुःखों के सम्बन्ध होने का यही भाव है।

मैं देख्या दिल विचार के, इस्क हक का जित।

इस्क मेहेर से आइया, अव्वल मेहेर है तित॥१२॥

मैंने अपने दिल में विचार कर यह बात देखी कि यदि किसी आत्मा में धनी का प्रेम है, तो वह मात्र धनी की मेहर से है। प्रेम आत्मा के ऊपर होने वाली मेहर का सर्वप्रथम अंग है।

भावार्थ- इस चौपाई से यह स्पष्ट होता है कि किसी के हृदय में प्रेम आ जाना धनी की कृपा का प्रत्यक्ष रूप है। भला इस मायावी जगत में प्रियतम परब्रह्म की कृपा के बिना कौन प्रेम की राह पर चल सकता है।

अपना इलम जिन देत हैं, सो भी मेहेर से बेसक।

मेहेर सब बिध ल्यावत, जित हुकम जोस मेहेर हक॥१३॥

इसमें कोई शक नहीं कि यदि धाम धनी किसी को तारतम वाणी का गुह्य ज्ञान देते हैं, तो उसमें भी उनकी मेहर छिपी होती है। धनी की कृपा से उसे सारा यथार्थ

ज्ञान बहुत ही सरलता से प्राप्त हो जाता है। जिस आत्मा के धाम हृदय में धनी की कृपा का प्रवाह बहता है, उसमें प्रियतम का हुक्म एवं जोश भी विराजमान होता है।

जाको लेत हैं मेहेर में, ताए पेहेले मेहेरें बनावें वजूद।

गुन अंग इंद्री मेहेर की, रूह मेहेर फूंकत माहें बूद॥१४॥

धाम धनी जिसे भी अपनी मेहर की छाँव तले लेते हैं, उसे सबसे पहले अपनी मेहर के अनुकूल बनाते हैं। वे उसके गुण, अन्तःकरण, तथा इन्द्रियों में अपनी कृपा की सुगन्धि भर देते हैं तथा उसकी आत्मा में मेहर का रस उड़ेल देते हैं।

भावार्थ— आत्मा के धाम हृदय में मेहर सागर का रस प्रवाहित होने के लिये यह आवश्यक है कि उसकी इन्द्रियों तथा अन्तःकरण में निर्विकारिता आये तथा

सत्त्व, रज, एवं तम की परिधि को पारकर त्रिगुणातीत अवस्था की प्राप्ति की जाये। यह उपलब्धि मात्र प्रेम और ज्ञान के द्वारा ही की जा सकती है, इसलिये धाम धनी उसके अन्दर प्रेम की धारा बहाकर पात्रता लाते हैं, तत्पश्चात् उसे अपने मेहर सागर में डुबो देते हैं।

मेहेर सिंघासन बैठक, और मेहेर चँवर सिर छत्र।

सोहोबत सैन्या मेहेर की, दिल चाहे मेहेर बाजंत्र॥१५॥

जिस आत्मा के धाम हृदय में अक्षरातीत को विराजमान होना होता है, उसमें मेहर का सिंहासन सज जाता है। सिर के ऊपर छत्र एवं चँवर भी मेहर के होते हैं। इसके अतिरिक्त साथ में सेना भी मेहर की होती है तथा दिल की इच्छानुसार खुशी के बजने वाले बाजे भी मेहर के ही होते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में आलंकारिक रूप से यह वर्णन किया गया है कि जब कोई चक्रवर्ती सम्राट सिंहासन पर बैठता है तो उसकी क्या शोभा होती है। वस्तुतः अक्षरातीत ही समस्त ब्रह्माण्डों के सम्राट हैं। "एको भुवनस्य राजा" (वेद) का कथन इसी प्रसंग में है।

इसमें संक्षिप्त रूप से मेहर के अंगों – इश्क, इल्म, निस्बत, आनन्द- का वर्णन है। प्रेम का सिंहासन है, छत्र और चँवर ज्ञान के स्वरूप हैं, तो उसकी सुगन्धि से एकत्रित होने वाले सुन्दरसाथ निस्बत के स्वरूप हैं। इसी प्रकार बजने वाले बाजे आनन्द के स्वरूप हैं।

आत्मा का हृदय ही वह धाम है, जिसमें परब्रह्म विराजमान होते हैं। उनकी शोभा रूपी सम्पूर्ण सामग्री मेहर की होती है, अर्थात् धनी की मेहर के बिना अपने दिल में कभी भी प्रियतम को नहीं बसाया जा सकता।

बोली बोलावें मेहेर की, और मेहेरै का चलन।

रात दिन दोऊ मेहेर में, होए मेहेरें मिलावा रूहन॥१६॥

जिसके हृदय में प्रियतम परब्रह्म विराजमान हो जाते हैं, उसकी वाणी ही धनी की मेहर (कृपा) को दर्शाने लगती है। उसका आचरण (रहनी) भी मेहर के रस में भीना रहता है। उसे रात-दिन जाहिरी एवं बातिनी (गुह्य) मेहर का अनुभव होता रहता है और उसकी सान्निध्यता में ब्रह्मसृष्टियों का समूह आने लगता है।

बंदगी जिकर मेहेर की, ए मेहेर हक हुकम।

रूहें बैठी मेहेर छाया मिने, पिए मेहेर रस इस्क इलम॥१७॥

धाम धनी की कृपा एवं आदेश (हुक्म) से ही ब्रह्मसृष्टियाँ अपने प्रियतम की प्रेम लक्षणा भक्ति में डूबी रहती हैं तथा हमेशा उनकी मेहर की चर्चा करती हैं।

मेहर की छत्रछाया में ही वे प्रियतम के प्रेम तथा ब्रह्मवाणी के ज्ञान का रसपान करती हैं।

जित मेहेर तित सब है, मेहेर अव्वल लग आखिर।

सोहोबत मेहेर देवहीं, कहूं मेहेर सिफत क्यों कर॥१८॥

जहाँ श्री राज जी की कृपा है, वहाँ सब कुछ है। उनकी यह मेहर तो परमधाम से लेकर अब तक (जागनी ब्रह्माण्ड तक) चली आयी है। धनी की मेहर से ही उनके चरणों की सान्निध्यता प्राप्त होती है। अक्षरातीत परब्रह्म की मेहर की अनन्त महिमा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

भावार्थ— इस चौपाई में "अव्वल" शब्द का प्रयोग परमधाम के लिये तथा "आखिर" का प्रयोग इस जागनी ब्रह्माण्ड के लिये हुआ है।

ए जो दरिया मेहेर का, बातून जाहेर देखत।

सब सुख देखत तहां, मेहेर जित बसत॥१९॥

मेहर के सागर से आत्मा को जाहिरी (प्रत्यक्ष) एवं बातिनी (अप्रत्यक्ष) दोनों प्रकार की मेहर का रसास्वादन होता है। जहाँ धाम धनी की कृपा होती है, वहाँ प्रत्येक प्रकार का (बाह्य एवं आत्मिक) सुख होता है।

भावार्थ— इस चौपाई में बाह्य सुख का तात्पर्य है – अन्तःकरण एवं इन्द्रियों से प्राप्त किया जाने वाला सुख। ब्रह्मज्ञान की बातों को सुनने एवं चिन्तन-मनन करने से अन्तःकरण को सुख प्राप्त होता है। लौकिक कष्टों से शरीर की सुरक्षा भी बाह्य सुख के अन्तर्गत है। व्रज लीला में अनेक राक्षसों एवं इन्द्र-कोप से सुरक्षा भी प्रत्यक्ष कृपा (जाहिरी मेहर) है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी से प्राप्त होने वाली आड़िका लीला का सुख भी जाहिरी मेहर

है। इसी प्रकार शाहजहाँपुर बोड़िये में प्रत्यक्ष मृत्यु से गरीबदास जी की प्राण-रक्षा करना, मन्दसौर में मुगल सेना से सुन्दरसाथ की सुरक्षा करना, काजी से होने वाले विवाद में लालदास जी की जीवन रक्षा करना, तथा छत्रसाल जी के डूबते घोड़े को केन नदी से पार करना धनी की जाहिरी मेहर है।

गुह्य अर्थात् अप्रत्यक्ष अनुग्रह (बातिनी मेहर) का सम्बन्ध मात्र आत्मा से होता है। इसमें परमधाम के सभी सागरों का रस प्रवाहित होने लगता है और आत्मा अपने प्राण प्रियतम से एकरूप हो जाती है।

बीच नाबूद दुनी के, आई मेहेर हक खिलवत।

तिन से सब कायम हुए, मेहेरै की बरकत॥२०॥

इस नश्वर जगत् में यह मेहर मूल मिलावा में विराजमान

अक्षरातीत श्री राज जी के दिल से आयी है। धाम धनी के अनुग्रह से ही इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणियों को अखण्ड मुक्ति मिली है (मिलेगी)।

बरनन करुं क्यों मेहेर की, सिफत ना पोहोंचत।

ए मेहेर हक की बातूनी, नजर माहें बसत॥२१॥

मैं अपने प्राण प्रियतम अक्षरातीत की मेहर का वर्णन कैसे करूँ। यहाँ के शब्दों में वर्णन करने का सामर्थ्य ही नहीं है। धनी की यह बातिनी मेहर उनकी प्रेम भरी दृष्टि में निहित होती है।

भावार्थ— धनी की प्रेम भरी दृष्टि से आत्मा में प्रेम का रस प्रवाहित होता है, जिससे वह जाग्रत होकर श्री राज जी के अखण्ड आनन्द का पान करने लगती है। इस चौपाई की दूसरी पंक्ति का यही आशय है।

ए मेहेर करत सब जाहेर, सबका मता तोलत।

जो किन कानों ना सुन्या, सो मेहेर मगज खोलत॥२२॥

श्री राज जी की बातिनी मेहर से सभी धर्मग्रन्थों के भेद स्पष्ट होते हैं और इसके द्वारा ही सभी मतों के ज्ञान के स्तर का आँकलन होता है। आज तक अध्यात्म जगत की जिन बातों के बारे में किसी ने सुना नहीं होता, इस बातिनी मेहर से उसके भी गुह्य भेदों का स्पष्टीकरण हो जाता है।

भावार्थ- प्रायः प्रत्येक मत का अनुयायी अपने ही धर्मग्रन्थों और सिद्धान्तों को सर्वोपरि मानता है, किन्तु परम सत्य तो सर्वथा एक ही होता है। जब तक ब्राह्मी अवस्था प्राप्त नहीं होती, तब तक यथार्थ सत्य को नहीं जाना जा सकता, क्योंकि मानवीय बुद्धि के ज्ञान की एक सीमा होती है। धाम धनी की मेहर से ही आत्मिक दृष्टि

खुलती है और सभी धर्मग्रन्थों में छिपे हुए उस यथार्थ सत्य को जान लिया जाता है, जिसके बारे में कोई सोच भी नहीं सकता था। मात्र धनी की इस मेहर से ही यह जाना जा सकता है कि किस मत की आध्यात्मिक उपलब्धि कहाँ तक है, अन्यथा प्रत्येक मत का अनुयायी केवल अपने को ही परब्रह्म के साक्षात्कार का अधिकारी मानता है, अन्यो को नहीं।

बरनन करुं क्यों मेहेर की, जो बसत हक के दिल।

जाको दिल में लेत हैं, तहां आवत न्यामत सब मिल॥२३॥

अक्षरातीत के हृदय में विराजमान मेहर के सागर की महिमा का वर्णन मैं कैसे करूँ। धाम धनी जिसे अपने दिल में ले लेते हैं, उस आत्मा में मेहर के सागर की सारी निधियाँ विराजमान हो जाती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में सभी निधियों का आशय सातों सागरों के रस से है।

बरनन करुं क्यों मेहेर की, जो बसत है माहें हक।

जाको निवाजें मेहेर में, ताए देत आप माफक॥२४॥

अक्षरातीत के हृदय में निहित मेहर के सागर की गरिमा का मैं कैसे वर्णन करूँ। धाम धनी जिस पर अपनी अनुकम्पा (कृपा) बरसाते हैं, उसे अपने अनुकूल देते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का विशिष्ट भाव है। अक्षरातीत के हृदय में अनन्त प्रेम, अनन्त आनन्द, और अनन्त अनुग्रह का सागर लहराया करता है। उनके किसी भी गुण की कोई सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। इस प्रकार उनकी मेहर भी उनकी इस गरिमा के अनुकूल अनन्त ही होती है।

बात बड़ी है मेहेर की, जित मेहेर तित सब।

निमख ना छोड़ें नजर से, इन ऊपर कहां कहूं अब॥२५॥

श्री राज जी की मेहर की अनन्त (बहुत बड़ी) महिमा है। जहाँ उनकी मेहर होती है, वहाँ सारी निधियाँ स्वतः विराजमान होती हैं। उस आत्मा को धाम धनी एक पल के लिये भी अपनी नजरों से अलग नहीं करते। इससे अधिक मैं और क्या कहूँ।

भावार्थ- अक्षरातीत की मेहर भरी नजर सब पर समान रूप से होती है, किन्तु उसे पाने की पात्रता किसी-किसी में ही बन पाती है। "मेहेर सब पर मेहेबूब की, पर पावें करनी माफक" का कथन यही दर्शाता है। जिस प्रकार आशिक अपने माशूक को एक पल के लिये भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं करता, उसी प्रकार धाम धनी अपनी अँगनाओं को पल भर के लिये भी अपनी

मेहर भरी नजरों से ओझल नहीं करते। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि अपनी अँगनाओं पर मेहर के रूप में धाम धनी का लाड-प्यार ही प्रवाहित होता है, जिसे एक आशिक का अपने माशूक पर न्योछावर (बलिहारी) हो जाना कहते हैं।

जहां आप तहां नजर, जहां नजर तहां मेहेर।

मेहेर बिना और जो कछू, सो सब लगे जेहेर॥२६॥

जिन ब्रह्मसष्टियों के धाम हृदय में स्वयं अक्षरातीत निवास करते हैं, वहीं पर उनकी मेहर भरी नजर (दृष्टि) होती है। इन आत्माओं के लिये धाम धनी की मेहर के अतिरिक्त सारा ब्रह्माण्ड विष के समान कष्टकारी लगता है।

बात बड़ी है मेहेर की, मेहेर होए ना बिना अंकूर।

अंकूर सोई हक निसबत, माहें बसत तजल्ला नूर॥२७॥

अक्षरातीत की मेहेर की गरिमा अनन्त है। बिना अँकुर (सम्बन्ध) के धनी की मेहेर नहीं होती। अँकुर भी ऐसा हो, जिसमें अक्षरातीत से मूल सम्बन्ध हो और परमधाम में निवास हो।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय होता है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म तो सबके हैं, फिर भी उनकी मेहेर केवल ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही क्यों होती है?

यह पूर्व में कहा जा चुका है कि सातों सागरों का बहता हुआ रस ही मेहेर सागर है। जब संसार के जीव योगमाया के आनन्द को नहीं सम्भाल पाते, तो मेहेर सागर की रसधारा को कैसे आत्मसात् कर सकेंगे। सूर्य का प्रकाश कीचड़, पत्थर, एवं आतशी शीशे पर समान रूप से

पड़ता है, किन्तु कीचड़ कभी भी आतशी शीशे की तरह अग्नि की लपट नहीं पैदा कर सकता।

इसी प्रकार धाम धनी की मेहर तो सभी पर है, किन्तु अपनी करनी के अनुकूल ही प्राप्ति होती है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का कथन है— "मेहेर सब पर मेहेबूब की, पर पावें करनी माफक।"

ज्यों मेहेर त्यों जोस है, ज्यों जोस त्यों हुकम।

मेहेर रेहेत नूर बल लिए, तहां हक इस्क इलम॥२८॥

धाम धनी की मेहर जब आत्मा के धाम हृदय में विराजमान होती है, तो धनी का जोश भी वहाँ अवश्य होता है और श्री राज जी के हुक्म की शक्ति भी रहती है। मेहर में ही तारतम ज्ञान का बल निहित होता है। जिस हृदय में प्रियतम अक्षरातीत की मेहर होती है, वहाँ प्रेम

और ज्ञान अवश्य रहते हैं।

भावार्थ- "ए नूर आगे थे आइया, अछर ठौर के पार" (कलस हिंदुस्तानी) तथा "नूर नाम तारतम" के आधार पर, इस चौपाई में भी "नूर बल" का अर्थ तारतम ज्ञान का बल होगा। इस प्रकार "नूर" और "इलम" एकार्थवाची शब्द हैं।

मीठा सुख मेहेर सागर, मेहेर में हक आराम।

मेहेर इस्क हक अंग है, मेहेर इस्क प्रेम काम॥२९॥

श्री राज जी की मेहर में अनन्त मिठास का सुख भरा हुआ है। धाम धनी का अनन्त आनन्द मेहर से ही अनुभव में आता है। मेहर के सागर में लहराने वाला इस्क धनी का अंग है। मेहर से ही धनी के प्रति प्रेम की इच्छा होती है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "काम" शब्द का तात्पर्य वैकारिक "काम" से नहीं, बल्कि दिव्य "काम" से है जिसका अर्थ होता है अखण्ड प्रेम की चाहना। इश्क और प्रेम समानार्थक शब्द हैं, इनमें मात्र भाषा भेद है।

काम बड़े इन मेहेर के, ए मेहेर इन हक।

मेहेर होत जिन ऊपर, ताए देत आप माफक॥३०॥

अक्षरातीत के हृदय की बहती हुई रसधारा ही मेहर है। इस प्रकार इस मेहर के काम भी बहुत बड़ी गरिमा वाले होते हैं। धाम धनी की महिमा अनन्त है। जब वे किसी पर मेहर करते हैं, तो अपनी महिमा के अनुकूल उस आत्मा को अखण्ड निधियों से भर देते हैं।

मेहेरें खेल बनाइया, वास्ते मेहेर मोमिन।

मेहेरें मिलावा हुआ, और मेहेर फरिस्तन॥३१॥

ब्रह्मसृष्टियों पर मेहर करने के लिये ही धाम धनी ने अपनी मेहर की दृष्टि से इस खेल को बनाया है। मेहर से ही ब्रह्मसृष्टियों तथा ईश्वरी सृष्टि की जागनी हुई है।

भावार्थ- श्यामा जी सहित ब्रह्मसृष्टियाँ हकीकत के आनन्द में इतनी डूबी रहती थीं कि उन्हें श्री राज जी के मारिफत स्वरूप दिल की पहचान ही नहीं थी। यह पहचान देने के लिये ही उन्होंने अँगनाओं के दिल में खेल देखने की इच्छा पैदा की। इसे ही ब्रह्मात्माओं के लिये मेहर करना कहा गया है। हुक्म (आदेश) भी मेहर का अंग है और धनी के हुक्म से ही यह खेल बना है, इसलिये इसे मेहर से बना हुआ कहा गया है।

ब्रह्मसृष्टियों को ब्रह्मवाणी के द्वारा अपने मारिफत स्वरूप

दिल की पहचान देनी थी, इसलिये इस जागनी ब्रह्माण्ड में धनी की मेहर से उनकी जागनी हुई।

मेहरें रसूल होए आइया, मेहरें हक लिए फुरमान।

कुंजी ल्याए मेहेर की, करी मेहरें हक पेहेचान॥३२॥

धाम धनी की मेहर से मुहम्मद साहिब उनका आदेश-पत्र "कुरआन" लेकर आये। ब्रह्मसृष्टियों पर मेहर करने के लिये ही श्यामा जी तारतम ज्ञान लेकर आयीं। मेहर से ही ब्रह्मवाणी द्वारा धनी की पहचान हुई है।

भावार्थ- हिन्दू धर्मग्रन्थों में परमधाम और अक्षरातीत की साक्षी तो थी, किन्तु तौरेत, इंजील, और जंबूर में इस प्रकार की साक्षी न होने से कुरआन का अवतरण हुआ, ताकि जागनी ब्रह्माण्ड में ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम एवं अन्य बातों की साक्षी मिल सके तथा जीव सृष्टि भी

श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान कर सके। यही कारण है कि मुहम्मद साहिब एवं कुरआन का अवतरण भी धनी की मेहर से ही माना गया है। इसी प्रकार सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (श्यामा जी) के द्वारा तारतम ज्ञान का अवतरण भी धनी की मेहर से ही सम्भव हुआ है।

दई मेहेरें कुंजी इमाम को, तीनों महंमद सूरत।

मेहेरें दई हिकमत, करी मेहेरें जाहेर हकीकत॥३३॥

धाम धनी की मेहर से ही तीनों सूरतों का अवतरण हुआ तथा श्री महामति जी को तारतम ज्ञान से सभी धर्मग्रन्थों के भेद खोलने की कला मिली। श्री राज जी की मेहर से ही महामति जी ने धर्मग्रन्थों के वास्तविक सत्य को उजागर किया है।

भावार्थ— मुहम्मद का अर्थ है – महिमा से परे। इस

जागनी ब्रह्माण्ड में ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की राह दिखाने के लिये श्री राज जी के हुक्म से तीन स्वरूपों का अवतरण हुआ, जिन्हें बशरी (मुहम्मद साहिब), मल्की (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी), हकी (श्री प्राणनाथ जी) कहते हैं।

सो फुरमान मेहेरें खोलिया, करी जाहेर मेहेरें आखिरत।

मेहेरें समझे मोमिन, करी मेहेरें जाहेर खिलवत॥३४॥

श्री महामति जी ने धाम धनी की मेहर से कुरआन तथा भागवत आदि धर्मग्रन्थों के भेदों को खोला और आखिरत का समय जाहिर किया। इन धर्मग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को श्री राज जी की मेहर से ही ब्रह्मात्माओं ने समझा। धनी की मेहर से ही परमधाम के मूल मिलावे का ज्ञान इस संसार में आ सका।

भावार्थ- कुरआन के अनुसार कियामत का समय ही आखिरत का समय है, जिसमें हकीकत और मारिफत की राह आखरूल ईमाम मुहम्मद महदी के द्वारा दी जायेगी। इसके पश्चात् महाप्रलय होगा और सारी दुनिया बहिश्तों में अखण्ड हो जायेगी। इसी प्रकार पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, श्रीमद्भागवत्, तथा बृहत्सदाशिव संहिता के अनुसार स्वयं परब्रह्म अपनी आत्माओं के लिये जाग्रत बुद्धि का ज्ञान लायेंगे, जिसका अनुसरण करके आत्माएँ जाग्रत होंगी और अपने परमधाम को प्राप्त करेंगी। जीव सृष्टि भी उस ज्ञान को पाकर महाप्रलय के पश्चात् अखण्ड मुक्ति को प्राप्त होगी। इसी समय को वेद-कतेब की मान्यता में आखिरत का समय माना गया है।

ए मेहेर मोमिनोँ पर, एही खासल खास उमत।

दई मेहेरें भिस्त सबन को, सो मेहेर मोमिनोँ बरकत॥३५॥

इन ब्रह्मसृष्टियों पर धनी की मेहर की वर्षा हुई है , क्योंकि ये अक्षरातीत की अँगरूपा हैं और सबसे विशेष सृष्टि हैं। ब्रह्मसृष्टियों के इस मायावी जगत में आने के कारण ही कृपा रूप में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को योगमाया (बहिशतों) में अखण्ड मुक्ति मिली है।

मेहेरें खेल देख्या मोमिनोँ, मेहेरें आए तले कदम।

मेहेरें कयामत करके, मेहेरें हँसके मिले खसम॥३६॥

श्री राज जी की मेहर से ही ब्रह्ममुनियों ने इस मायावी खेल को देखा है। धनी की मेहर से ही वे ब्रह्मवाणी का ज्ञान प्राप्त कर अपने प्रियतम परब्रह्म के चरणों में आये हैं। धनी की मेहर से ही उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को

अखण्ड मुक्ति पाने का सौभाग्य प्रदान किया है और इस खेल के समाप्त होने के पश्चात् परमधाम में अपने प्रियतम से मिलेंगे।

भावार्थ- किरन्तन ७६ / १ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "मुक्त देसी ब्रह्माण्ड को, आए ब्रह्म आत्म सत।" यद्यपि जीव सृष्टि को अखण्ड मुक्ति तो धनी की मेहर से ही होगी, किन्तु शोभा ब्रह्ममुनियों को दी गयी है।

मेहर की बातें तो कहूं, जो मेहर को होवे पार।

मेहरें हक न्यामत सब मापी, मेहरें मेहर को नहीं सुमार।।३७।।

मेहर की बातें तो तब की जायें, जब उसकी कोई सीमा हो। धाम धनी की मेहर से मैंने उनके दिल की सभी निधियों की पहचान कर ली है। इस प्रकार धनी के मेहर सागर से आने वाली मेहर की महिमा अनन्त है।

जो मेहेर ठाढ़ी रहे, तो मेहेर मापी जाए।

मेहेर पल में बड़े कोट गुनी, सो क्यों मेहेरें मेहेर मपाए॥३८॥

यदि मेहर की वृद्धि स्थिर रहे, तब तो उसकी कोई माप भी ली जाये। एक ही पल में धनी की मेहर करोड़ों गुना बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में यह कदापि सम्भव नहीं है कि मेहर सागर की मेहरों को मापा जा सके।

भावार्थ— इस प्रकरण की चौपाई ३७-३८ में "मेहेरें मेहेर" में दो बार मेहर शब्द आया है। इसका तात्पर्य है— मेहर सागर की मेहरें। मेहर सागर से प्रेम (इश्क), ज्ञान (इल्म), एकत्व (वहदत), मूल सम्बन्ध (निस्बत), और आनन्द आदि की मेहर का रस आत्मा में प्रवाहित होता है, इसलिये मेहर शब्द को बहुवचन में "मेहेरें" कहकर वर्णन किया गया है।

मेहरें दिल अर्स किया, दिल मोमिन मेहर सागर।

हक मेहर ले बैठे दिल में, देखो मोमिनो मेहर कादर॥३९॥

धाम धनी की मेहरों ने ब्रह्मसृष्टियों के (मेरे) दिल को धाम बना दिया, जिससे यह दिल ही अब मेहर का सागर बन गया है। हे साथ जी! अब तो धाम धनी ही अपनी सम्पूर्ण मेहर के साथ दिल में विराजमान हो गये हैं। अब उनकी मेहर को देखिए (पहचानिए)।

भावार्थ- अपने धाम दिल में प्रियतम को बसाने का अधिकार तो सभी ब्रह्मसृष्टियों को है, किन्तु इस चौपाई में श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर उनके ही दिल को "मेहर सागर" बनाने का प्रसंग है।

बात बड़ी है मेहर की, हक के दिल का प्यार।

सो जाने दिल हक का, या मेहर जाने मेहर को सुमार॥४०॥

धनी के मेहर की अनन्त महिमा है। यह श्री राज जी के दिल के प्रेम का स्वरूप है। इसके स्वरूप को या तो मेहर करने वाला धनी का दिल जानता है, या जिन ब्रह्मसृष्टियों पर मेहर होती है, वे जानती हैं।

भावार्थ- फारसी भाषा में "मेहर" शब्द का अर्थ होता है- अल्लाह की ओर से की जाने वाली मुहब्बत। हिन्दी में इसका समानार्थक शब्द अनुग्रह है, जिसका तात्पर्य होता है- अक्षरातीत के द्वारा अपनी आत्माओं को अपने दिल के सागर में डुबो लेना।

जो एक वचन कहूँ मेहेर का, ले मेहेर समझियो सोए।

अपार उमर अपार जुबाँए, मेहेर को हिसाब न होए॥४१॥

यदि मैं धाम धनी की मेहर के बारे में एक भी बात कहती हूँ तो ऐसा समझना चाहिए कि मैं धाम धनी की

मेहर से ही ऐसा कह पा रही हूँ, अन्यथा उनकी मेहर का वर्णन कर पाना मेरे लिये सम्भव नहीं है। यदि मेरे तन को अनन्त उम्र मिल जाये और मेरी अनन्त जिह्वायें हों, तो भी मेहर का पूर्ण वर्णन (माप) हो पाना सम्भव नहीं है।

निपट बड़ा सागर आठमा, ए मेहेर को नीके जान।

जो मेहेर होए तुझ ऊपर, तो मेहेर की होय पेहेचान॥४२॥

हे मेरी आत्मा! तू इस बात को अच्छी तरह से जान ले कि श्री राज जी के दिल का यह आठवाँ सागर मेहर का सागर है, जो निश्चित रूप से अनन्त (बहुत बड़ा) है। श्री राज जी की मेहर की पहचान होना तभी सम्भव है, जब तुम्हारे ऊपर उनकी पूर्ण मेहर हो।

भावार्थ— इस चौपाई में श्री महामति जी ने अपने ऊपर कथन करते हुए परोक्ष (सांकेतिक) रूप से सुन्दरसाथ

को सम्बोधित किया है।

सात सागर बरनन किए, सागर आठमा बिना हिसाब।

ए मेहेर को पार न आवहीं, जो कई कोट करूँ किताब॥४३॥

इस सागर के वर्णन से पूर्व मैंने सात सागरों का वर्णन किया है, किन्तु यह आठवाँ सागर (मेहर का सागर) अनन्त है। इसके वर्णन में यदि मैं करोड़ों पुस्तकें भी लिख दूँ, तो भी मेहर सागर का पूर्ण वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- अक्षरातीत के जिस दिल से अनन्त परमधाम का प्रकटीकरण हुआ है, उस मारिफत स्वरूप दिल का पूर्ण वर्णन कर पाना कहीं भी – किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है, चाहे वह कालमाया का ब्रह्माण्ड हो या योगमाया का।

ए मेहेर मोमिन जानहीं, जिन ऊपर है मेहेर।

ताको हक की मेहेर बिना, और देखें सब जेहेर॥४४॥

धनी की मेहर को मात्र वे ब्रह्ममुनि ही जानते हैं, जिनके ऊपर उनकी मेहर बरसती है। इन ब्रह्ममुनियों को श्री राज जी की मेहर के बिना यह सारा ब्रह्माण्ड विष के समान दुःखदायी प्रतीत होता है।

महामत कहे ए मोमिनो, ए मेहेर बड़ा सागर।

सो मेहेर हक कदमों तले, पिओ अमीरस हक नजर॥४५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! यह मेहर का सागर अनन्त है। आप उनके चरणों में आइये और उनकी नजरों से मेहर की अमृतमयी रसधारा का पान कीजिए।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के चिन्तन-मनन से धनी के चरणों

के प्रति अटूट श्रद्धा व विश्वास (ईमान) उत्पन्न होता है।
इसे ही धनी के चरणों में आना कहते हैं।

चितवनि के द्वारा विरह-प्रेम में डूबकर जब आत्मा अपने प्राणवल्लभ का दीदार करती है, तो उनके हृदय से मेहर सागर की लहरें आत्मा के धाम हृदय में प्रवाहित होने लगती हैं। इसे ही अमृत रस का पान करना कहते हैं। इसे पुराणों में वर्णित कालमाया का अमृत नहीं समझना चाहिए, बल्कि यह तो अक्षरातीत का अनन्त प्रेम और आनन्द है, जिसे प्राप्त करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। इस चौपाई में धाम धनी की ओर से सब सुन्दरसाथ को इस उपलब्धि तक पहुँचाने के लिये आदेश (हुक्म) दिया गया है।

प्रकरण ॥१५॥ चौपाई ॥११२८॥

॥ सागर सम्पूर्ण ॥